लोकप्रियसाहित्यग्रन्थमाला – ७

मूलशङ्कर-नाट्यत्रयी

संयोगितास्वयंवरम्
छत्रपतिसाम्राज्यम्
प्रतापविजयम्

सम्पादकः
राजेन्द्रः नाणावटी

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
मानितविश्वविद्यालयः
नवदेहली

प्रकाशकः
कुलसचिव
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
(मानितविश्वविद्यालयः)
५६-५७, इन्स्टीट्यूशनल एरिया
जनकपुरी, नवदेहली-११००५८

e-mail : rsks@nda.vsnl.net.in
website : www.sanskrit.nic.in

ISBN : 978-81-86111-30-7

संस्करणम् : २०१०

मूल्यम्- २००/-रू०

मुद्रकः
अमर प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-११०००९
दूरभाषः- ९८७१६९९५६५, ९८९१७०९२१७
e-mail-amarprintingpress@gmail.com

पुरोवाक्

१८८६ तमे वर्षे गुर्जरप्रदेशे लब्धजन्मना, स्वपाण्डित्यमहिम्ना बडौदामहाराज-प्रभृतिभिः सम्मानितेन, महर्षेररविन्दस्य समकालिकेन संस्कृतविदुषा आ. मूलशङ्करमाणेकलालयाज्ञिकेन रचितं संस्कृतनाट्यत्रयम् अधुना एकस्मिन् सम्पुटे राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानेन प्रकाशपथमानीयत इति प्रमुदितं भवति मदन्तरङ्गम्।

ग्रन्थेऽस्मिन् मुद्रिते नाट्यत्रये प्रथमं **'संयोगितास्वयंवरम्'** देहलीनरेशस्य पृथ्वीराजनामकस्य, कनौजराजपुत्र्याः संयोगितायाश्च प्रणयकथानकं प्रस्तौति। सप्तभिरङ्कैः निबद्धमिदं नाटकं सुखान्तमस्ति। यद्यपि प्रसिद्धायामैतिहासिककथायां पृथ्वीराजस्य दुःखान्तं जीवितचरितं वर्णितमुपलभ्यते तथापि मूलशङ्करमहोदयेनात्र सुखात्मकघट्टे नाटककथा पर्यवसिता। वर्णसङ्घटन-पदचयन-भावनिर्माण-प्रसङ्गयोजनादि-दृष्ट्या नाटकस्यास्य अस्ति स्वीयं वैशिष्ट्यम्।

नाट्यकर्तुरपरा कृतिः **छत्रपतिसाम्राज्यम्** नवसु अङ्केषु स्वातन्त्र्यप्रियेण छत्रपतिशिवाजीमहाराजेन धर्मसाम्राज्यस्थापनाय कृतान् सङ्घर्षान् वर्णयति। युद्धप्रसङ्गभूयिष्ठमिदं नाट्यम् यवनशासनस्य दौष्ठ्येन, तदानीन्तनस्वार्थिक्षत्रियाणां क्षुद्रव्यवहारेण च खिन्नस्य शिवाजेः राष्ट्राभिमानसम्भरितां कर्मठतां मार्मिकतया प्रस्तौति।

मूलशङ्करवर्यस्य तृतीया रचना **प्रतापविजयम्।** अत्र हि मातृभुवं प्रति श्रद्धया स्वाभिमानधनेन महाराणाप्रतापसिंहेन कृतः स्वातन्त्र्यनिमित्तकः सङ्ग्रामः वर्णितः।

आ. मूलशङ्करमहोदयस्य एतन्नाट्यत्रितयमपि सुखान्तमस्ति। त्रिषु अपि नाट्येषु घटनाः उत्सवे परिणमन्ते। संयोगितास्वयंवरे पृथ्वीराज-संयोगितयोः विवाहोत्सवं यावत् कथा प्रस्तुता। छत्रपतिसाम्राज्ये धर्मसाम्राज्याभिषेकोत्सवं यावत् प्रसङ्गो वर्तते। प्रतापविजयं तु महाराणाप्रतापस्य उदयपुरविजयोत्सवेन पूर्णतामेति।

मूलशङ्करमहोदयस्य नाट्यकृतिषु स्त्रीपात्राणामपि सम्भाषणानि संस्कृतेनैव निबद्धानि। एतासु कृतिषु बहुत्र शास्त्रीयशैल्या गानानुकूलानि पद्यानि (गेयपद्यानि) अपि वर्तन्त इति अपरं वैशिष्ट्यमवलोक्यते।

ऐतिहासिककथाबीजमवलम्ब्य मूलशङ्करमहोदयेन रचितानि इमानि त्रीणि नाट्यरत्नानि पृथक्–पृथग्रूपेण बहुपूर्वं प्रकाशितान्यपि पुनः सुष्ठु सम्पाद्य ग्रन्थरूपेण सज्जीकृत्य राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानद्वारा प्रकाशनाय आचार्येण राजेन्द्रनाणावटीमहोदयेन प्रस्तुतानि। बहुशास्त्रविशारदेन मूलशङ्करवर्यस्य सहाध्यापकेन पं. श्रीधरलक्ष्मणशास्त्रिणा मूलशङ्करकृतनाट्यत्रयस्यापि टीकाः विरचिता आसन्। ताभ्यष्टीकाभ्यः पर्यायात्मकांशान् विहाय छन्दोऽलङ्कार–सन्धि–सन्ध्यङ्ग–प्रसङ्गनिर्देशादीनंशान् स्वीकृत्य मूलकृतिना सह सम्पादकेन व्यवस्थितरीत्या संयोजिताः। तादृशोऽयं ग्रन्थः मूललेखकस्य १२५ तमायां जन्मतिथौ संस्थानेन प्रकाश्यत इति नितान्तं हर्षमनुभवामि।

सन्दर्भेऽस्मिन् मूललेखकः आ. मूलशङ्करमहोदयः सश्रद्धं स्मर्यते। ग्रन्थ–सम्पादकं, प्रकाशनकर्मणि सहकृतवतः सर्वानपि हार्दमभिनन्दामि। ग्रन्थोऽयं संस्कृतनाट्य–साहित्ये दृष्टिमतां, विदुषां, छात्राणाम् अनुसन्धातॄणां चोपकाराय भवेदित्यभिप्रैमि।

–राधावल्लभत्रिपाठी

सम्पादकीय

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के कुलपति प्रो. राधावल्लभजी के समक्ष मैंने अर्वाचीन संस्कृत रचनाकारों की कुछ प्रशिष्ट कृतियों के संपादन एवं पुनर्मुद्रण का सुझाव रखा तो तुरन्त उन्होंने गुजरात के सर्वमान्य नाट्यकार आ० मूलशंकर माणेकलाल याज्ञिक के तीन नाटकों के सम्पादन का उत्तरदायित्व मुझ पर ही डाल दिया । मेरा ही सुझाव था, ना भी कैसे करता ? स्वीकार किया, यथाशक्ति पूरा हो रहा है । इस कार्य का पूर्ण होना भी उन्हीं के आग्रह के आभारी है ।

संयोगवश मूलशंकरजी का जन्मदिनांक ३१ जनवरी १८८६ है; अतः ३१ जनवरी २०१० के दिन इनकी १२५वी जन्मतिथि भी पड़ती है । उसी दिन इस **मूलशंकरनाट्यत्रयी** के ग्रन्थ के लोकार्पण का सुयोग भी अवसरप्राप्त बन गया है। इसके लिये तो केवल भगवती भवितव्यता के प्रति ही आभार प्रकट करना होगा ।

व्यक्ति को परखने की एक अत्यंत विशिष्ट शक्ति वडोदरा के गुणज्ञ पुण्यश्लोक महाराजा कै० सयाजीराव (तीसरे) में थी । उन्होंने ही राजा रविवर्मा जैसे चित्रकार, उस्ताद फैयाज़खाँ जैसे गायक, श्री अरविन्द जैसे अंग्रेजी के प्रोफेसर, मणिलाल नभुभाई और चीमनलाल दलाल जैसे भाषाविदों को वडोदरा की राजकीय शिक्षासंस्थाओं में निमन्त्रित किया था । ऐसे तारकों में एक आ० मूलशंकर याज्ञिक भी थे । इनका वडोदरा के शैक्षिक एवं विद्वज्जगत् में निमन्त्रित होना एवं प्रथमतः ही नवप्रारब्ध शासकीय पाठशाला के प्राचार्यपद पर नियुक्त होना अपने आपमें उनकी असाधारण विद्वत्ता का प्रमाण है ।

मूलशंकरनाट्यत्रयी के इस द्विविध अवसर में कई लोगों का सहकार प्राप्त हुआ है । संस्थान के कुलपति प्रो. राधावल्लभजी ने यह संपादन करवाया। मूलशंकरजी के जीवन के विषय में मुद्रिकाबहन, मनीषाबहन, कैवल्य दवे ने सहकार किया और रचना को सुलभ कराने में आ० कुलीनचन्द्र याज्ञिक, कुलपति प्रो. पंकज जानी, आ०

डाह्याभाई शास्त्री, आ० निरुल्ला, प्रो. हसित मेहता ने भी योगदान दिया है। कुछ अन्य कार्यों में आ० प्रो. आर. सी. मेहता, श्रीमती मन्दा हिंगुराव, प्रो. मुकुन्द वाडेकर, प्रो. हरीश व्यास ने सहयोग किया - इन सबके प्रति मैं हार्दिक धन्यवाद समर्पित करता हूँ।

वडोदरा, दि. १३ जन० २०१० **- राजेन्द्र नाणावटी**

अनुक्रम

नाट्यत्रयी

प्रस्तावना

बीसवी शती के पूर्वार्द्ध में भारत में जो प्रशिष्ट संस्कृत साहित्यकार हुए उनमें मूलशंकर माणेकलाल याज्ञिक अन्यतम हैं, समकालिक गुजरात के तो वे अनन्यतम रचनाकार रहे । हमारे कुछ प्राचीन प्रशिष्ट संस्कृत नाट्यकारों की तरह इनका कवियश भी इनकी तीन नाट्यरचनाओं पर ही प्रतिष्ठित है । ये तीन रचनाएँ हैं *संयोगितास्वयंवरम्* (प्रथम प्रकाशन सा.सं. १९२८), *छत्रपतिसाम्राज्यम्* (१९२९) और *प्रतापविजयम्* (१९३१) । इन तीनों नाटकों में मूलशंकरजी की रचनाकला के जो उन्मेष प्रकट हुए उन्होंने अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में उनके प्रदान को चिरकालीन बना दिया, उनके यश को भारत में और संस्कृतप्रेमी विश्व में फैलाया और संस्कृत साहित्य में उनका स्थान निश्चित कर दिया ।

पहले ही नाटक *संयोगितास्वयंवरम्* से उनकी कविताकला ने विद्वान् सहृदयों की प्रशंसा प्राप्त कर ली थी । नाटक का कथानक तो विख्यात है - राजकुमारी संयोगिता और दिल्लीनरेश पृथ्वीराज की इतिहासप्रसिद्ध प्रणयकथा । कनौज के राजा जयचन्द ने पुत्री संयोगिता का स्वयंवर रचा और उसमें उसके प्रियतम पृथ्वीराज को ही निमन्त्रण नहीं दिया तब पृथ्वीराज ने छद्मवेश में आकर स्वयंवरमण्डप से ही राजकुमारी का अपहरण कर लिया था । नाट्यकार मूलशंकर ने इस कथानक को कुछ भिन्न रूप में नाटक में प्रस्तुत किया है । यहाँ जयचन्द ने राजसूय यज्ञ का समायोजन किया है जो केवल चक्रवर्ती राजाओं के लिये करणीय हैं, और जयचन्द अभी चक्रवर्ती है नहीं । पृथ्वीराज इसलिये यज्ञ का निमन्त्रण स्वीकार नहीं करता और जयचन्द का शत्रु बन जाता है । यज्ञ के अनुषङ्गमें ही जयचन्द राजकुमारी संयोगिता का स्वयंवर भी कर देना चाहता है । पर राजकुमारी इन दिनों 'निरुत्सवा' दिखाई पडती है । उसकी उदासीनता का कारण जानने हेतु जयचन्द वसन्तोत्सव का आदेश देता है (अंक १)। योजनानुसार ही वसन्तोत्सव के उल्लासपूर्ण वातावरण में संयोगिता अपनी सखी के सामने पृथ्वीराज के प्रति अपने उत्कट प्रणय का मनोगत प्रकट करती है जो रानी गुप्त रूप में सुन लेती है। रानी समझाने का प्रयास करती है, पर संयोगिता अपने निश्चय में दृढ है । परिणामतः

उसे गंगा के किनारे कनौज नगर से कुछ दूर एकान्त महल में निर्वासन का आदेश होता है (अंक २)। पृथ्वीराज की एक पूर्वसेविका कर्णाटकी अब संयोगिता की अंतरंग सेविका है। उसके पत्र के साथ संयोगिता का प्रेमपत्र पृथ्वीराज को मिलता है। वह तुरन्त उसके हरण के विचार से अपने मित्र राजकवि चन्द के परिचारक गण में छन्नरूप में सम्मिलित होकर कनौज जाने की योजना बनाता है (अंक ३)। कनौज में जयचन्द की राजसभा में चन्द कवि का स्वागत होता है। छन्नवेषी पृथ्वीराज की उपस्थिति शंका तो प्रेरित करती है, पर अनिर्णय की स्थिति बनी रहती है। चन्द कवि के निवास पर कर्णाटकी आदि सखियां कविसत्कार के लिये आती हैं। पृथ्वीराज को प्रियतमा के निर्वासन-निवास का पता मिल जाता है। रात में ही वह निकल पडता है (अंक ४); और प्रियतमा के महल तक पहुंच कर कर्णाटकी की सतर्क सहायता से प्रविष्ट होकर विरहसंतप्त प्रियतमा से गान्धर्वविवाह कर लेता है (अंक ५)। फिर दूसरे दिन पूरी योजना के साथ आकर प्रियतमा को सखियों से बिदा करा ले जाता है (अंक ६)। दिल्ली पहुंचकर विवाहोत्सव होता है तो उसमें जयचन्द भी अपने विरोधको त्याग कर सौहार्दसंबंध के प्रस्ताव के साथ उपस्थित रहता है। सार्वत्रिक आनंद के वातावरण में राजसी विवाहोत्सव संपन्न होता है (अंक ७)।

सात अंक का यह नाटक हमारे पारंपरिक प्रशिष्ट संस्कृत नाटक के सभी लक्षणों का प्रायः यथातथ अनुसरण करता है। संस्कृत नाटक सुखान्त होना चाहिये। जब कि पृथ्वीराज के वृत्तको ख्यात करनेवाला राजकवि चन्द बरदायी का *पृथ्वीराजरासो* तो - संयोगिता के प्रणयरससर में डूबे हुए असावध पृथ्वीराज को यवन शाहबुद्दीन घोरी पराजित करता है, कैद करता है, अन्ध बनाता है, और उसके शरानुसंधान की अमोधवेधिता का परीक्षण करने में स्वयं भी मरता है - वहां तक कथानक को ले जाता है। नाटक को संस्कृत परंपरा के अनुरूप सुखान्त बनाने के लिये नाट्यकार ने कथानक के उस अप्रिय अंश को छोड दिया है और प्रेमियों के विवाहोत्सव में ही संपन्न होनेवाला सुखान्तक कथांश ही लिया है। इतना ही नहीं, सुखान्त को अधिक प्रतीतिकारक एवं संभवतः चिरस्थायी बनाने के लिये जयचन्द की प्रकृति में भी परिवर्तन किया है। नाटक में पृथ्वीराज के साथ जयचन्द का विरोध कट्टर नहीं है, केवल प्रसंगोत्पन्न है। व्यक्तिमात्र में स्वाभाविक ऐसी लोकैषणा से प्रेरित होकर जयचन्द चक्रवर्तित्व के लिये अपेक्षित पूर्णता न होते हुए भी राजसूय का उपक्रम कर देता है पर पृथ्वीराज के विरोध और यज्ञ में निमन्त्रण के अस्वीकार के औचित्य को वह भी समझता है। राजसूय का आनुषङ्गिक स्वयंवर भी वह नहीं करता है, केवल पृथ्वीराज के अस्वीकार से तत्काल

उत्पन्न क्रोध के कारण संयोगिता को एकान्तवास दे देता है, उसे स्वयंवर के लिये बाध्य नहीं करता। इतना ही नहीं, पृथ्वीराज जब संयोगिता का अपहरण कर ले जाता है तब उसके विवाहोत्सव में अपनी कन्याप्रदान की संमति के साथ उपस्थित भी रहता है। इस प्रकार विवाहोत्सव के आनंद में कन्या के पिता के विरोध की कलुषता भी दूर हो जाती है।

नाटक के शीर्षक में जो 'स्वयंवर' शब्द का प्रयोग हुआ है उसकी सार्थकता को भी इसी दृष्टि से परखना होगा। 'स्वयंवर' शब्द के प्रयोग के औचित्य के विषय में शंका उठाई गई है। *'स्वयंवर' शब्द का जो प्रसिद्ध अर्थ है, स्वयंवर का जो परंपराप्राप्त विधि है - जिसमें राजकन्या के पतिवरणहेतु राजाओं-राजकुमारों को एकत्र निमन्त्रित किया जाता है - वह तो इस नाटक में है ही नहीं। प्रत्युत यहां तो कन्या का हरण होता है। पर ध्यातव्य है कि यह हरण कृष्ण द्वारा रुक्मिणी के हरण की तरह राजकुमारी संयोगिता की इच्छा के अनुसार हुआ है। 'स्वयंवर' का यही अर्थ नाट्यकार को यहां अभिप्रेत है। स्वयंवर का निर्देश तो प्रथम अंक में ही हो जाता है और जैसे टीकाकार ने बताया है (पृ. १२) यह निर्देश ही कथानक का बीज और मुख सन्धि का आरम्भ है। पर संयोगिता का स्वयंवरत्व कुछ भिन्न-विशिष्ट रूप में प्रगट हुआ। उसका निरुत्सवत्व, निरुत्सवत्व का कारण पिता को अवगत होना, पिता का पृथ्वीराज के प्रति क्रोधित होते हुए भी कट्टर न होना - इन कारणों से प्रत्यक्ष स्वयंवर हो ही नहीं पाया, स्वयंवर की घटना कुछ भिन्न रूप से ही घटी। जयचन्द के ही मुख में नाट्यकार ने सातवे अंक में यह उद्गार रखा है।

मिथोऽनुरागाभ्युदयप्रहर्षितः स्वयंवरां मे तनयां समर्प्य।

सम्राट् स्वयं विक्रमशालिने ते कृतार्थतामद्य गतोऽस्मि सान्वयः ॥ (सं.स्व.७.१३)

दोनों के मिथः अनुराग को पिता ने स्वीकार किया, प्रेमी पति का स्वयं वरण करने वाली पुत्री का कन्याप्रदान किया, और राजसूय में चक्रवर्तित्व के विवाद और तज्जन्य मनोदुःख को समाप्त करते हुए जामाता को 'सम्राट्' संबोधन भी कर दिया। सम्राट् बनने हेतु राजसूय का आरंभ तो स्वयं किया, पर अन्त में वह पद जामाता को ही प्राप्त करा दिया। जयचन्द का यह समाधान ऐतिहासिक चाहे न हो, समकालिक समाज

---

* द्रष्टव्यः Prajapati Sweta, *The Title of Samyogitasvayamvaram: A Problem*, JOIB, Vol. XLIII, No. 3-4, 1994, pp. 223-238.

की स्वयंवरिणी कन्या के पिता के स्नेहसिक्त क्षमाशील पितृभाव को तो प्रकट करता है।

इस सूक्ष्म समंजसता के कारण नाट्यकथानक को भी गोपुच्छाग्र एकाग्र संवादिता प्राप्त होती है। वर्णसंघटना का एक सहज लय, पदचयन की प्रयोजक प्रासादिकता, पदशय्या का एक प्रकार का अनाक्रमक प्रशिष्ट गौरव - रचनाशैली के इन लक्षणों से तो मूलशंकरजी का समग्र लेखन व्याप्त है। नाटक की प्रसंगयोजना-अंकयोजना भी सरल गति से प्रवाहित होती है। कार्यवेग भी - न मन्द, न तेज - प्रसन्न रुचितर्पक गति से बहता है। पात्रालेखन-भावनिरूपण भी प्रशिष्ट सहृदयों को मनोनुकूल और रुचितर्पक बन पड़ा है। कुल मिलाकर संयोगिता-पृथ्वीराज की अत्यंत परिचित प्रणयकथा का यह एक प्रसन्नकर नाट्यरूप सिद्ध हुआ है।

संयोगितास्वयंवरम् का वातावरण रूमानी प्रणयकथा का है तो *छत्रपतिसाम्राज्यम्* का वातावरण नितान्त संघर्षमय कर्मशीलता का है। बीसवी शती के दूसरे चरण में जब हमारा दूसरा स्वातंत्र्यसंग्राम गतिमान् हो गया था ऐसे समय में शिवाजी जैसे स्वातन्त्र्यवीर लोकनेता के जीवनचरित का स्मरण अत्यंत कालोचित था और उसका अर्वाचीन संस्कृत के सृजनशील साहित्य में यह निरूपण कदाचित् सर्वप्रथम है। नाटक के आरंभ में शिवराज और उसके मित्र एसाजी, तानाजी, बाजी इत्यादि यवनशासकों की नीतिरहित निर्घृण दुष्टता और मूर्ख क्षत्रियों की मिथोविद्वेष के कारण दासतावाली देश की परिस्थिति से चिंतित और व्यग्र हैं। शिवराज के मन में विरोध क्रियाशील हो रहा है, तभी समाचार आते हैं की बहन को बहनोई के घर छोड़ने जा रहे नेताजी को मारकर बीजापुर के यवनसैनिकों ने बहन का अपहरण कर लिया। सुनते ही शिवराज हिन्दू धर्मराज्य की स्थापना का निश्चय कर लेता है, सभी मित्र और दादोजी देखमुख मरणान्तक साहाय्य का वचन देते हैं, दादाजी कोंडदेव राजनीति के कुछ मौल नियमों की सीख देते हैं, और कार्यसिद्धि के शकुन के रूप में तोरणादुर्ग का वृद्ध और तीर्थयात्रा का इच्छुक दुर्गपाल अपना दुर्ग शिवराज को सौंप देता है (अंक १)। शिवराज अब साम, दाम, दण्ड, भेद से चाकण, कोण्डने, पुरन्दर आदि किले जीत लेता है। नेताजी भी मरा नहीं था, पुनः संज्ञा पाकर वह यवनसेनानायक से राजदुर्ग छिनकर शिवराज को जा मिलता है। सह्याद्रि के मावळे वनवासियों को सैन्य में जोड़ना है पर उनके तालीम-वेतन के लिये धन नहीं। शिवराज आर्द्र भक्ति से माता भवानी की प्रार्थना करता है तो दैवी कृपा के रूप में उसी किले में गड़ा हुआ बहुमूल्य खजाना अचानक उसके हाथ लग जाता है (अंक २)। उसे भवानी तरवार की भेंट प्राप्त होती है। पराजित सेना के सैनिकों को और

सेनापति-किलेदारों को सन्मानपूर्वक वह छोड देता है। आबाजीने कल्याण प्रान्त जीत कर एक सुन्दर स्त्री का उपहार दिया तो शिवाजी घोषणा करता है कि परस्त्री तो उसके सेवकों के लिये भी पुत्री समान होगी। बीजापुर-सुलतान के सातसौ गान्धार सैनिक शिवराज की सेना में भर्ती हो जाते हैं। सुलतान शिवराज पर दबाव डालने के लिये उसके पिता को कैद करता है, तो शिवराज दिल्ली के मोगल बादशाह को पिता की मुक्ति की याचना के साथ सन्धिपत्र भेजता है, और राजमाता (जीजाजी) को घटनाक्रम से अवगत कराता है (अंक ३)। शिवराज की सहायता के लिये स्वामी रामदास ने भी युवानों में राष्ट्रभावना जगाने के उद्देश्य से सैंकडों मठ स्थापित किये हैं। बीजापुर-सुलतान का सेनापति अफझलखाँ दूत भेजता है - 'क्यों दोनों ओर के सैनिकों को मरवायें, कभी अकेले बैठकर सुलह कर लेते हैं'। पर शिवाजी दूत से गूढाशय जान लेता है - अकेले में मारने की योजना है। वह योजनापूर्वक एकान्त शिबिका में मिलता है और व्याघ्रनख से अफझल को चीर डालता है (अंक ४)। बाजीराव अपने प्राण देकर यवनसेना के मार्ग को रोकता है और शिवराज को क्षेमकुशल विशालगड में पहुंचा देता है (अंक ५)। गुप्तचर बताता है कि दिल्ली पादशाह ने शिवराज को पकड़ लाने के लिये जिस दक्खन के सूबे को आदेश दिया है वह पूना में शिवराज के महल में नाचगान में गुलतान है। शिवराज अपने सेवक की विवाहयात्रा में छन्नवेश में जाकर उसे मारने की योजना बनाता है (अंक ६)। बादशाह औरंगज़ेब की ओर से अंबर का महाराजा जयसिंह किसी प्रकार शिवराज को सन्धि के लिये मनवाकर दिल्ली-दरबार में भेजता है (अंक ७)। दिल्ली दरबार में औरंगझेब शिवराज को नीचा आसन देकर अपमानित करता है और उसे उसके निवास में नजरकैद करता है। शिवराज सावधानी से पूर्वयोजनानुसार फलों के टोकरे में छिपकर निकल जाता है (अंक ८)। फिर यतिवेश में आकर माता के समक्ष प्रगट होता है। इस बीच उसके मन्त्री ने बहुत सारे किले वापस जीत लिये हैं। सिंहगढ को जीतने के लिये स्वयं तानाजी जाता हैं (अंक ९), पर किला जीतने में उसके प्राण की आहुति चड़ जाती है। इस विषाद की पश्चाद्भूमिका में छत्रपति महाराज शिवराज का राज्याभिषेक होता है और मराठा साम्राज्य की विधिवत् स्थापना होती है (अंक १०)।

छत्रपतिसाम्राज्यम् घटनाबहुल नाटक है। महाराज शिवराज के जीवन की कई सारी घटनाओं को यहां निरूपित किया गया है। *संयोगिता०* जैसी काल और कार्य की एकता यहां नहीं है। ये घटनाएँ शिवाजी के जीवन के प्रायः तीन दशकों के कालखंड में फैली हैं। धर्मराज्य की स्थापना का निश्चय १६४५-६ में हुआ होगा, पिता

शाहजी का कारावास १६४८-१६४९ से १६५६ तक रहा, अफ़ज़लखान का वध १६५९ मे किया गया, जयसिंह-शिवराज का मिलना १६६५ में हुआ, औरंगज़ेब के दरबार में पेशगी, नज़रकैद और आत्ममोचन १६६६ (मई से अगस्त) में, पुनरागमन नवम्बर में, चौथ-वसूली का अधिकार १६७२ में और साम्राज्याभिषेक १६७४ में हुआ।

इतने विशाल कालखण्ड में फैले, वैविध्यपूर्ण घटनाओं से संकुल एवं निरन्तर स्वातन्त्र्यसंघर्षमय जीवन में से परस्पर असंबद्ध घटनाओं को इस प्रकार चुनना कि इनका कालक्रम भी बना रहे और इनमें कार्यकारणसंबंध की गन्धर्वनगरलेखा भी दिखती रहे - ऐसा संशोधनात्मक नाट्यसंविधानकर्म रचनाकार के प्रगाढ अभ्यास एवं पैनी संयोजक दृष्टि के बिना असंभव था। यवनों के नय-नीतिरहित निर्घृण एवं कुटिल अत्याचारों से क्रुद्ध होकर शिवराज धर्मराज्य की स्थापना का निश्चय करता है (अंक १), और मानुषी (१) दैवी (२) एवं आत्मिक चारित्र्यबल (३) की सहायता से अपना प्रभाव फैलाने लगता है। उसे रोकने के लिये बीजापुर-सुलतान ने नायक के पिता को कैद किया तो नायक दिल्ली-बादशाह के साथ सन्धि में उसका उपाय खोजता है (३)। सुलतान का सेनापति अगर इसे समझौते के छल से मारना चाहता है तो नायक दूतरहस्यभेद करके प्रतिछल से सेनापति को ही मार देता है (४) और निष्ठावान् मित्र-सेवक की प्राणाहुति का मूल्य चुका कर किले में सुरक्षित पहुंचता है (५)। इससे सावधान होकर इस सह्यमूषक को पकडने के लिये बादशाह ने यदि दक्खन के सूबे को भेजा तो छलप्रबन्ध से नायक उसे भी मात दे देता है (६)। अब निरुपाय बादशाह जयसिंह के माध्यम से नायक से सन्धि करवाता है (७)। इसके बाद भी अगर बादशाह नायक का अपमान और नज़रकैद करता है तो नायक करण्डकपट से मुक्त होकर (८) अपना साम्राज्याभिषेक करा देता है (१०)। सुलतान और बादशाह जैसे दो प्रबल खलनायकों के सभी छल-बल को वैसी ही कुटिल चालों से अपास्त करके शिवराज धर्मराज्यसंस्थापन का अपना निश्चय सिद्ध करता है। पूरे नाटक में व्याप्त इसी संविधानसूत्र से नाट्यकार ने इन विशृंखल घटनाओं में कार्य की एकता को सिद्ध किया है। नाट्यकार की नाट्यसंविधानकला की यह एक महती उपलब्धि है।

एक प्रकार से इसे चरित्रप्रधान नाटक भी कह सकते हैं। शिवराज के पात्र का निरूपण ही नाटक का प्रधान आशय है। शिवराज के पात्र की कई रेखाएँ उभरकर सामने आई हैं। यवनों की दुष्टता और क्षत्रियों की क्षुद्रता से शिवराज खिन्न है, तो

उसकी विचारशील कर्मठता स्वयं ही एसाजी, बाजी, नेताजी, तानाजी जैसे समर्पित मित्रों को आकर्षित करती है। भवानी में श्रद्धा है और भवानी तलवार की तरह तोरणा दुर्ग और गुप्त खजाने जैसी अनपेक्षित दिव्य सहाय का पात्र भी बनता है। प्रियातिप्रिय मित्रों को बड़े दुःख से स्वातन्त्र्ययज्ञ में प्राणों की आहुति देते देखना पड़ता है। सुंदर स्त्री को देखकर प्रजाधर्म का विस्मरण नहीं होता। सुलतान के सैनिक शिवराज की सेना में प्रवेश चाहते हैं तो उसका विचार है - *समदृष्ट्यधीनैव साम्राज्यप्रतिष्ठा*। यवनों की दुष्टता और क्षत्रियों की क्षुद्रता दोनों को वह देखता है और समझता है कि *स्वप्रजानिर्विशेषं प्रजानां परिपालनमेव सर्वत्र राज्ञां परमो धर्मः*। इसीलिये स्वामी अगर नृपापसद है तो ऐसे भर्ता का विप्रकार और धर्मपरक भूभृत् का अविरोध - प्रत्युत साहाय्य - ही धर्मानुकूल है ऐसा वह ब्राह्मण दूत को समझा भी सकता है। शठं प्रति शाठ्यम् और छलाश्रयी शत्रु का कपटाश्रय से ही निराकरण वह करता है। किंबहुना, भगवान् कृष्ण की तरह वह भी समझता है कि धर्म परंपराप्राप्त और केवल ऊपरी आचारविधान में नहीं, उसके मूल आशय की रक्षा करनेवाले प्रसंगानुकूल व्यवहार के आचरण में निहित है। आचार की परंपरा नहीं, लोकहित की रक्षा ही धर्म है। क्षत्रिय का धर्म समझता है, पर गुरु रामदास के समक्ष निर्वेद प्रकट हो ही जाता है-*भगवन् अथ मया यावज्जीवं किमेवमेव हिंसाप्रधानो धर्मोऽनुष्ठेयः* (१.२ से पूर्व)। धन के अभाव में साधनविकलता से विषण्ण है तब मित्र नेताजी के पास मन की गहरी बात खुल ही जाती है। 'हे वीराग्रसर, तुझे ही सारी राष्ट्रोद्धार की प्रवृत्ति को सौंपकर मैं तो हाथ में दण्डकमण्डलु लेकर, सब छोडछाडकर, परब्रह्मनिष्ठ परिव्राजक बन जाऊँगा' (२.५)। क्षत्रिय के स्वधर्मनिष्ठ आचरण के पीछे भी एक गहन विरक्ति का भाव - यही शिवराज के पात्र की मूल रेखा है।

छत्र०नाटक का एक दूसरा पक्ष भी ध्यान देने योग्य और महत्त्वपूर्ण है। शिवराज के स्वातन्त्र्यसंग्राम के कुछ आयाम यहां उजागर होते हैं। शिवराज के क्रोध एवं साम्राज्यस्थापननिश्चय का कारण उसकी वैयक्तिक महत्त्वाकांक्षा नहीं है, यवनों के निर्घृण, नीतिरहित और कुटिल अत्याचारों ने उसके क्रोध को जगाकर धर्मराज्यस्थापना के निश्चय को प्रेरित किया है। यवनों के अत्याचारों ने सभी मर्यादाएँ लांघ दी है।

धर्मध्वंसवृतान् परधने लुब्धान् मृदौ निर्दयान्
मन्दान् विक्रमशालिनि प्रतिभटे कूटप्रयोगोत्कटान्।

विश्वस्तेऽपि च हिंस्रकान् कुलवधूसंकर्षणे सोत्सवान्

गोविप्रेष्वपचारिणः कथमिमान् देवद्विषः संश्रये ॥ (१.२४)

दूसरी ओर क्षत्रियों का प्रतिव्यवहार कैसा है ?

परस्परोन्मूलनसंप्रवृत्तान्

विहाय धर्मं विषयेषु सक्तान् ।

नित्यं प्रजास्वापहरान्नृपालान् ... (१.६)

तीसरी ओर स्वामिनिष्ठा के किस आदर्श का हमारी विप्रादि प्रजा अनुपालन करती है ? *स्वधर्मनिष्ठानामपि भर्तुरनिष्टापादनेन त्वपरिहार्य एव कृतघ्नतादोषः ।* (४.१४ के पश्चात्)

धर्मनिष्ठा के ऐसे व्यामोह से भ्रमित हिन्दू प्रजा जब अधर्मनिष्ठ यवनों की संनिष्ठ सेवा करती रहेगी तो परिणाम क्या होगा ?

भवन्ति विप्रा यदि धर्ममूर्तयो

विरोधिनो धर्मपरस्य भूभृतः ।

तदा प्ररोहैः सह धर्मपादपः

समूलमुच्छेदमवाप्नुयाद् ध्रुवम् ॥ (४.१६)

हमारे देश की दुर्दशा का एक महत्त्वपूर्ण कारण ऐसी भ्रमित धर्मदृष्टि एवं तज्जन्य व्यवहाराचार भी है। परंपरागत धर्मदृष्टि और संनिष्ठ धर्माचरण की ऐसी सूक्ष्म विचारणा इस नाटक में कुछ स्थानों पर हुई है जिससे इस नाटक को एक विशिष्ट वैचारिक-दार्शनिक आयाम प्राप्त होता है। ध्यातव्य है कि ऐसे विमर्श यहां कभी दीर्घ या निर्वेदकारक न बनकर नायक के प्रसंगप्राप्त व्यवहारों की कर्तव्यता को वैचारिक पीठिका पर प्रतिष्ठित करते हैं।

छत्र०नाटक, संयोगिता० से बिलकुल भिन्न प्रकार का नाटक है। *संयोगिता०* से इसका वातावरण नितान्त भिन्न है, पात्रविधान अत्यन्त भिन्न है, कथानकसंविधान एकदम भिन्न है। घटनाबहुल नाटक होने के कारण इसका कार्यवेग त्वरित है। प्रणय जैसे मधुर भावों को यहां अवकाश नहीं है, प्रत्युत यहां तो कुटिल राजनीति, दावपेच, छलबल आदि की प्रधानता है। इसका कुटिल राजनयिक प्रपंचोंवाला कथानक कुछ *मुद्राराक्षस* का स्मरण कराता है, तो इसका प्राञ्जल प्रशिष्ट भाषाविधान *मृच्छकटिक* की याद दिलाता है। संस्कृत रूपकप्रकारों की दृष्टि से देखें तो *संयोगिता०* का आस्वाद

प्रशिष्ट नाटक के जैसा है जबकि *छत्र०नाटक* का आस्वाद प्रकरण रूपक के समान है। दोनों में इतनी भिन्नता है कि कभी तो ये दोनों नाटक एक ही रचनाकार की कलम से नीकले - और वह भी एक ही वर्ष के अन्तराल में - इसका आश्चर्य होता है।

पूर्वनिर्धारित नाट्यत्रयी का तीसरा नाटक *प्रतापविजयम्* एक वर्ष के अन्तराल के बाद प्रकाशित हो सका । इसके नौ अंकों में दिल्ली के मुग़ल सम्राट अकबर के सर्व प्रकार के दबाव के सामने न झुककर अनेक कष्टों को सहते हुए भी अपनी स्वातन्त्र्यनिष्ठा में अडग रहने वाले मेवाड के इतिहासप्रसिद्ध महाराणा प्रताप के जीवनप्रसंगों का निरूपण हुआ है । उस समय प्रायः सभी राजपूत राजाओं ने अकबर का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था । मानसिंह अपनी बहन जोधाबाई का अकबर से ब्याह कराकर उसका एक सेनाध्यक्ष बन गया था और राजपूतों को सामन्त बनाने के अकबर के कार्य में साहाय्य भी कर रहा था । नाटक के प्रथम अंक में मानसिंह अकबर की ओर से प्रतापसिंह के पास यह प्रस्ताव लेकर आता है कि प्रतापसिंह अकबर के प्रधान सामन्त का पद स्वीकार करे । प्रतापसिंह दृढता से प्रस्ताव का अस्वीकार करता है । मानसिंह का राज के अतिथि के रूप में यथोचित सत्कार तो करता है पर उसके साथ भोजन करने से इन्कार कर देता है । इस अपमान से क्रुद्ध मानसिंह प्रतिशोध की प्रतिज्ञा के साथ बिना भोजन किये लौट जाता है । प्रतापसिंह सैन्य को तत्पर रहने का आदेश देकर हल्दीघाटी में आश्रय लेने की तैयारी करता है (अंक १)। हल्दीघाटी में प्रतापसिंह का सेनानिवेश । तुरुष्क सेना के साथ युद्ध । घायल प्रतापसिंह को युद्धभूमि से उड़ा ले आनेवाला उसका प्रिय अश्व चेतक घायल होकर मर जाता है । युद्ध में राजछत्रधारी झाला मानसिंह की मृत्यु । मानसिंह का परावर्तन । गुप्तचर बताता है कि अकबर स्वयं मेवाड पर आक्रमण के लिये आयेगा । प्रतापसिंह का कुंभलगढ में आश्रय (अंक २)। मोगल सेनानिवेश । लम्बे घेरे के बाद भी प्रतापसिंह हाथ नहीं आता, प्रत्युत मुग़ल सेना का छिप छिप कर विनाश करता रहता है । अकबर मानसिंह के उपर अकुलाया है । प्रजा का प्रेम है तब तक प्रतापसिंह हाथ नहीं आ सकता। गान्धार में विप्लव के समाचार । अकबर का जाना ज़रूरी। अकबर का सामन्त (किंतु प्रतापसिंह का खुला प्रशंसक) पृथ्वीराज युद्धविराम का परामर्श देता है । अकबर का अस्वीकार। घेरा रहेगा । प्रतापसिंह पकड़े जाने तक मानसिंह (और भगवानदास) का राजदरबार में प्रवेश निषिद्ध । अकबर लौट जाता है (अंक ३)। अकबर का ब्राह्मण दूत को पुनः प्रतापसिंह के अमात्य के पास भेजना; दूसरी ओर, प्रताप को बिना पकड़े लौटने पर प्राणदण्ड के आदेश के साथ सेनापति

को अजमेर भेजना । मन्त्री के परामर्श से प्रतापसिंह का गिरिकन्दराओं में निवास करने का निर्णय । महारानी के साथ पृथ्वीराज की बहन भी गिरिवनों में रहना चाहती है । उसकी और युवराज की नेत्रपल्लवी (अंक ४)। युवराज उसे रोकने के लिये अपने को पिता के आधीन बताता है तो वह कहती है कि वह स्वयं उनकी (=प्रतापसिंह की) अनुमति के लिये प्रयास करेगी । फिर वह वनेचरों की सहाय से पास आये शत्रुगणों को परास्त करती है । तब भी प्रतापसिंह उसे पुत्रवधू नहीं, केवल पुत्रीनिर्विशेष रूप में अपने कुल में रहने की अनुमति देता है (अंक ५)। अकबर का मन्त्रगृह । वह परस्पर कलह करते भारतीयों को संघटित करना चाहता है । गुप्तचर सेनापति का संदेश लाता है कि प्रताप शरण में आयेगा । पृथ्वीराज इस समाचार को अलीक कहता है तो अकबर उसे उसके चरके द्वारा तथ्य जानने का आदेश करता है (अंक ६)। गिरिशिखर पर प्रतापसिंह । पृथ्वीराज का संदेश- 'आपकी शरणागति के समाचार को मैंने मिथ्या कह दिया है । मैं गर्व करुं या कटार खा लूँ ?' शत्रुओं के बीच भी इस मित्र की अडग श्रद्धा से प्रसन्न प्रताप उत्तर भेजता है, 'शरण केवल एकलिङ्गकी ! क्षुद्र तुरुष्कराज की शरण कैसी ?' पृथ्वीराज की प्रणयभग्न बहन को युवराज का आश्वासन (अंक ७)। प्रतापसिंह के बाल कुमार का पुनः कुंभलगढ जाने का हठ । मुगल सेना वर्षा से त्रस्त । अकबर ने घेरा उठा लिया। मेवाड लौटने का यह उचित समय है और प्रजा स्वागत के लिये तत्पर है । प्रतापसिंह स्वयं उदयपुर पर आक्रमण करता है (अंक ८)। उदयपुर में विजयोत्सव (अंक ९)।

प्रतापविजयम् में महाराणा प्रतापसिंह के पात्र में स्वातन्त्र्य की उत्कट भावना मूर्त्तिमंत हुई है । *छत्र0नाटक* में यवनशासन की दुष्टता-कुटिलता-अनाचार के कारण त्रस्त शिवराज का लक्ष्य तो धर्मराज्य की स्थापना का है, फिर भी कभी पिता के कारावास के कारण या कभी औरंगज़ेब के दबाव के कारण वह मुघल बादशाह की सहाय-संधि की याचना करता है । प्रतापसिंह का सूर्यवंशी सिसोदिया कुल का राजपूती गौरव उसे इस प्रकार के किसी समाधान से दूर रखता है । शठं प्रति शाठ्यम् भी वह नहीं करेगा । यवनों के सामने अपना क्षत्रिय गौरव त्याग कर समाधान करनेवाले मानसिंह के साथ वह भोजन नहीं करेगा - इसका परिणाम कष्टदायक होगा यह जानते हुए भी। पृथ्वीराज तो उसका प्रशंसक मित्र है, शत्रु के दरबार में भी उसकी प्रशंसा करता रहता है, फिर भी उसके यवन की दासता स्वीकार करने के कारण उसकी बहन को वह पुत्रवधू के रूप में स्वीकार नहीं कर सकता, चाहे तो वह पुत्रीनिर्विशेष के रूप में राजकुल में रह ले । अकबर जैसे समर्थ यवन शत्रु के सामने

अगर वह युद्ध में नहीं टिक सकता तो राजप्रासाद के सुख और दुर्ग के रक्षण को छोडकर पर्वतीय जंगलों के कष्टमय जीवन को स्वीकार करता है पर यवन का मुजरा नहीं करेगा । उसकी महिषी और युवराज भी ऐसी ही प्रबल भावना से ओतप्रोत हैं। युवराज पृथ्वीराज की बहन के प्रणय को स्वीकार नहीं करता । अमात्य भी अकबर के उत्कोचक प्रस्ताव के वश नहीं होता, सावधान हो जाता है । इसी अणनम स्वातंत्र्यप्रेम से प्रताप ने अपनी सारी जनपद एवं वनवासी प्रजा की अचल भक्ति जीत ली है, और इसी प्रजाभक्ति के बल पर वह अकबर की बड़ी सेना, प्रभूत धनसामग्री और लम्बे अरसे के पश्चात भी घेरे के च स्वतंत्र रह सकता है, पर्वत से पर्वत छुपता रहता है, बादशाह को सैन्यनाश से परेशान कर सकता है और अरसे के बाद घेरा उठा लेने को विवश कर सकता है । प्राणान्त दण्ड के भय के सामने भी उसकी प्रजा झुकती नहीं । जिसके केन्द्र में प्रतापसिंह है ऐसे एक अडग निष्ठावाले स्वातन्त्र्यभक्त राष्ट्र का वातावरण इस पूरे नाटक में साद्यन्त व्याप्त है।

स्वातन्त्र्यप्रेम की इस व्यापक पश्चाद्भू में प्रताप को न पकड सकने के कारण अकबर के क्रोध का भाजन बनते हुए और ‘कृपापारावार’, ‘कृपावतार’, ‘सार्वभौम’ जैसे संबोधन कर के झुककर तीन बार अकबर के सामने मुजरा करते हुए मानसिंह और भगवानदास जैसे राजपूतों की दशा अतिदयनीय दिखाई पडती है ।

अकबर के चरित्र के अच्छे अंशो का भी निर्देश किया गया है । पूरे भारत की प्रजा को वह एक सूत्र में बांधना चाहता है । इसीलिये परस्पर कलह करते क्षत्रिय राजाओं को वह अपने छत्र के नीचे लाने का इच्छुक है । इसी कारण से वह नई राजभाषा उर्दू तैयार कराकर पूरे देश में फैलाना चाहता है । पृथ्वीराज जैसे स्पष्टवक्ता क्षत्रिय को भी उसने अपने सामन्तगण में सम्हाला है। अकबर जब निमाज़ पढ़ने जाता है तब उसकी हिन्दू रानी शिवमंदिर जाती है – ऐसा धर्मस्वातन्त्र्य भी निरूपित किया गया है । पर कार्यकलाप कितना ही महान् क्यों न दिखे, मूल बात तो गूढाशय की है। अकबर का इन सारे अच्छे कार्यों के पीछे आशय तो अपने चक्रवर्तित्व को सिद्ध करने की महत्त्वाकांक्षा ही है ।

और अकबर का आशय चाहे कितना ही महान् क्यों न हो, उसके लिये प्रताप अपने स्वातन्त्र्य की आहुति क्यों दे ?

छत्र०नाटक की तुलना में इस नाटक की कार्यगति मन्द है, कुछ *संयोगिता०* जैसी । प्रताप और उसके मन्त्रियों के कार्यनिर्णय के विमर्श में राजनयशास्त्र के कुछ

सिद्धांतो की चर्चा प्रसंगागत है पर कार्यवेग पर प्रभाव भी डालती है । अकबर की अपने विचारों की अभिव्यक्ति का भी ऐसा ही प्रभाव पड़ता है ।

पृथ्वीराज की भगिनी राजकुमारी युवराज के प्रति आकृष्ट होती है, प्रणय व्यक्त करती है, प्रताप की अनुमति पाने का स्वयं प्रयास करती है, प्रताप के स्वातन्त्र्य के द्दढ आदर्श के कारण असफल होती है, युवराज के आश्वासन के उपरांत भी प्राणत्याग का विचार करती है - इन निष्परिणामी प्रणय के घटनाप्रसंगों को पूरे नाट्यसंविधान में पताका के रूप में देखा जा सकता है । नाट्यकथानक में यह उपकथानक नाट्यसंविधान की द्दष्टि से चाहे उपकारक न लगे, पर इससे स्वातन्त्र्यभावना के आदर्श का एक परिमाण अवश्य प्रकट होता है । स्वातन्त्र्य का यह आदर्श इतना कठिन है कि इस स्वातन्त्र्य यज्ञमें सहयोग करनेवाले युवराज-राजकुमारी जैसे सहयोगियों को भी अपनी निजी सहज सुखात्मक सांसारिक भावनाओं का बलिदान देना पडेगा । महात्मा गांधी के स्वातन्त्र्यसंग्राम में जुडनेवाले कई युवकों-युवतियोंने अपने स्नेहसंबंधों का बलिदान कर दिया था, कई ने तो आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण कर लिया था । स्वातन्त्र्य के लिये सर्वस्व के बलिदान की विशाल परिकल्पना में इन भावनाओं-व्रतों का भी समावेश हो जाता है । राजकुमारी के निष्परिणामी प्रणय का यह पताकास्थानीय उपकथानक भी कुछ ऐसी भावना को, स्वातंत्र्यसंग्राम के गांधी-सत्याग्रह के कुछ ऐसे ही प्रभावों को प्रकट करता है । स्वातन्त्र्य की साधना में केवल भौतिक सुखों की नहीं, प्रणय और वात्सल्य जैसी कई भावनाओं की भी आहुति देनी पडती है ।

इस द्दष्टि से महात्मा गांधी के कई विचारों की प्रतिच्छाया इसमें देखी जा सकती है ।

***

तीनों नाटकों की अंग्रेजी में लिखी गई प्रस्तावना में मूलशंकरजी ने संस्कृत नाटक के रस-नाटक-संविधानादि लक्षणों का वर्णन किया है और अपनी रचनाओं में संस्कृत नाटक के उसी प्रारूप का प्रायः अनुसरण किया है । उनका प्रशिष्ट वृत्तों में पद्यों की रचना करना, कथानक का सप्ताधिक अंकों में (पर द्दश्यों में नहीं) विभाजन, नान्दी-सूत्रधार-नटी-गीत से प्रारंभ-प्रस्तावना-प्रवेशक-विष्कम्भक आदि का प्रयोग, सस्मितम्-प्रविश्य-निष्क्रान्ताः जैसी रंगसूचनाएँ - सब कुछ प्रशिष्ट संस्कृत नाटक का वातावरण रचते हैं । कुछ समयानुकूल परिवर्तन इन्होंने किये भी हैं । जैसे,

इनके सभी स्त्रीपात्र संस्कृत भाषा का ही प्रयोग करते हैं । *मृच्छकटिक* जैसे नाटकों में वसन्तसेना ने अपवादरूपेण कुछ संवाद *संस्कृतमाश्रित्य* कहे होंगे पर नियम से तो वसन्तसेना-उर्वशी-वासवदत्ता-शकुन्तला-रत्नावली-सीता आदि सभी स्त्रीपात्र प्राकृत में ही बोलते हैं । पर मूलशंकरजी ने सभी स्त्रीपात्रों को संस्कृत में ही बुलवाया है । दूसरे, नाटक के प्रत्येक अंक में मुख्य पात्र के रूप में नायक या नायिका का होना उन्होंने अनिवार्य नहीं माना । *संयोगिता0* के प्रथम अंक में न नायक है न नायिका । हाँ, जयचन्द जरूर है और उसका पात्रगौरव हम प्रमुख पात्र के जैसा कह सकते हैं । *प्रताप0* में कुछ ऐसा प्रकट होता है कि प्रथम दो अंको में नायक प्रतापसिंह उपस्थित है, फिर तीसरे में प्रतिनायक सार्वभौम अकबर, फिर दो अंकों में प्रतापसिंह, फिर एक अंक में अकबर । एकमात्र *छत्र0नाटक* के सभी अंकों में नायक शिवराज उपस्थित है (नायिका तो पूरे नाटक में है ही नहीं)। तीसरे, अपने प्रथम नाटक *संयोगिता0* में *विक्रमोर्वशीय* जैसे प्रशिष्ट नाटक का अनुसरण करते हुए पृथ्वीराज की प्रथम महिषी इच्छिनीकुमारी और नर्ममित्र विदूषक के पात्रों को नाममात्र को एक ही अंक में उपस्थित किया है, पर ऐसे पात्रों की अप्रासंगिकता एवं अनावश्यकता उन्होंने तुरन्त परख ली और बाद के दोनों नाटको में ऐसा एक भी पात्र नाटक में उपस्थापित नहीं किया जिसकी नाटक के सामग्रिक संविधान में अनिवार्यता न हो। अर्थात्, मूलशंकरजी प्रशिष्ट संस्कृत नाटक के प्रारूप का अनुसरण तो करते हैं, पर यह गतानुगतिक नहीं, आवश्यकता पड़ने पर वे इसमें यथोचित परिवर्तन भी करते हैं ।

पर इनके नाटकों की प्रमुख विशेषता है इनमें आये हुए शास्त्रीय बंदिशों वाले गीत । भास-कालिदासादि के प्रशिष्ट संस्कृत नाटकों में इस प्रकार के गेयपद्य नहीं होते थे । इनमें *शाकुन्तल* की प्रस्तावना अथवा हंसपदिका के प्रसंग जैसे स्थानों पर गान तो होता ही था, *विक्रमोर्वशीय* का चतुर्थांक तो कदाचित् संगीतनाट्य जैसा ही रहा होगा, पर वहां भी गाया जानेवाला पद्य तो वही परंपरागत छान्दस पद्य था, भले वह मात्रामूलक हो। बीसवीं शती के मध्य भाग में मुंबई जैसे महानगर में भाटवडेकर आणि मंडली जब कालिदासादि के नाटकों का मंचन करती थी तब वे भी इन्हीं छान्दस पद्यों को ही शास्त्रीय रागों की बन्दिशों में ढालकर गाते थे । कदाचित् मात्रामूलक आर्या-गीति जैसे छंदों को रागबद्ध करने में सरलता रही होगी । पर स्वतंत्र रूप से ध्रुवपद और दो-तीन अन्तरा-वाले गायन के ही हेतु से रचे गये गेय पद्यों का प्रचलन नहीं था । इस प्रकार के गेयपद्यों में ही निबद्ध सर्वप्रथम (उपलब्ध) रचना कदाचित् *गीतगोविन्द* ही है । उसके साथ ही प्रादेशिक भाषाओं में भी स्वतंत्र

काव्यप्रकार के रूप में केवल गेयक्षमतावाले स्वतंत्र पदों-गीतों की परंपरा शुरू हो गई थी । गुजराती-हिन्दी के पद और बंगाल के बाउल तथा महाराष्ट्र की लावणी इसी परंपरा का निर्देश करते हैं । पर नाटकों में गीतों का संयोजन अर्वाचीन काल में जन्मी सवेतन व्यावसायिक रंगभूमि की देन है । १८५० के आसपास जो नई प्रादेशिक रंगभूमि आकृत हो रही थी उसमें गीत लगभग अनिवार्य रूप से समाविष्ट हो गये थे । बीसवी शतीके प्रथम चरण की गुजराती-महाराष्ट्रीय रंगभूमि के नाटकों में गीत अवश्य होते थे। गुजरात के मणिलाल नभुभाई जैसे प्रशिष्ट साहित्यकार ने संस्कृत नाटकों के गुजराती में अनुवाद करते हुए समकालीन गुजराती व्यावसायिक रंगभूमि की इस लाक्षणिकता को ध्यान में रखते हुए कुछ छांदस पद्यों का लावणी जैसे गेय पद्यों में भावानुवाद भी किया था । (मणिलाल के अनुवाद भी वडोदरा राज्यशासन के आश्रय में कराये गये थे ।) इस पश्चाद्भूमिका में जब मूलशंकरजी संस्कृत नाटक लिखते हैं तो उनमें गेय पद्यों का होना अकस्मात् नहीं लगता। संस्कृत नाटकों का पारंपरिक स्वरूप रखते हुए भी इनमें गेयपद्यों को जोडना निःसंशय समकालीन प्रादेशिक रंगमंच के प्रभाव में हुआ है । नाट्यकार शास्त्रीय संगीत के भी मर्मज्ञ थे । इससे इन गीतों में प्रसंग-स्थल-काल के औचित्य का संरक्षण हुआ है, शास्त्रीय रागों और तालों का भी पर्याप्त वैविध्य प्रयुक्त हुआ है।

दिल्ली महाभारतकाल से भारत का प्रमुख राजकीय केन्द्र रहा है और पृथ्वीराज दिल्ली का अंतिम हिन्दू शासक था । ११९२ में मुहम्मद घोरी ने पृथ्वीराज को पराजित करके भारत में मुस्लीम शासन की नींव डाली । अकबर के शासन में प्रायः संपूर्ण भारत में मुग़ल साम्राज्य फैल गया था । फिर भी एकमात्र मेवाड़ के महाराणा प्रताप इस यवन शासन के आधीन नहीं हुए, और मेवाड राजस्थान के मध्य में था, अकबर के शासन की छाती पर, उसके साम्राज्य के हृदयस्थान पर । औरंगझेब के शासन में हिन्दू साम्राज्य की स्थापना का जो अंतिम प्रबल प्रयास हुआ वह शिवाजी का था । उसके बाद बहुत अल्प समय में ब्रिटिश साम्राज्य भारत में फैल गया था। मूलशंकरजी ने तीन ही नाटक लिखने की योजना बनाई थी और इन तीन नाटकों के नायक थे पृथ्वीराज, प्रतापसिंह और शिवराज । भारत को गुलाम बनानेवाले यवन शासन के आरंभ, सुवर्ण और अन्त काल के ये तीनों स्वातंत्र्यप्रेमी हिन्दू सूरमा थे, और इन तीनों के जीवन को नाट्यरूप में प्रस्तुत करने का इन्होंने निश्चय किया था । हिन्दू देशप्रेम और स्वातन्त्र्य की ऐसी गहरी झंखना के साथ इन्होंने दो और बातों को ध्यान में रखा था। एक तो, तीनों के जीवन के जो रंग लोककल्पना में सर्वाधिक प्रचलित थे

उन्हीं को अपनी रचनाओं में उजागर करने का प्रयास उन्होंने किया। पृथ्वीराज के जीवन का सर्वाधिक लोकाकर्षक रंग है उसकी संयोगिता की प्रणयकथा का। लोकप्रसिद्धि है कि अलौकिक सुन्दरी संयोगिता के प्रणय के लिये उसने छद्म वेश में जाकर उसे भरे स्वयंवर से उसके पिता के देखते देखते हरण कर ले जाने का साहस किया और फिर उसके प्रेम में इतना डूब गया कि घोरी ने इसका फायदा उठाया ! प्रताप अपने स्वातंत्र्यप्रेम के कारण जंगलों में भटकता रहा, फलमूल खाकर जिया, पर अकबर की प्रचंड ताकत के सामने झुका नहीं। शिवाजी ने भी पूरा जीवन यवनों के प्रचंड दबाव के सामने निरन्तर संघर्ष किया, सह्यमूषक का बिरुद पाया, और औरंगझेब जैसे धर्मान्ध यवनशासक की कैद से मुक्त होकर हिन्दू धर्मशासन की स्थापना की । इन्हीं तीन रंगों का मूलशंकरजी ने अपने नाटकों में आलेखन करने का सफल प्रयास किया। दूसरे, संस्कृत नाटक की परंपरा का रक्षण करते हुए उन्होंने तीनों नाटकों को सुखान्त बनाना चाहा । इस हेतु से उन्होंने तीनो कथानकों में से नाट्यरचना के लिये वही अंश ग्रहण किये जो उत्सव में परिणत हो सके । *संयोगिता०* में उन्होंने दोनों प्रेमियों के विवाहोत्सव तक का स्वयंसंपूर्ण कथांश लिया, शेष अप्रिय अंश को छोड दिया (एकाध बार उसका कुछ निर्देश भर कर दिया); *छत्र०नाटक* में धर्मराज्य की स्थापना के निश्चय से आरंभ कर साम्राज्याभिषेक के उत्सव में उस निश्चय की सिद्धि से नाट्यवस्तु को पूर्ण किया, *प्रताप०* में भी मानसिंह के अपमान से संघर्ष का बीज डालकर पूरे नाटक में नायक का संघर्ष निरूपित करते हुए अंत में संघर्ष की सफलतारूपी प्रतापसिंह के उदयपुर पर विजय के* उत्सव में समापन किया । तीनों नाटक विवाहोत्सव या साम्राज्याभिषेकोत्सव या विजयोत्सव में सुखान्त समाप्त होते हैं । तीनों में उन्होंने हिन्दू धर्म का, हिन्दू संस्कृति के मूल्यों का और हिन्दू नाट्यपरंपरा का गौरव किया है।

यह गुजरात का, इन नाटकों का या कदाचित् संस्कृत रंगमंच का दुर्भाग्य रहा कि मंचनक्षमता पूरी मात्रा में होते हुए भी इन नाटकों का कहीं मंचन नहीं हो पाया। उस वक्त संस्कृत नाटकों के मंचन की परंपरा कदाचित् पूरे भारत में कहीं नहीं थी । वर्तमान काल में संस्कृत के उत्थान के साथ संस्कृत नाटकों के कुछ प्रासंगिक

---

* १५७६ में हल्दीघाट का युद्ध हारकर प्रताप भाग निकला पर उसके बाद भी “he continued the war with undaunted spirit and energy and had the satisfaction of recovering many of his strongholds before he died on the 19th January, 1597, at the age of fifty-seven.” (Majumdar R.C.etc. *An Advanced History of India*, 1967, Macmillan, p. 444)

मंचन शुरू हुए हैं । पर अन्य प्रादेशिक भाषाओं के जैसे व्यावसायिक-स्वैच्छिक (या अवेतन) रंगमंच है, वैसा संस्कृत का नहीं । अतः इन नाटको में जो मंचनक्षमता रही है, उसका तो इन नाटकों के – विशेष तो *छत्र0नाटक* के – मंचनप्रयोगों से ही संज्ञापन हो सकेगा।

जो भी हो, मूलशंकरजी के इन नाटकों की प्रशिष्टता एवं समकालीन प्रस्तुतता आज भी वैसी ही प्रत्यग्र है। इनकी प्राञ्जल, प्रशिष्ट और मुहावरेदार संस्कृत नाट्यभाषा, अभ्यासपूर्ण एवं नाट्यात्मक घटनाचयन, सजीव संवादो में उघडता वैविध्यपूर्ण पात्रसमूह, कुशल नाट्यसंविधान एवं प्राचीन कथावस्तु में भी समकालीन सांप्रतता का दर्शन आज भी इन नाटकों को उपादेय बनाते हैं । इनकी रचना के आठ दशक बाद आज भी ये उतने ही नाट्यात्मक एवं साम्प्रत प्रतीत होते हैं । यही इनकी सजीवता एवं प्रशिष्टता का द्योतक है।

आ० मूलशंकर माणेकलाल याज्ञिक

श्री याज्ञिकजी का जन्म सा.सं.१८८६ में ३१ जनवरी के दिन मध्य गुजरात के नडियाद (सं. नटपुर) नगर वास्तव्य वडनगरा नागर ब्राह्मण पिता श्री माणेकलाल उमियाशंकर याज्ञिक के घर माता अतिलक्ष्मी की कोख से हुआ। इनकी प्रारम्भिक एवं शालेय शिक्षा नडियाद में हुई। फिर एक वर्ष जूनागढ की बहाउद्दीन कोलेज में पढने के बाद इन्होंने वडोदरा की प्रसिद्ध बडौदा कोलेज में उच्च शिक्षा प्राप्त की। उस वक्त वहां श्री अरविन्द (बाद में महर्षि अरविन्द) भी अंग्रेजी के प्राध्यापक एवं प्राचार्य थे। १९०७ में स्नातक की उपाधि प्राप्त करने के उपरांत उन्हें कौटुम्बिक कारणवश मुंबई की स्पीसी बेंक में नौकरी प्रारम्भ करनी पड़ी, पर बड़ौदा राज्य के गुणज्ञ महाराजा सयाजिराव (तीसरे)ने उनकी विद्वत्ता से आकृष्ट हो कर उन्हें बडौदा के शिक्षा विभाग में निमन्त्रित किया तो वे १९१४ में वडोदरा आये और १९१५ में नवप्रारंभित शासकीय संस्कृत पाठशाला के प्रथम प्राचार्य के रूप में नियुक्त हो गये। इस पद पर १७ वर्ष रहकर १९३२ में वे मेहसाणा (उत्तर गुजरात) की शाला के शिक्षक बनकर गये और १९४२ में वहां से सेवानिवृत्त हुए। (उन दिनों निवृत्तिवय ५५ वर्ष की थी।) निवृत्ति के उपरान्त भी वे एस्.एन्.डी.टी. महिला कोलेज की कन्याओं को संस्कृत साहित्य पढाते रहे। शेष जीवन नडियाद में बीताते हुए उन्होंने १३ नवम्बर १९६५ को अपनी जीवनलीला समाप्त की।

मूलशंकरजी का प्रथम विवाह उनकी १३ वर्ष की आयु में श्रीमती महाविद्या के साथ हुआ। इस वैवाहिक जीवन में इनके तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ हुई, तीनों पुत्र अल्प आयु में ही चल बसे। प्रथम पत्नी के अवसानोपरान्त ३५ की आयु में इनका दूसरा विवाह श्रीमती वीरेन्द्रबाला के साथ हुआ। इस विवाह से इनके तीन पुत्रियाँ प्राप्त हुईं। वीरेन्द्रबाला का भी १९४५ में गले के कैन्सर से निधन हुआ तो वे स्वयं पांचों पुत्रियों की माता बन गये। मृत्यु के समय ये पांचों पुत्रियां (सुमति, मधु, अरविन्दा, सुवर्णा एवं मुद्रिका) जीवित थीं। इस समय अरविन्दाबहन अमरिका में और दौहित्री

मनीषा अहमदाबाद में हैं। कनिष्ठ पुत्री मुद्रिकाबहन अहमदाबाद में एवं एक दौहित्र कैवल्य वडोदरा में रहते हैं।

संपत्ति के अभाव से मूलशंकर जी का साथ प्रायः आजीवन बना रहा। दोनों पत्नियों ने भी जल्दी ही साथ छोड़ दिया। तीनों पुत्र नहीं रहे। सबसे छोटा पीलु (यह नाम भी उन्होंने अपने प्रिय राग से रखा था।) तो आठ वर्ष की वय में ही चल बसा था। इन सभी आपत्तियों को इन्होंने बड़े धैर्य से झेला। इसमें उनकी धर्मशीलता से, उनके आध्यात्मिक झुकाव से बड़ा सहारा मिला। धर्मप्रवण तो वे थे ही, १९१४ में इन्होंने जगद्गुरु श्री शंकराचार्यजी से श्रीविद्या की दीक्षा प्राप्त की और शिनोर में नर्मदा के जल में खडे रहकर गायत्री मंत्र के तीन लाख जप का पुरश्चरण किया। इसी धार्मिकता ने आचार्य को जीवन के अभावों में भी संतोष और एकाकी अंतिम वर्षों में शान्ति और धैर्य प्रदान किया।

अपनी मातृभाषा गुजराती में मूलशंकरजी ने पर्याप्त लेखन किया है। *सत्यधर्मप्रकाश* (१९१२) में उन्होंने श्रुति-स्मृति-वचनों का अपनी टीका के साथ संग्रह किया है। प्राच्यविद्या मंदिर, वडोदरा की सयाजी वाचनमाला श्रेणी में उन्होंने *तुलनात्मक धर्मविचार* और *आपणी प्राचीन शासनपद्धति* नामक दो पुस्तिकाएँ लिखीं। *सूर्य-चन्द्रवंशी राजाओं की वंशावली* तथा *जम्बूद्वीप अने सप्तद्वीपना नकशाओ* (१९३०) (-के मानचित्र) जैसे ग्रंथों की रचना की। *नैषधचरित* और *महात्मा गांधी : जीवनचरित* भी लिखे। *विजयालहरी* (१९१६) गीतिकाव्य और *मेवाडप्रतिष्ठा*, *नरसिंहनिनाद* एवं *हर्षदिग्विजय* नाटक लिखे। संस्कृत में भी पं० गोपालाचार्य उत्गीकर के साथ *विष्णुपुराण* की *कथाओं को (१९१७) सरल गद्य में प्रस्तुत किया, पं० बदरीनाथ शास्त्रीजी तर्कपंचानन के साथ *सप्तर्षिदृष्टवेदसर्वस्वम्* नामक भाष्यग्रंथ का प्रणयन किया। पर १९२६-१९३१ के पंचवर्षीय लघु कालखण्ड में उन्होंने जिन तीन नाट्यग्रंथों- *संयोगितास्वयंवरम्* (१९२८), *छत्रपतिसाम्राज्यम्* (१९२९) और *प्रतापविजयम्* (१९३१) - की रचना की उन तीन नाटकों ने मूलशंकरजी को कालजयी यश प्रदान किया।

१९२५-२६ के आसपास भारत का स्वातंत्र्यसंघर्ष प्रबल होने लगा था तब

---

* वास्तव में, १९१५ में प्राचार्य-पदासीन होने पर उन्होंने पंडितजी के साथ प्रत्येक पुराण में वर्णित कथाओं के गद्यपुनर्लेखन की एक पुस्तकश्रेणी पुराणकथातरङ्गिणी की योजना बनाई थी। पर विष्णुपुराण की कथाओं का प्रथम ग्रंथ प्रकाशित होने के पूर्व ही पंडितजी का अचानक निधन हो गया और श्रेणी प्रथम ग्रंथ से आगे न बढ पाई।

नाट्यरचना के लिये भारत के इतिहासप्रसिद्ध इन तीन वीर नायकों का वरण करते हुए उन्होंने यह भी विचार कर लिया था कि दो नाटक वीररसप्रधान होंगे और एक प्रणयनाटक होगा । (कदाचित् मन की गहन गुहा में कहीं भवभूति के सृजन-क्रम का अनुसरण रहा हो!) उन्होंने *प्रतापविजयम्* को सर्वप्रथम पूरा लिख भी डाला था । पर तभी गौरीशंकर ओझा का राणा प्रताप के जीवन पर महत्त्वपूर्ण संशोधनात्मक ग्रंथ प्रकाशित हुआ और मूलशंकरजी ने इस ग्रंथ के प्रकाश में अपने लिखे हुए नाटक में उचित और पूर्ण संशोधन करके पुनर्लेखन करने का निर्णय किया, और दूसरा प्रणयनाटक *संयोगिता०* रचकर उसे प्रथम प्रकाशित किया, फिर *छत्र०नाटक* भी आया और *प्रताप०* का प्रकाशन पर्याप्त संशोधन के बाद सबसे अंत में हुआ । तब तक मूलशंकरजी की प्रतिष्ठा देशविदेश में ईर्ष्याप्रेरक मात्रा में फैल चुकी थी । संशोधन के बाद भी *प्रताप०* के प्रकाशन में एक वर्ष का अन्तराल पड़ गया । इस बीच उन्होंने दो और ग्रन्थों की रचना की (या उन्हें करनी पड़ी) । *प्रताप०* की प्रस्तावना में उन्होंने महाराजा सयाजीराव के उपरान्त मेवार के तत्कालीन महाराजा भूपालसिंहजी के रुचि एवं सहाय का भी साभार स्पष्ट निर्देश किया है । पहले दो नाटकों के विषय में कई विद्वानों की सम्मतियाँ *छत्र०नाटक* में छपी हैं, वैसा कुछ *प्रताप०* के बारे में नहीं हुआ । सबसे बड़ी आश्चर्य की बात यह है कि *प्रताप०* के प्रकाशन के एक ही वर्ष बाद मूलशंकरजी को राजकीय पाठशाला का प्राचार्यपद छोडकर मेहसाणा की एक शाला में आसि० टीचर की नियुक्ति स्वीकार करनी पड़ी जहां वे अपने कार्यकाल के अंतिम दस वर्ष रहे । यह घटनाक्रम कैसे हुआ और क्यों हुआ, इसका कोई जवाब हमें कभी मिलनेवाला नहीं है।

मूलशंकरजी के ग्रन्थशीर्षकों से ही उनके वेद-वेदाङ्ग-पुराण-धर्मशास्त्र-साहित्य-अर्थशास्त्र इत्यादि शास्त्रों के ज्ञान का निर्देश होता है । आयुर्वेद के भी वे बहुत अच्छे ज्ञाता थे । संगीतशास्त्र और अर्थशास्त्र के उनके ज्ञान का साक्ष्य तो उनके नाटकों से ही मिलता है । संगीत के वे मर्मज्ञ थे, स्वयं सितार भी बजाते थे और पं० ओमकारनाथजी के बडे भक्त थे । ज्योतिष पर इनका इतना प्रभुत्व था कि, कहते हैं कि, अपने मृत्यु का दिन-समय उन्होंने बहुत पहले से अपनी जन्मपत्रिका में लिख लिया था । बरोडा कालेज में वे श्री अरविन्द के छात्र रहे । अन्यत्र उन्होंने स्वयं वेदालंकार पंडित नागप्पाजी का गुरुऋण स्वीकार किया है । पं० गोपालाचार्यजी एवं पं० बदरीनाथ जैसे धुरंधर विद्वानों ने ग्रन्थालेखन में उनका साथ दिया । बदरीनाथजी ने इनके तीनों संस्कृत नाटकों का आंग्लानुवाद भी किया । पं० श्रीधर शास्त्रीजी ने इनके तीनों नाटकों पर

टीकाओं का प्रणयन भी किया। अपनी विद्वत्ता से मूलशंकरजीने अपने सभी विद्वान् सहकार्यकरों का आदर और सहकार प्राप्त किया था। केवल वडोदरा या गुजरात में नहीं, पूरे देश में इनकी विद्वत्ता एवं लेखनी का समादर होता था। इनके संस्कृत नाटकों की सृजनशीलता ने इन्हें वाराणसी की विद्वत् संसद् की मानार्ह उपाधि **साहित्यमणि** अर्जित कराई थी।

टीकाकार पं. श्रीधर लक्ष्मण शास्त्री

आचार्य मूलशंकरजी के तीनों संस्कृत नाटकों पर टीकाओं का प्रणयन करने वाले उनके सहाध्यापक वे.शा.सं.पं० श्रीधर लक्ष्मण शास्त्री भी साहित्य, व्याकरण, न्याय, वेदान्त, ज्योतिष, आयुर्वेद, धर्मशास्त्र, संगीत, वेद, याज्ञिकी इत्यादि अनेक शास्त्रों के विद्वान् थे। वडोदरा के महाराजा ने गांव पोहे (ता. कोपरगांव, जिला नगर, महाराष्ट्र) से बुलाकर इनके विद्वान् पितामह पं० त्र्यंबक शास्त्री पदे (=वेदों के पदपाठके ज्ञाता) को संमानपूर्वक वडोदरा में बसाया था। पं० श्रीधरजी को शारदापीठ शंकराचार्य ने **वैयाकरण केसरी** एवं अ.भा. आयुर्वेद विद्यापीठ ने **वैद्यपंचानन** उपाधिओं से विभूषित किया था। वे पाठशाला में व्याकरण के एवं संगीतशाला में संगीत के भी अध्यापक थे। अनुशासन के आग्रही थे और ब्राह्मण षट्कर्म एवं नित्यपूजा-यज्ञ-अध्ययनादिके दृढ पालक थे। पांच पीढी से उनका वैदुष्य प्रतिष्ठित रहा है। (प्राच्यविद्यामन्दिर के वर्तमान नियामक डॉ. मुकुन्द वाडेकर इनके दौहित्र हैं।)

उन दिनों प्रसिद्ध संगीतकार पंडित विष्णु नारायण भातखंडे द्वारा संगीतशास्त्र का छात्रोपयोगी ग्रंथ *श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्* रचा गया था। पदेशास्त्रीजी भी अपने संगीत के अध्यापन में इसका प्रयोग करते थे। मूलशंकरजी के तीनों नाटको में गीतों के रागों के लक्षण टीकाकार ने इसी ग्रंथ से उद्धृत किये हैं।

यहां उनकी टीकाओं से केवल पर्यायात्मक अंशों को दूर करके छंद-अलंकार-संधि-सन्ध्यङ्ग-प्रसङ्गनिर्देश-शास्त्रोद्धरण इत्यादि अंशो को पुनर्मुद्रित किया गया है।

From Author's Introductions

...in the Sanskrit drama there is no scope for the tragedy... Long journeys, massacres and actual fights are never to be exhibited on the stage. The death of the hero should not even be indicated...

Keeping all these points in view, I have composed this love-play, the plot of which is ... as depicted by Shriyuta Shripada Shastri in his series, *Bharata-Vira-ratna-mala*. ...

On reading the series, I was induced to write three plays, two heroic ones, displaying the exploits of Pratapa and Shivaji, and the third a love-play, describing the love-intrigues of Pruthviraja. The heroic play of *Pratapavijaya* was first taken in hand and was finished in 1926, but its publication had to be postponed.

- *from Author's Introduction to* ***Samyogitasvayamvaram***.

... this heroic play, the plot of which is based on the history of the reign of Shivaji, from 1646 to 1674 the date of his coronation, as given in the following books :-

Grant Duff's "*History of the Marathas*"
Sardesai's "*Marathi Riasat*"
Macmillan's "*In Wild Maratha Battle*"
Shripad Shastri's "*Chhatrapati Shivaji Maharaja*"
Mankar's "*Life and Exploits of Shivaji*"

....

The researches of Mahamahopadhyaya R. B. Gaurishankar H. Oza have thrown new light on the history of the reign of Maharana Shri Pratapasinha. So the publication of the play will have to be postponed till its thorough revision.

- *from Author's Introduction to* ***Chhatrapatisamrajyam***

* * *

[The sources of *Pratapavijayam*:-

1. *Vira-Shiromani Maharana Pratapasimha*-
   Mm. R. B. Gaurishankar H. Oza
2. *Shri-Maharana-Pratapasimha-carita*
   Shripad Shastri
3. *Ain-e-Akbari*
4. *Memoirs of Jehangir*]

SOME OPINIONS

Samyogitaswayamvaram

...Permit me to congratulate you on the melodiousness and easy grace of your Sanskrit; and also on the choice of a historical subject.

Mm. Pt. Ganganath Jha, M.A., D.Litt., Vice-Chancellor, Allahabad University, Allahabad.

...competent scholars like you maintaining the classical tradition.

Dr. L. D. Barnett, M.A., Ph.D., British Museum, London

...Some very pleasant hours of reading... your kavita and Sanskrit style... are not a mere imitation of ancient models but have something original and personal.

Dr. Hermann Jacobi, Hamburg, Germany

...In the conception of a historical plot, in the charm of diction, in the description of events so as to be full of dramatic interest, in the dignity and suggestiveness of style and in the skilful observance of rules of dramaturgy, you have achieved a commendable success. Your poetical skill is admirable.

Dr. R. Shamshatri, Curator, Government Oriental Library, Mysore

It contains much felicity of expression and elegance of diction and is an interesting revival of the most attractive branch of Sanskrit literature.

Prof. A. B. Keith, University of Edinburgh

It is interesting to see how the Sanskrit Play is still living in Bharatvarsha. This intimate interest in the past is a great asset in the national life of the nation.

Dr. Sten Konow, Acta Orientalia, Oslo, Norway

I have admired your artistic taste and your rare ability in writing in Sanskrit.

Signor Guiseppe Tucci, Shrinagar, Kashmir

Such works of literature ...are still being produced in Sanskrit; it is a healthy sign of Sanskrit studies.

Prof. Franklin Edgerton, Yale University, America

Chattrapatisamrajyam

...You handle the Vaidarbhi riti with much skill, and the play is very agreeable reading.

Dr. L. D. Barnett, M.A., Ph.D., British Museum, London

I value your learned and Patriotic composition very highly.

Professor Jolly, Wurzburg, Germany

...You have admirably succeeded in dramatising the life of the great Shivaji and his heroic activities. Your verses are elegant, sweet and eloquent, and the dialogues are all charming. The ten incidents apparently disconnected with each other lead to the crowning of Shivajee and thus supply the unity of theme.

Dr. R. Shamashastri, R. Curator and Director of Archaeology, Mysore

Chatrapatisamrajyam, I have read with great interest, as a good Nataka and as an interesting document to the vitality of the Sanskrit drama.

Dr. Sten Konow, Acta Orientalia, Oslo , Norway

...There is possibly even more skilful management of incidents, and there is the same mastery of Kavya style.

Prof. Louis Le La Vallee Poussin, Brussels, Belgium

Excellent reading, a worthy successor to the Samyogitasvayamvara... how perfectly you feel at home in that difficult Brahmi Vac, and your works are in no way inferior, as far as I can judge, to those of our honoured classical poets and dramatists.

Dr. N. S. Sukthankar, Bhandarkar Oriental Reserach Institute, Poona

संयोगितास्वयंवरम् ।

अङ्कानुक्रमः

अथ

संयोगितास्वयंवरम् ।

प्रथमोऽङ्कः

मेघश्यामुकुन्दसुन्दरमुखे कुन्दावदातस्मिते
स्वच्छन्दं विलसन्ति येऽनवरतं सौदामिनीलीलया।
भावस्निग्धविलोकनस्नुतरसा वोऽव्यक्तरागाकुला
मुग्धाः पान्तु सुकोमलाधररुचो राधादृशोर्विभ्रमाः ॥१॥

ईशानापकृतेरनङ्ग इति यः ख्यातस्त्रिलोक्यां पुन-
र्जातो यस्य सुतत्वमेत्य स नवः सर्वाङ्गसौन्दर्यभाक् ।
श्रीशं विश्वजितं तमिष्टवरदं नत्वा पदे श्रीधरो
व्याख्यां वाक्यविशारदो वितनुते सर्वाङ्गविद्योतनीम् ॥

अथ नाटकादौ यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये । कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते ॥ उत्थापनादिकान्यङ्गान्यस्य भूयांसि यद्यपि ॥ तथाप्यवश्यं कर्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये ॥ इति विघ्नोपशान्तयेऽवश्यकर्तव्यतयोपपादिता । आशीर्नमस्क्रियारूपः श्लोकः काव्यार्थसूचकः । नान्दीति कथ्यते इत्यादिलक्षणलक्षितामाशीरूपां सूत्रधारः पठेन्नान्दीं मध्यमं स्वरमाश्रितः । नान्दीपदैर्द्वादशभिरष्टाभिर्वाप्यलङ्कृताम् ॥ इति श्रीमदभिनवगुप्तपादाचार्यमतानुसारेण चतुरस्रतालानुगतां चतुष्पदां नान्दीं सूत्रधारः पठति- **मेघश्यामेति**। ***

*** अथ श्लोकः काव्यार्थसूचकः इत्युक्तत्वादस्य तत्सूचकत्वं निरूप्यते । मुकुन्दः मुकुं मुक्तिं ददाति यच्छतीति पित्रा कारागृहे निरुद्धायाः संयोगिताया मुक्तिप्रदः पृथ्वीराजः सूचितः । राध्नोति साधयत्यभीष्टमिति च राधा संयोगिता । मेघशब्देन तत्पर्यायजलधरच्छद्मना नायकस्य कनोजनगरे निवासः । श्यामपदेन श्यामवर्णोऽयं विष्णुदैवतः इत्युपवर्णितस्य शृङ्गाररसस्यात्राङ्गित्वं एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा इत्युक्तत्वात् । कुन्दावदातस्मित इत्यनेन कुन्दपुष्पस्य वसन्त एव प्रादुर्भावाद्वसन्तसमयः । राधादृशोर्विभ्रमा इत्यनेन नायिकानुवर्ती सखीजनः । मुग्धा इत्यनेन नायिकायास्तत्सखीजनस्य च मुग्धत्वम् । स्वच्छन्दं विलसन्तीति सखीजनस्य सौदामिनीलीलया स्वच्छन्दविहारो नायिकाया अभीष्टसंपादनार्थं च दूरान्तिकसंचारः। भावस्निग्धमिति यन्नायिकाया हंसमिथुनादिषु विलोकनं तेनेषदभिव्यक्तो नायिकानुरागः । अव्यक्तरागाकुलाः सुकोमलाधररुच इत्यनेन च नायिकायाः सौन्दर्यं तत्सखीजनस्य च कामकलाकौशल्यं सूचितम् । अत्र राधामुकुन्दविषयस्य कविगतरत्याख्यभावस्य राधामुकुन्दयोः परस्परविषयरत्याख्यस्थायिभावकः संभोगशृङ्गारोऽङ्गम् । अतो रसवदलङ्कारः। तदुक्तं दर्पणे - रसभावौ तदाभासौ भावस्य प्रशमस्तथा । गुणीभूतत्वमायान्ति यदाऽलङ्कृतयस्तदा। रसवत्प्रेय उर्जस्वि समाहितमिति क्रमात् । इति । शार्दूलविक्रीडितं चात्र वृत्तम् ।

नान्द्यन्ते

सूत्रधारः- आर्ये अलमेतावता परिश्रमेण ! इत एवागम्यताम्।

(प्रविश्य)

नटी - आर्यपुत्र इयमस्मि। आज्ञापयत्वन्यदनुष्ठेयम्।

सूत्रधारः- अद्य खलु नटपुरवास्तव्यमूलशङ्करविरचितेन संयोगितास्वयंवराख्येन नवेन नाटकेनैषा विद्वत्परिषत्सभाजनीया। तत्प्रस्तूयतां तावद्वसन्तरागेण स्वरतालबद्धा कापि रमणीया गीतिः परिषच्चेतःप्रसादनाय। संप्रति खलु,

मलयजकणानुवासितहिमकरकरशीतलो मृदुसमीरः।
उपगुह्य नवकिसलयां नर्तयति नतां लतावनिताम्।।२।।

नटी-यदाज्ञापयत्यार्यपुत्रः।

(इति गायति)

(वसन्तरागेण त्रितालेन गीयते।)

विलसति ललिता। उपवनवनिता।।

नान्द्यन्त इति । अत्र पत्रावलीसंज्ञा नान्दी यस्यां बीजस्य विन्यासो ह्यभिधेयस्य वस्तुनः । श्लेषेण वा समासोक्त्या नान्दी पत्रावलीति सा इत्युक्तेः । सूत्रं प्रयोगनुष्ठानं धारयतीति सूत्रधारः । तल्लक्षणं वर्तनीयतया सूत्रं प्रथमं येन सूच्यते । रङ्गभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते इति । **संयोगितास्वयंवरेणेति**। संयोगितायाः स्वयंवरो यस्मिंस्तत् संयोगितास्वयंवरं नाटकम् । अधिकृत्य कृते ग्रन्थे इत्यणि आख्यायिकाभ्यो बहुलम् इति वार्तिकेन लुकि । अभेदोपचाराद्वा । **नाटकेनेति** । तल्लक्षणमुक्तं दर्पणे - दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम् । दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तु रूपकम् ।। नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः। ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ।। नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसन्धिसमन्वितम् । पञ्चाधिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः ।। प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् । दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः । एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा । अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ।। इति । अत्र धीरोदात्तो नायकः । तल्लक्षणं अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः । स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः ।। इति । नायिका च पित्रायत्तान्या । कन्या त्वजातोपयमा सल्लज्जा नवयौवना इत्युक्तेः । शृङ्गारश्चाङ्गी वीरादयोऽङ्गभूता रसाः । अत्र पञ्चसन्धयस्तदङ्गानि च यथास्थानमुपपादयिष्यन्ते ।

वसन्तरागेणेति । भैरवः कौशिकश्चैव हिन्दोलो दीपकस्तथा । श्रीरागो मेघरागश्च रागाः षडिति कीर्तिताः ।। इति षडेव प्रधानरागाः । तत्र श्रीरागस्याङ्गभूतो वसन्तरागः सर्वदा वसन्ते गीयते । तदुक्तं लक्ष्यसंगीते - पूर्वीमेलसुसंजातो वसन्ताख्यो बुधैर्मतः । संपूर्णस्तारषड्जांशो वसन्तर्तौ सुखप्रदः ।। इति । अस्य च शृङ्गारोद्दीपनत्वं प्रसिद्धम् । स्वरतालबद्धेति । स्वयं राजन्त इति स्वराः । ते च निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः। पञ्चमश्चेत्यमी

नवपल्लविता अनिलतरलिता
तरुवरमिलिता सुकुमारलता -विलसति०।।१।।
रसिकामहिते मृदुकेलिहिते
मनसिजदयिते सरसवसन्ते -विलसति०।।२।।

सूत्रधारः- (वाद्यध्वनिमाकर्ण्य) आर्ये, धन्यासि, त्वया गीतस्य रागस्यैव स्वराणामनुरणनं सर्वत्र प्रवृत्तमिव दृश्यते।

नटी - (सस्मितम्) आर्यपुत्र अद्य खल्वस्मन्महाराजेन प्रस्तूयमाने राजसूये समागतानां राजकुलानां विनोदार्थं वीणावादिनोऽपि वसन्तरागेणैव गायन्ति। यस्यैष ध्वनिः।

सूत्रधारः- आं साधु स्मारितम्। अद्यैवैतस्य महाक्रतोरारम्भ इति विस्मृतं खलु मया। आर्ये पश्यैषोऽस्मन्महाराजो जयचन्द इदानीं

प्रेम्णामन्त्रितमुत्सवप्रमुदितं सत्कृत्य सम्राडयं
कान्तं राजकुलं नितान्तकृतिनं मत्वा स्वकीयान्वयम्।
अन्तर्वेश्मनि दीक्षितः क्रतुविधावानन्दितो वीणिभि-
र्मन्त्रं मन्त्रयते कमप्यभिनवं मन्त्रिद्वितीयः पुनः।।३।।

(इति निष्क्रान्तौ)

प्रस्तावना ।

सप्त तन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः ।। इति । एते पुनः स रि ग म प ध नि इति प्रसिद्धाः । तल्लक्षणं रत्नाकरे - श्रुत्यनन्तरभावी यः स्निगधोऽनुरणनात्मकः । स्वतो रञ्जयति श्रोतृचित्तं स स्वर उच्यते ।। इति । तालयति प्रतिष्ठापयति गीतमिति तालो लघ्वादिक्रियया संमितो गीतादेर्मितिं विदधत्काल एव तालः । स च द्विविधश्चतुरस्रस्त्र्यस्रश्चेति । स्वरैस्तत्तद्रागनियतस्वरैस्तालेन च बद्धा परिरक्षितेत्यर्थः ।

ऋतुं च कंचित्प्रायेण इत्युक्तत्वाद्वसन्तसमयमधिकृत्य गायति-**मलयजेति**। *** लतावनितामिति रूपकालङ्कारः। मलयजकणानुवासितेत्यनेन दक्षिणानिलः, हिमकरकरशीतलेत्यनेन निशासमयः, मृदुसमीरेत्यनेन वसन्तागमश्च द्योत्यते ।

विलसति ललितेति ।*** अत्र वनितापदेन नायिकावृत्तान्तो मृदुकेलिपदेन च वसन्तोत्सवो द्योत्यते । अत्रान्त्यानुप्रासः शब्दालङ्कारः ।

राजसूय इति । राजसूयः श्रौतयज्ञविशेषः । तदुक्तं शतपथे राजा वै राजसूयेनेष्ट्वा भवति । इति । स एव सम्राडित्यभिधीयते - येनेष्टं राजसूयेन मण्डलस्येश्वरश्च यः । शास्ति यश्चाज्ञया राज्ञः स सम्राड्

(ततः प्रविशति मन्त्रिद्वितीयः कनोजाधिपो जयचन्दः)

जयचन्दः- मन्त्रिन् अद्य खल्वियं राजसूययज्ञार्थं समागतैर्महर्षिसंघैर्महीपालकुलैश्चाकुलाऽस्मन्नगर्यमरावतीव संवृत्ता।

सुमतिः- महाराज राजसूयदीक्षितस्त्वमपि

नानादिगन्तसमुपेतनृपोत्तमाङ्ग
राजन्महार्हमुकुटार्चितपादपीठ।
विन्ध्याद्रिसानुरुचिराङ्घ्रियुगाग्रिमर्षे
लीलामिहावहसि देव घटोद्भवस्य ॥४॥

जयचन्दः- अप्युपक्लृप्ता यज्ञसंभाराः।

सुमतिः- अथ किम्। परं च नाद्याप्युपलब्धा काचित् पृथ्वीराजस्य प्रवृत्तिः।

जयचन्दः- (सरोषम्) अन्यायसंपादितदिल्लीशपदेन दर्पान्ध एष दुरात्मा तु शासनार्ह एव।

सुमतिः-महाराज दण्डस्त्वगतिका गतिः। तत् पुनरपि पत्रिकया सोऽनुनेयः।

जयचन्दः- (सरोषम्) लिखतु तावच्छासनपत्रम्।

सकलभारतराजकुलेश्वरो
दिशति ते स्वमखे प्रतिहारिताम्।
यदि नियोगमिमं न हि पद्यसे
समरयज्ञपशुत्वमुपेष्यसि ॥५॥ इति।

इत्युक्तत्वात्।

प्रस्तावनेति - अत्रावलगिताख्या प्रस्तावना। तदुक्तं दर्पणे - यत्रैकत्र समावेशात्कार्यमन्यत्प्रसाध्यते। प्रयोगे खलु तज्ज्ञेयं नाम्नाऽवलगितं बुधैः॥ इति। नटीगीतरागस्वराणामनुरणनसादृश्योद्भावनेन वीणिभिरानन्दितस्य जयचन्दस्य प्रवेशप्रसाधनादिति।

नानादिगन्तेति। *** अत्रान्यस्य शोभामन्यो बिभर्तीति निदर्शनाऽलङ्कारः। अभवन्वस्तुसंबन्ध उपमापरिकल्पकः इत्युक्तत्वात्।

सकलभारतेती। अत्र प्रतिहारितामिति तर्जनमनुभावोऽरिः पृथ्वीराज आलम्बनं जयचन्दगतक्रोधः स्थायिभाव आमन्त्रणास्वीकार उद्दीपनं जयचन्दगतगर्वश्च व्यभिचारिभावः। एवमत्र रौद्रो रसोऽस्य च संयोगितायाः पूर्वरागाख्यविप्रलम्भपोषकत्वान्नाटकेऽङ्गत्वम्। द्रुतविलम्बितं च वृत्तम्। सकलभारतराजकुलेश्वर इति पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः।

सुमतिः- (विलिख्य) लिखितमेव तद्यथा निर्दिष्टं देवेन। कः कोऽत्र भोः।

(प्रविश्य)

प्रतिहारी-आज्ञापयत्वार्यः ।

सुमतिः-शीघ्रमेव प्रेषयैषा पत्रिका दूतद्वारा पृथ्वीराजाय ।

प्रतिहारी- यदार्य आज्ञापयति ।

(इति निष्क्रान्तः)

जयचन्दः-अरे मेवाडराजेन समरसिंहेनापि नादृतमस्मन्निमन्त्रणम्।

सुमतिः-महाराज! समरसिंहस्तु पृथ्वीराजस्य परमसुहृद् । अतः सोऽपि नूनं तद्वर्त्मगामी भविता ।

जयचन्दः-(सरोषं स्वगतम्) साधु समरसिंह साधु । (प्रकाशम्) अस्माभिर्विततस्य राजसूयक्रतोर्विघातायैवैतावुद्यतौ । किंत्वेतादृशैः क्षुद्रजनविचेष्टितैर्न मन्दोत्साहो भविष्यति कनोजाधिपः ।

सुमतिः- (विचार्य) महाराज विजिताशेषनरपतिकुलस्यैव राजसूयविधानं श्रूयते । तदेतयोरुपस्थितिमन्तरा कथं प्रवर्तिष्यन्ते यज्ञकार्याणि ।

जयचन्दः-नात्र विहिताविहितशङ्कावसरः । तत्स्थानापन्ने भविष्यतस्तयोर्हिरण्यनिर्मिते प्रतिकृती ।

(प्रविश्य)

प्रतिहारी- जयतु जयतु देवः । एष पृथ्वीराजानुचरः पत्रिकामादाय संप्राप्तः।

जयचन्दः- सत्वरमिहानय तत्पत्रिकाम् ।

प्रतिहारी-यदाज्ञापयति देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

जयचन्दः- (स्वगतम्) पत्रिका प्रेषिता स्वयं तु नायातः । (प्रकाशम्) सर्वथा प्रतिकूल एवासाविति तर्कयामि ।

(प्रविश्य)

प्रतिहारी-देव एषा पृथ्वीराजमुद्राङ्किता पत्रिका ।

(इत्यर्पयति)

जयचन्दः- (पत्रिकां गृहीत्वा) पुरोहितं द्रष्टुमिच्छामि ।

प्रतिहारी-यद्देव आज्ञापयति ।

(इति निष्क्रान्तः)

जयचन्दः-मन्त्रिन् एनामुद्घाट्य वाचय ।

(प्रविश्य)

श्रीकण्ठपुरोहितः-समृध्यतां विजयश्रिया महाराजः ।

(इत्युपविशति)

सुमतिः-(वाचयति)

अरे कनोजाधिप आर्यधर्मध्वंसपटुना त्वया किमिदमारब्धम् । ननु दुर्दैवतस्त्वमसि मूढमते प्रवृत्तः

सम्राज एव विहिते नृप राजसूये ।
सद्यो विरंस्यसि न चेद्व्यवसायतोऽस्मा-
द्गन्ताशु मे शलभतां करवालवह्नौ ॥६॥

जयचन्दः-(आकर्ण्य सरोषम्) हा मूढ किमेवं प्रगल्भसे । कोऽन्यो हतजीवितः सम्राट्पदभाग्भवितुमर्हति भारते वर्षे । (विचिन्त्य) आं ज्ञातम् । असौ नराधमस्त्वात्मानमेव सम्राट्पदेन व्यपदिशति । मन्त्रिन् असह्यो ह्येषोऽधिक्षेपः।

श्रीकण्ठपुरोहितः-प्रसीदतु महाराजः । दीक्षितस्य ते नास्ति कोपावसरः।

जयचन्दः-भगवन् नाहमकारणकोपाकुलः ।

श्रीकण्ठपुरोहितः-तथापि

सकलनृपमतस्त्वमेव सम्राड्
विजयरमाश्रित नाममात्रतोऽन्यः ।
क्व खलु भुवनभासनः पतङ्गः
क्व च तनुदीपशिखालयः पतङ्गः ॥७॥

दुर्दैवत इति । अत्र पृथ्वीराजस्य युद्धोत्साहः स्थायिभावोऽरिर्जयचन्द आलम्बनं तस्य च राजसूयप्रवृत्तिरुद्दीपनं गर्वः संचारिभावः । एवमत्र युद्धवीरो रसः । अस्य च विप्रलम्भपोषकत्वान्नाटकेऽङ्गत्वम्। वसन्ततिलकावृत्तम् । करवाले वह्नित्वारोपस्य राज्ञि शलभत्वारोपे निमित्तत्वादत्र परम्परितरूपकमलङ्कारः।

सकलनृपेति । *** पुष्पिताग्रावृत्तम् । विरूपयोः सूर्यशलभयोः पतङ्गत्वेन संघटनादत्र विषमालङ्कारः।

जयचन्दः-अरे राहुरिव स तु मां ग्रसितुमुद्यतः । अत उन्मूलयितव्य एव। कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

प्रतिहारी-आज्ञापयतु देवः ।

जयचन्दः-सभागृहमार्गमादेशय ।

प्रतिहारी-इत इतो देवः ।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

एतत्सभागृहद्वारम् । प्रविशतु देवः सानुगः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

जयचन्दः-(सिंहासनमारुह्य) स्वागतं सामन्तवरेभ्यः ।

सामन्ताः-(उत्थाय) विजयतां सम्राट् ।

(इत्युपविशन्ति)

जयचन्दः-(साटोपम्) सामन्तवर्याः दर्पान्धो दिल्लीश्वर आत्मान सम्राजं मन्यमानो नात्रोपसर्पति । स क्षुद्रः कथमपि वशमापादनीयः ।

हमीरः- साम्राज्यैश्वर्यशालिनि महाराजे कोऽन्यो विनाशोन्मुखः सम्राट्पदमभिलषेत् । यतः

रिपुदलविपिने दवाग्निरूपं
प्रसृतमहो तव कोशदण्डतेजः ।
दृढतरमपि वीरपादपं तत्
किमिति करोति न भस्मसात् क्षणेन ॥८॥

कहरकण्ठीरः-महाराज प्रयाणाभिमुखं तव सैन्यं विज्ञायैवान्वेषिष्यतेऽसौ ते चरणरजःशरणम् । यतः

प्रलयचपलमेघवत्तवेदं
नृपकण्ठीरव गर्जितं निशम्य ।

रिपुदलेति । *** पुष्पिताग्रावृत्तम् । परम्परितरूपकं चालङ्कारः ।

प्रलयचपलेति । *** पुष्पिताग्रावृत्तम् । परंपरितरूपकं चालङ्कारः ।

नवमदकलुषितकपोलभित्तिः
किमु न जहाति धृतिं पतङ्गजोऽयम् ॥९॥

सुमतिः-तथापि यावद्राजनीतिकोविदः कयमाषस्तस्य मन्त्रिपदमलङ्करोति तावन्न भविताऽसावन्तिमोपायसाध्यः । तत्साम्ना दानेन वैष वशीकर्तव्यः ।

जयचन्दः-मन्त्रिन् चरमोपायसाध्य एवासौ परिपन्थी । तद्

दुर्दान्तदर्पशमनक्षम एव सद्यः
शूरो ममैतु पुरतः समरप्रवीरः ।
अस्मद्विकत्थनपरं मनुजाधमं यो
जीवन्तमेव निहतं तमु वा नियच्छेत् ॥१०॥

सामन्ताः-सर्वेऽपि वयं रिपून्मूलने बद्धपरिकराः ।

वालुकरायः-(साटोपम्) महाराज अलमहमेकाकी दिल्लीशपददृप्तस्य तस्य दर्पविघाताय । अद्यैवाहं

कामक्रोधातिरेकव्यसनविदलितं दुर्विनीतं मदान्धं
त्वत्कोपाग्निप्रदग्धं परिणतविभवं चायुषोऽन्तं गतं तम् ।
हत्वा निःशेषतस्तद्बलमतिविपुलं तर्पयित्वा कृपाणं
जीवग्राहं गृहीत्वा निगडितचरणं तेऽन्तिकं प्रापयामि ॥११॥

जयचन्दः-धन्योऽसि मे प्रधानवीर ।

सामन्ताः-प्रथितप्रभावान्वयानुरूपमेवेदं ते वीरचेष्टितम् ।

जयचन्दः-वीरभ्रातः प्रियसामन्ताः युष्मद्राजभक्तिपरिपोषितस्याद्यापि प्रचलति मे निष्कण्टकं राज्यशासनम् ।

सामन्ताः-महाराजेनानुग्रहपरंपरया वशीकृतमस्मच्चेतो विषयान्तरविमुखं राजशासनमात्रं प्रतीक्षते ।

दुर्दान्तेति । *** अत्र वसन्ततिलकावृत्तम् ।

कामक्रोधेति । जीवग्राहं गृहीत्वा जीवन्तं गृहीत्वेत्थः । समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः इत्यनेन णमुल् । अत्रोत्साहः स्थायिभावो निजभर्तुपरिपन्थ्यालम्बनं संग्राम उद्दीपनं तर्जनं चानुभाव आक्षेपो गर्वश्च संचारिणौ । एवमत्र युद्धवीरो रसः । स्रग्धरावृत्तम् ।

जयचन्दः-तद्गच्छेतां खुर्शानिखानबन्दातमीरसामन्तौ मम वीरानुजस्य साहाय्यार्थम् ।

सामन्तौ-यथाज्ञापयति देवः ।

(इति निष्क्रान्तौ)

जयचन्दः-सेनापते एतस्य प्रधानवीरस्य साहाय्यार्थं संनह्यतां दशसहस्रभटधुरीणं महत्सैन्यम् । तथैव च

प्रतिष्ठतां मे चतुरङ्गिणी चमूः
शस्त्रास्त्रयन्त्रैः परिबृंहिता द्रुतम् ।
प्रधृष्य धृष्टं नरपालपांसनं
करोतु सा तस्य बलावमर्दनम् ॥१२॥

सेनापतिः-महाराज राजसूयसंमिलितराजकुलानि युद्धकलाकौशल्यं प्रदर्शयितुं सज्जीकृतां सेनामद्यैव प्रस्थापयामि ।

(इति निष्क्रान्तः)

जयचन्दः-भ्रातः त्वमपि तावद्विजयप्रस्थानाभिमुखो भव ।

वालुकरायः-यथाज्ञापयति महाराजः।

(इति निष्क्रान्तः)

जयचन्दः-मन्त्रिन् सुव्यवस्थितमेतत्कार्यम् । तदेहि मन्त्रगृहमुपेवः । कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

प्रतिहारी-आज्ञापयतु देवः ।

जयचन्दः-मन्त्रगृहमार्गमादेशय ।

प्रतिहारी-इत इतो देवः ।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

एतन्मन्त्रगृहद्वारं तत्प्रविशतां देव आर्यश्च ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्योपविश्य च)

जयचन्दः-मन्त्रिन्, अस्ति राजसूयानुषङ्गिकः स्वयंवरोऽपि पुनर्ममौत्सुक्यकारण्।

सुमतिः-(स्वगतम्) कथमेवं ब्रवीति महाराजः। (प्रकाशम्) समागतेषु राजकुलेषु त्वनायाससाध्योऽयमुपक्रमः। नात्र चिन्तालवस्याप्यस्त्यवसरः।

जयचन्दः-(सनिःश्वासम्) परं च श्रुतं मया देवीमुखेन यदुत्सवनिमित्तेऽपि निरुत्सवा मे प्रियपुत्री संयोगिता।

पृष्टा सती वदति सा सुविचार्य वाचं
नास्वादयत्यपि नृपेन्द्रकुलार्हभोगान्।
आसेवते मुहुरसौ विनता विविक्तं
नावेदयत्यथ मनोगतमाधिहेतुम् ॥१३॥

सुमतिः-नियोज्या कापि निपुणा समवयस्का वयस्याऽस्या मनोभावावगमाय। यतः

विस्रम्भपात्राय मनःप्रवृत्ते
रहस्यमाख्याति नवानुरागा।

स्वयंवरोऽपीति। अत्र मुखसन्ध्यारम्भः। यत्र बीजसमुत्पतिर्नानार्थरससंभवा। प्रारम्भेण समायुक्ता तन्मुखं परिकीर्तितम् ॥ इत्युक्तत्वात्।

देवीमुखेनेति। अत्र देवी संयोगितायाः सापत्नमाता। **यदुत्सवेति**। अत्रोपक्षेपात्मकं संध्यङ्गम्। काव्यार्थस्य समुत्पत्तिरुपक्षेप इति स्मृतः इत्युक्तेः।

पृष्टा सतीति। अत्र 'प्रथमावतीर्णमदनविकारा मुग्धा नायिका। तदुक्तं दर्पणे - प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा। कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा।' इति। परिकराख्यं च संध्यङ्गम्। 'समुत्पन्नार्थबाहुल्यं ज्ञेयः परिकरः पुनः' इति। वसन्ततिलकावृत्तम्। अत्र च चिन्ताख्या कामदशोपवर्णिता। तद्यथा दर्पणे - 'द्वेषो यत्रान्यकार्येषु तदेकाग्रं च मानसम्। श्वासैर्मनोरथैश्चापि चेष्टास्ताः स्मृतिरुच्यते' इति। तत्रैव दश कामदशाः- 'अभिलाषश्चिन्तास्मृतिगुणकथनोद्वेगसंप्रलापाश्च। उन्मादोऽथ व्याधिर्जडतामृतिरिति दशात्र कामदशाः ॥' इति।

विस्रम्भेति। ***अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः। उपजातिवृत्तम्।

अत्यन्तगोप्यां रुजमातुरा किं
चिकित्सकेभ्योऽपि हि संवृणीत ॥१४॥

जयचन्दः- कार्यनिर्वाहकुशला देवी यथोदितं विधास्यति । परं चास्याश्चित्तप्रसादस्तावत् प्रथममापादनीयः ।

सुमतिः-महाराज संनिहितः खलु वसन्तसमयः । संप्रति हि

विमलजलसरःस्रवावगाह-
प्रवणनिजोपवनाश्रितो जनौघः ।
विहरति नवकेलिभिर्वसन्ते
समहिमतापविनन्दितान्तरङ्गः ॥१५॥

तथा च

नवप्रसूनैर्मधुमालतीलता
मनांसि यूनां परिमोदयन्ति ।
स्वभावतिक्ताऽपि च निम्बमञ्जरी
सुगन्धिनं गन्धवहं करोति ॥१६॥

तत्प्रस्तूयतां वसन्तोत्सवो राजकन्याचेतोविकृत्यपाकरणाय ।

जयचन्दः-एवमेव । कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

प्रतिहारी-आज्ञापयतु भर्ता ।

जयचन्दः-उच्यतां मद्वचनादन्तःपुराधिकृतो यत् संप्रवृत्ते वसन्तेऽस्मदुपवने वितन्यतां वसन्तोत्सवः समानवयोभिरेव सखीमिः । तत्र च वृक्षान्तरिता देवी कलयतु संयोगिताया मनोगतमिति ।

विमलजलेति । ***नवकेलिभिर्वसन्तसमयानुकूलक्रीडाभिर्विहरतीत्यर्थः । अस्य शृङ्गाररसोद्दीपनत्वात् प्रधानरसपोषकत्वम् । स्वभावोक्तिरलङ्कारः । पुष्पिताग्रावृत्तम् ।

नवप्रसूनैरिति । ***यथा वसन्तप्रभावेण प्रकृतितिक्ताऽपि निम्बमञ्जरी पवनं मधुरं करोति तथा संयोगिताऽपि परिजनं नन्दयिष्यतीति भावः । अत्र विषमाऽलङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

वसन्तोत्सव इति । ***वसन्तर्तुमधिकृत्य माघशुक्लपञ्चम्यां वितन्यमान उत्सवो वसन्तोत्सवः। 'तत्र रतिकामयोः पूजनमुक्तम्' इति धर्मसिन्धौ ।

प्रतिहारी-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

जयचन्दः-आवामपि तावद्धर्मासनमुपसृत्य राजकार्याणि पश्यावः ।

(इति निष्क्रान्तौ)

॥ समाप्तोऽयं **राजसूयोपक्रम**नामा प्रथमोऽङ्कः ॥

प्रथमोऽङ्क इति । अङ्कलक्षणं दर्पणे - 'प्रत्यक्षनेतृचरितो रसभावसमुज्ज्वलः । भवेदगूढशब्दार्थः क्षुद्रचूर्णकसंयुतः ॥ विच्छिन्नावान्तरैकार्थः किंचित्संलग्नबिन्दुकः । युक्तो न बहुभिः कार्यैर्बीजसंहतिमान्न च ॥ नानाविधानसंयुक्तो नातिप्रचुरपद्यवान् । आवश्यकानां कार्याणामविरोधाद्विनिर्मितः ॥ ..... देवीपरिजनादीनाममात्यवणिजामपि । प्रत्यक्षचित्रचरितैर्युक्तो भावरसोद्भवैः ॥ अन्तनिष्क्रान्तनिखिलपात्रोऽङ्क इति कीर्तितः ।' इति । तथा च नाट्यशास्त्रे - 'अङ्क इति रुढिशब्दो भावैश्च रसैश्च रोहयत्यर्थान् । नानाविधानयुक्तो यस्मात्तस्माद्भवेदङ्कः ॥' इति ।

इति श्रीसंयोगितास्वयंवरटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां
राजसूयोपक्रमनामा प्रथमोऽङ्कः समाप्तः ।

द्वितीयोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति सह सख्या संयोगिता)

चातुरिका-सखि तव विनोदार्थं तातपादैरुपक्रान्तोऽपूर्वो वसन्तमहोत्सवः।

संयोगिता-एष तु प्रतिवसन्तं पुनरावर्तते । तत्कथमपूर्व इत्यभिधीयते ।

चातुरिका-अस्ति कश्चिदत्र विशेषः ।

संयोगिता-किमम्बा स्वयमेव वसन्तपूजार्थमुपेष्यति ।

चातुरिका-नैव ।

संयोगिता-कथय तर्हि को विशेषस्तत्र ।

चातुरिका-सवयोभिरेव सखीभिराराध्यो भगवान् कुसुमायुध इति तातादेशः।

संयोगिता-अभीष्टमेव तदस्माकम् । तेन च भविष्यति यथेष्टकेलिनिरतः सखीजनः ।

चातुरिका-अथ किम् । (कर्णं दत्त्वा) अयि श्रूयते संमिलितानां सखीनां मिथः प्रलापः । तदावामपि तत्र गच्छावः ।

(इति परिक्रामतः)

संयोगिता-अतीव रमणीयः खलूद्यानप्रदेशः ।

चातुरिका-सखि पश्यात्र वसन्तसमुपागमापादितामुपवनसुषमाम् ।

ईषत्स्फुटैः कोमलपल्लवाग्रै-
रव्यक्तरागैर्ललितैश्च कुड्मलैः ।

प्रथमाङ्कान्ते-'सुमतिः-तत्प्रस्तूयतां वसन्तोत्सवः । जयचन्दः-अस्मदुपवने वितन्यतां वसन्तोत्सवः।' - इति पात्रद्वयेन सूचितस्य द्वितीयाङ्कस्य पूर्वाङ्काविभागत इवावतीर्णत्वादङ्कावतारोऽत्रार्थोपक्षेपकः । तदुक्तं दर्पणे-'अङ्कान्ते सूचितः पात्रैस्तदङ्कस्याविभागतः । यत्राङ्कोऽवतरत्येषोऽङ्कावतार इति स्मृतः ॥' इति । अस्मिन्नङ्के प्रधानरसस्योद्दीपनविभावानां वसन्तवर्णजलकेलिवनविहारसंगीतभूषादीनां वर्णनम् । तदुक्तं दर्पणे-'तत्र स्यादृतुषट्कं चन्द्रादित्यौ तथोदयास्तमयाः । जलकेलिवनविहारप्रभातमधुपानयामिनीप्रभृतिः । अनुलेपनभूषाद्या वाच्यं शुचि मेध्यमन्यच्च' ॥ इति ।

ईषदिति । *** अत्र समासोक्तिः काव्यलिङ्गं चालङ्कारौ । उपजातिवृत्तम् ।

मनोऽभिरामैर्वरवल्लिविभ्रमै-
गर्ता वनश्रीर्नवयौवनत्वम् ॥१॥

तथा च

नवकिसलयरागारञ्जितोऽयं रसालो
हरति मदकलानां कोकिलानां मनांसि ।
बकुलमलिकुलानां गुञ्जितेनाकुलं तत्
मृदुलसुरभिगन्धिं गन्धवाहं करोति ॥२॥

संयोगिता-अहो नितान्तं नयनसुभगोऽयमुपवनाभोगः ।

चातुरिका-एष आवां प्रतीक्षमाणो वसन्तक्रीडासमुत्सुकस्तिष्ठति सखीजनः ।

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः सखीजनः)

सख्यः-अहो दिष्ट्या संप्राप्ते अस्मत्प्रियसख्यौ ।

संयोगिता-इदानीं प्रवर्तन्तां वो वसन्तकेलयः ।

सख्यः-(अन्योऽन्यम्) एहि एहि।

(इति खेलन्ति)

चातुरिका-सखि रमणीयोऽयमुपक्रमः । यदेताः

वासन्तीकलिकास्रजः करयुगे सुस्निग्धवेण्यां तथा
कण्ठाग्रे नवमालिकासुमनसां हारं मनोहारिणम् ।
हस्ते तामरसं शिरीषकुसुमं धृत्वा च ताः कर्णयोः
खेलन्त्यो नवयौवनास्तु दधते साक्षाद्वसन्तद्युतिम् ॥३॥

संयोगिता-एवमेव । सर्वत्रापि भवति नयनगोचरो वसन्तस्यैव विलासः ।

चातुरिका-अयि पश्यात्र शृङ्गक्रीडारतानां सखीनां विस्रम्भचेष्टितम् ।

नवकिसलयेति । ***अत्र-'गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः' इत्यनेन गन्धशब्दस्थ समासान्त इकारः। मालिनीवृत्तम् ।

वासन्तीति । अत्र निदर्शनाऽलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं च वृत्तम् ।

परस्परं वर्णजलं सहेलं
सुवर्णशृङ्गैरभिषेचयन्त्यः ।
सायंतनीं सूर्यमरीचियोगजां
गता युवत्यः शरदभ्रशोभाम् ॥४॥

संयोगिता-एतास्तु वर्णजलैः स्नापिताः शिथिलसंचाराः संवृत्ताः । तदहतवसनपरिधानाय प्रेरय ।

चातुरिका-प्रियसख्यः प्रीताऽस्मद्राजपुत्री युष्मत्क्रीडोत्सवेन । तद्विरमत। नूतनवसनालङ्कृताश्च पुनरायान्तु वसन्तपूजामण्डपम् ।

सख्यः-तथा ।

(इति निष्क्रान्ताः)

चातुरिका-एताश्च कुङ्कुमरजःप्रक्षेपेणात्र क्रीडन्ति । अयि पश्य

यावच्च कुङ्कुमरजोविनिवारणाय
साच्छादयन्त्यपसृताऽऽननमंशुकेन ।
तावत्ससंभ्रममहो परितः स्खलन्ती
सख्योद्धतोपहसिता परिरम्भिता च ॥५॥

संयोगिता-एषा प्रकृतिप्रगल्भा मदनिका तु दीनां सरलां सततमेवोद्वेजयति।

चातुरिका-विलोक्य पुनरत्रभवतीं सा तामाश्वासयति । सखि पश्यात्र कन्दुकक्रीडाम् ।

कुसुमकन्दुककेलिपरायणा
नवयुवत्ययि सा मदसंकुला ।
सपरिहासमिहालिकुचद्वयं
कठिनलक्ष्यमहो कुरुते मुहुः ॥६॥

संयोगिता-गुरुप्रयत्नेनापि न सिध्यत्यस्याश्चललक्ष्यम् ।

परस्परमिति । ***अत्र निदर्शनाऽलङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

यावदिति । अत्रानेकासु क्रियासु कारकस्यैकत्वाद्दीपकालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

कुसुमेति । ***द्रुतविम्बितं वृत्तम् ।

चातुरिका–अहो जितमनया छलप्रयोगेण ।

अस्याः पुनः सजवसंक्रमणश्लथाया
वेण्याश्च्युतं कुसुमगुच्छमभिद्रुता सा ।
यावत्तु कन्दुकधियाऽवनता नताङ्गी
गृह्णाति तावदनया विजिता सलीलम् ॥७॥

संयोगिता–प्रमोदातिशयोद्धते एते पुनर्मत्तमयूरीनृत्यं विडम्बयतः ।

अन्योऽन्यदक्षिणकराङ्गुलिबन्धमेवं
वेगाद्विधाय समुदं परिवर्तमाने ।
वातोन्नतान्ततरले नवरागरम्ये
वामेन ते मुहुरधः कुरुतोऽन्तरीये ॥८॥

चातुरिका–कन्दुकक्रीडापरिश्रान्ता सा त्वपसरत्यलसगमना नितम्बिनी ।

एकाकिनी मञ्जुरसालसंकुलं
निकुञ्जमापल्लवरागरञ्जितम् ।
श्रमापनोदार्थमिता पिकस्य सा
मन्दस्वरेणानुकरोति कूजितम् ॥९॥

संयोगिता–आवां विलोक्य लज्जितेव सा विरमति ।

चातुरिका–सखि पश्यात्रातिमुक्तलतामण्डपे नृत्यक्रीडापरं विलासिनीगणम्।

वीणाया मधुरस्वनैरनुगतां हावैर्मनोहारिभि-
र्गायन्त्यो ललिताक्षराङ्कितपदां भावान्वितां गीतिकाम् ।
तिष्ठन्त्यो मुहुरन्तरा युवतयस्तानप्रदानादृता
मुग्धालीकरतालपालितलया नृत्यन्ति लीलालसम् ॥१०॥

अस्याःपुनरिति । ***अत्र भ्रान्तिमदलङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

अन्योऽन्येति । ***अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

एकाकिनीति । *** उपजातिवृत्तम् ।

वीणाया इति । वीणाया मधुराश्च ते स्वनाश्चानुवादनरूपास्तैरनुगतां भावैश्चेतोविकारैर्युक्तां ललितानि च तान्यक्षराणि च तैरङ्कितानि पदानि यस्यास्तां गीतिकां मनोहारिभिर्हावैभ्रूनेत्रादिविकारैर्गायन्त्यो मुहुरन्तरा मध्ये तानस्य स्वरप्रस्तारस्य प्रदानं तस्मिन्न दृता निरताः सत्यस्तिष्ठन्त्यो मुग्धा यवीयस्यश्च ता आल्यः सख्यस्तासां

संयोगिता-सखि नन्दयति खल्वेतासां लावण्यवतीनां सुललितं संगीतम्।

चातुरिका-तत्तावदत्र स्फटिकासन उपविशावः ।

(इत्युपविश्य शृणुतः)

सख्यः-(संगीतमारभन्ते)

(भूपालिरागेण त्रितालेन गीयते ।)

पायय तव रसिकां रसपानम् ॥
मोदय सदयं दयिताहृदयम् ।
द्योतय सहृदय लतावितानम् ॥ पायय० ॥१॥
तृषिते नयने मनोनिलयने ।
त्वयि कुरु लीने प्रिय जहि मानम् ॥ पायय० ॥२॥
प्रियतमहीना राधा दीना
गायति सततं तव महिमानम् ॥ पायय० ॥३॥

चातुरिका-सखि एहि । एषा वसन्तपूजामण्डपस्य पुष्पिततरुलतामण्डिता परिसरभूमिः । तत्र तावदुपसरावः ।

(इति परिक्रामतः)

संयोगिता-(सनिःश्वासं स्वगतम्) कुतोऽयमेकपदे मे मनोऽवसादः । (प्रकाशम्) अयि संप्रति खलु

नवकिसलयश्रीसंकीर्णप्रसूनपरिच्छदा
ललिततरवो नैतेऽप्यल्पं ममालिसुखावहाः ।

कराणां तालैः पालितो रक्षितो लयो यासां ता युवतयो लीलयाऽलसं यथा स्यात्तथा नृत्यन्ति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

भूपालिरागेणेति । तल्लक्षणमुक्तं लक्ष्यसंगीते **'कल्याणीमेलसंजाता भूपाली बुधसंमता । आरोहे चावरोहेऽपि मनिहीना भवेत्सदा । गान्धारः केवलं वादी धैवतोऽमात्य ईरितः । संगतिर्गपयोः प्रायस्तत्र रक्तिं समावहेत् ॥'** इति । अत्रोपवर्णितेन विप्रलम्भेनोद्बोधितस्य स्मृत्याख्यभावस्य-'कुतोऽयमेकपदे मे मनोऽवसादः' इत्यभिव्यक्तस्य नायिकाविप्रलम्भस्य हेतुत्वम् । मोदयेत्यत्र छेकानुप्रासः ।

कुतोऽयमिति । अत्रोद्वेगाख्या पञ्चमी कामदशा । 'यस्मिन्नम्यमरम्यं वा न च हर्षाय जायते ।' इत्युक्तेः ।

नवकिसलयेति । ***अत्र विशेषोक्तिर्विभावना चालङ्कारौ । हरिंणीवृत्तम् । अत्र तापनाख्यं संध्यङ्गम् । तदुक्तं दर्पणे-'उपायादशनं यत्तु तापनं नाम तद्भवेत् ।' इति ।

मधुकरकुलं मन्दं गुञ्जत्तनोत्यधिकां रुजं
प्रियसखि मम त्वेवंप्रायः प्रयास्यति यौवनम् ॥११॥

चातुरिका-मा मैवम्। वसन्तोत्सवाराधितो भगवान् कुसुमायुधः पूरयिष्यति ते मनोरथम्। अयि पश्यैष क्रीडानिवृत्तः सखीजनः पुष्पावचयार्थमितस्ततो धावति।

संयोगिता-अहो उत्साहपूर्णोऽयं सखीजनः ।

चातुरिका-तव सान्निध्यमात्रेणायमेवं प्रोत्साहितः । अयि अस्ति किंचिद्दर्शनीयम् ।

बालप्रवालकुसुमावचयप्रवृत्ता
संवेष्टिता सहचरीकरवल्लरीभ्याम् ।
मोदेन पल्लवधियाऽङ्गुलिमाददाना
सा वञ्चितोपहसिता चलिता सलज्जम् ॥१२॥

संयोगिता-प्रकृतिसमुद्धताः खलु नवयौवनाः ।

चातुरिका-सखि प्रभाव एवैष भगवतः कुसुमायुधस्य ।

संयोगिता-अथ किम् ।

चातुरिका-अयि विनिवृत्तोऽयं सखीजनः प्रविशति पूजामण्डपम् । एह्यावामपि तत्रोपतिष्ठावहे ।

(इति परिक्रामतः)

सख्यः-उपविशत्वत्र वरासनेऽस्मत्प्रियसखी चातुरिका च ।

उभे-एते आवामुपविशावः ।

(इत्युपविशतः । सर्वाश्च यथास्थानमुपविशन्ति ।)

संयोगिता-अथ प्रवर्ततां मदनार्चनम् ।

(संयोगिताप्रमुखाः सर्वा मदनमन्त्रं पठन्ति)

साकूतनेत्रान्तविलासजन्य-
रागस्मितान्याशु मनांसि यूनाम् ।
परस्परं संग्रथयन् सलीलं
जयत्यनङ्गो भुवि देवदेवः ॥१३॥

(इति सर्वा मदनप्रतिमामर्चयन्ति)

बालप्रवालेति । ***अत्र भ्रान्तिमदलङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

मदनिका-वीणागानेन प्रसादयन्त्वथ भगवन्तं कुसुमायुधम् ।

सख्यः-(वीणावाद्येन गायन्ति)

(वसन्तरागेण त्रितालेन गीयते ।)

वितरति नतिमयि रतिरमण ।
युवतिजनस्ते रतिरमण ॥
नवसुमसायक वसन्तनायक ।
अलिकुलगायक रतिरमण ॥ वितरति० ॥१॥
वनिताशरण रसिकविधरण ।
भवसंतरण रतिरमण ॥ वितरति० ॥२॥
सुरगणवन्दित निजरतिनन्दित ।
स्तवनानन्दित रतिरमण ॥ वितरति० ॥३॥
वाञ्छितमर्पय मनांसि तर्पय ।
स्वजनं दर्पय रतिरमण ॥ वितरति० ॥४॥

मदनिका-अभीष्टवरसिद्ध्यर्थं प्रीणयतु पुनरपि संगीतेन भगवन्तं मनोभवं सखीजनः ।

सख्यः-(संगीतमारभन्ते)

(बाहाररागेण त्रितालेन गीयते)

पाहि मनोभव मदन ।
अरमिह सदयमुपेहि समेहि ॥
अलिकुलसंकुलबकुलसुवासित-
वातविकासितनवरसलासित-
युवजनमानससदन । पाहि० ॥१॥

वसन्तरागेणेति । ***अत्र छेकानुप्रासवृत्त्यनुप्रासौ शब्दालङ्कारौ ।

बाहाररागेणेति । तल्लक्षणमुक्तं लक्ष्यसंगीते '**हरप्रियाख्यमेलाच्च जातो रागः सुसंमतः । आधुनिको बाहाराख्यश्चंचलप्रकृतिः सदा ॥ समयोरेव संवादः स्वीकृतोऽत्र विचक्षणैः । वसन्ततो मतं गानं संगत्या मधयोर्भृशम् । आरोहणे रिहीनत्वं प्रतिलोमे धलोपनम् । इति मर्मविदामेतन्मतं भाति सुसंगतम् ॥**' इति।

पाहीति । *** अत्र वृत्त्यनुप्रासः शब्दालङ्कारः ।

वलयितपिकसहकारकिसलया-
रुणदयितलयाऽलङ्कृतकलया
निजनुतिनन्दितवदन । पाहि० ॥२॥
प्रणमति वनिता महसि तव रता
शरणमुपगता प्रणयविदलिता
यौवनमाननिकदन । पाहि० ॥३॥

विजयतामनङ्गो विजयतामनङ्गः ।

(इति तारस्वरेणोद्घुष्य निष्क्रान्तः सखीजनः)

चातुरिका-(सस्मितम्) अयि भवतु वाञ्छितवरप्रदस्ते भगवान् मनोभवः।

संयोगिता-(निःश्वस्य, भ्रमरबाधां च निरूप्य, ससंभ्रमम् स्वगतम्) कोऽयं मे मनसि विकारः । (प्रकाशम्) हा नाथ...

(इत्यर्धोक्ते मूर्च्छति)

चातुरिका-(ससंभ्रमम्) सखि समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

(इति नलिनीदलेन वीजयति)

संयोगिता-(संज्ञा प्रतिपद्य) किमेवं मां वीजयसि ।

चातुरिका-प्रियसखि निवारयाम्यहमेनमत्र परिवर्तमानं मधुकरम् । परं च कथय

कमलमुकुलकोमलाङ्गकानि
व्यथयति यः सखि कम्पयन्नजस्रम् ।
अभिनवमकरन्दलोलुपोऽयं
तव हृदि को नु निलीयते मिलिन्दः ॥१४॥

सखि विस्रब्धं देहि मे प्रतिवचनम् ।

संयोगिता-(सनिःश्वासम्) अयि किमेतेन ज्ञातेन । तथापि कथयामि ।

हा नाथेति । अत्र मूर्च्छा दशमी कामदशा ।

कमलमुकुलेति । *** पुष्पिताग्रावृत्तम् ।

शृणु। असुलभप्रार्थनाप्रवणमिदं मनः किल दिल्लीश्वरे सुतरां बद्धभावम्। तथा हि-

गतमवनिभुजामधीश्वरस्य
श्रवणपथं विमलं यशो यदा मे ।
प्रियसखि मम मानसे तदानीं
सपदि पदं कृतवानसौ मरालः ॥१५॥

चातुरिका-(स्वगतम्) सुसाध्याऽस्ति भ्रमरबाधा किंतु सर्वथा दुःसाध्यैव मरालबाधा। (प्रकाशम्) अप्यनुमतोऽत्र सखीजनः ।

संयोगिता-सखि अनभिज्ञाऽसि खल्वनङ्गविचेष्टितस्य यन्मामेवं पृच्छसि। यतः-

क्वचिद्गुणानां श्रुतिरेव केवला,
क्वचिन्मिथो वीक्षणयोग एव ।
स्वप्ने कदाचित्प्रियदर्शनं पुन-
र्भवत्यलं मन्मथवैभवाय ॥१६॥

अयि नास्त्यवकाशोऽत्र गुरुजनस्याप्यनुमतेस्तत्किं पुनः सखीजनस्य ।

चातुरिका-तथापि शृणु ममैकामभ्यर्थनाम्। अयि तेजस्विन्यपि पृथ्वीराजे रिपुरयं तातचरणानामिति नोचितस्ते प्रेमबन्धः ।

संयोगिता-(स्वगतम्) अहो नु खलु तातचरणानामेव हृद्गतं विव्रियते । (प्रकाशम्) प्रियसखि -

स सम्राट् तेजस्वी श्रवणसुभगं तेऽत्र वचनं
नितान्तं कान्ते मेऽभिनवमनुरागं द्रढयति ।

असुलभेति । अत्र प्रतिमुखसन्ध्यारम्भः। तदुक्तं दर्पणे-'फलप्रधानोपायस्य मुखसन्धिनिवेशिनः। लक्ष्यालक्ष्य इवोद्भेदो यत्र प्रतिमुखं च तत् ॥' इति । पृथ्वीराजसंयोगितासमागमहेतोरनुरागबीजस्य प्रथमाङ्कोपक्षिप्तस्यात्र चातुरिकया प्रत्यक्षं राज्ञ्या च प्रच्छन्नं ज्ञायमानतया किंचिल्लक्ष्यस्य जयचन्देन चोन्नीयमानतया किंचिदलक्ष्यस्योद्भेदात्।

गतमिति । ***अत्र यशःश्रवणस्यानुरागहेतुत्वम् । **तदुक्तं दर्पणे-**'श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथः संरूढरागयोः । दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वरागः स उच्यते ॥' इति ।

तेजस्विन्यपीति । अत्र भेदाख्यं संध्यङ्गम्-'भेदः संहतभेदनम्' इत्युक्तेः ।

स सम्राडिति । *** अत्र गुणकथनाख्या चतुर्थी कामदशा ।

पराधीनं चेतस्त्वसमशरविद्धं न हि गुरो
रिपुं वा मित्रं वा क्षणमपि विवेक्तुं प्रभवति ॥१७॥

चातुरिका-(पुरतो विलोक्य) त्वामस्वस्थशरीरामुपश्रुत्येत एवोपागच्छति भट्टिनी ।

(ततः प्रविशति सख्योर्विस्रम्भालापमुपश्रुत्य वृक्षान्तरिता राज्ञी)

राज्ञी-वत्से अपि स्वस्थाऽसि ।

संयोजिता-कुतो मे स्वास्थ्यम् ।

राज्ञी-वत्से अस्थान एव तवायमभिनिवेशः । एवमुत्पथगामिन्या त्वया स्वयमेवात्मा क्लेशपदं नीयते ।

संयोगिता-(सप्रश्रयम्) अम्ब नाहमधमाभिनिवेशेन पितृकुलं कलङ्कयितुं प्रवृत्ता येनोत्पथगामिनी स्याम् ।

रत्नाकरं प्रति शिलोच्चयविस्रुतानां
किं स्रोतसां न विदितं भुवि नीचगत्वम् ।
कल्पद्रुमं तु परितो वलिनी लता किं
नात्मोद्गमाद्गुरुकुलं सुरभीकरोति ॥१८॥

राज्ञी-वत्से कामयन्ते त्वामत्र समवेतास्तारुण्यश्रियोल्लसन्तो राजपुत्राः । तदस्मत्परिपन्थिनं परित्यज्यान्यतमं च स्वीकृत्य संतोषयावाम् ।

संयोगिता-अस्थान एव तवायमनुबोधः । यतः

श्रीवल्लभोऽथ कुसुमेषुरमोघकान्ति-
र्नैवाप्यलं यदपहर्तुमिह प्रवृत्तम् ।
जन्मान्तरव्यतिकरव्यतिषक्तमेत-
न्मातः कथं नु हृदयं विनिवारणीयम् ॥१९॥

अम्ब स्वयंवरा हि क्षत्रियकन्यकाः । न च तासामनुरूपानुरागः कदाचिदप्यधर्माय कल्पते । यतः

श्रीवल्लभेति । *** वसन्ततिलकावृत्तम् ।

पत्युरनुवर्तनं खलु
विवाहितायाः श्रुतः परो धर्मः ।
मनसो यत्र न वर्तन-
मम्ब विवाहः कथ स धर्माय ॥२०॥

राज्ञी-तथाप्यनुल्लङ्घनीयो गुरोर्निदेश इत्येषा धर्ममर्यादा ।

संयोगिता-अम्ब नैषा तनयाविषया । यतः पुरा पार्वती हिमवतोऽनिच्छतोऽपि मनीषितं महेश्वरं संगता । अनुचितप्रार्थनाप्रवणमेव मनः पुनर्निरोद्धव्यं गुरुजनेन ।

राज्ञी-वत्से अमर्षणस्ते तातः ।

संयोगिता-अम्ब किमेवं मां भीषयसे ।

मधुरवचनतो न वा विरोधा-
न्न जननि दारुणदण्डतोऽन्यतो वा ।
अलमिह निजधर्मतः प्रवृत्तं
त्वमपि निवर्तयितुं मनाङ् मनो मे ॥२१॥

राज्ञी-(स्वगतम्) अहो कष्टम् । दुश्चिकित्स्योऽस्या आधिः । यद्भावि तद्भवतु। तावदार्यपुत्राय निवेदयामि ।

(इति निष्क्रान्ता)

चातुरिका-(सनिःश्वासम्) प्रियसखि अतः परं न ते भद्रं पश्यामि ।

संयोगिता-अयि किमेवमुद्विग्नासि ।

स्निग्धे नितान्तं कुपितः पिता मां
वियोजयिष्यत्यथ जीवितेन ।

पत्युरिति । अत्र मत्याख्यः संचारिभावः । 'नीतिमार्गानुसृत्यादेरर्थनिर्धारणं मतिः ।' इत्युक्तेः ।

हिमवतोऽनिच्छतोऽपीति । अत्रानादरे षष्ठी 'षष्ठी चानादरे' इति । तदुक्तं भविष्योत्तरपुराणे- 'कपर्दिनं तु भर्तारं करिष्येऽहं न संशयः ॥ एतन्मे चिन्तितं कार्यं तातेन कृतमन्यथा । तस्माद्देहं परित्यक्ष्ये वरिष्ये न तु केशवम् ॥' इति ।

अमर्षणेति । अत्र वज्राख्यं सन्ध्यङ्गम्-'प्रत्यक्षनिष्ठुरं वज्रम्' इत्युक्तत्वात् ।

मधुरेति । अत्र धैर्याख्यो नायिकालङ्कारः-'मुक्तात्मश्लाघना धैर्यं मनोवृत्तिरचञ्चला ।' इति ।

रुजा हि हृन्मर्मतुदातुराया
वरं विनाशः प्रियविप्रयोगात् ॥२२॥

चातुरिका-(ससाध्वसम्) अहो कथमेषा मदनिका ससंभ्रममत्रागच्छति। किञ्चिदनिष्टं शङ्कते मे हृदयम्।

(ततः प्रविशति संभ्रान्ता मदनिका)

मदनिका-प्रियसखि आदिष्टं महाराजेन यदस्माभिरद्यैव भागीरथीतटोपरि निर्मितं प्रासादं प्रति यातव्यमिति।

संयोगिता-अयि सावशेषमिव ते वचः।

मदनिका-एवमेव। किंतु तत्र न मे वाक् प्रसरति।

संयोगिता-अयि किमेवं विह्वलाऽसि। विस्रम्भेण मां तातादेशं श्रावय।

मदनिका-प्रियसखि यावज्जीवं तत्रैवास्माकमवस्थितिः।

संयोगिता-(सस्मितम्) अयि नैषाऽपकृतिरपि पुनरनुग्रहः। यतः

स्मारं स्मारं जीवितेशानुभावं
नित्यं गाने तद्गुणानां प्रवृत्ता।
निर्बाधं वै कान्तलीनान्तरङ्गा
स्वायुःशेषं यापयिष्ये प्रियेऽहम् ॥२३॥

(प्रविश्य)

प्रतिहारी-सज्जो रथो द्वारि तिष्ठति।

संयोगिता-एत गच्छामो वयं शिरसि कृत्वा महाराजादेशम्।

(इति निष्क्रान्ताः)

॥ समाप्तोऽयं **वसन्तोत्सव**नामा द्वितीयोऽङ्कः ॥

यावज्जीवमिति। अत्र गर्भसन्ध्यारम्भः। तदुक्तं दर्पणे-'फलप्रधानोपायस्य प्रागुद्भिन्नस्य किंचन। गर्भो यत्र समुद्भेदो ह्रासान्वेषणवान्मुहुः ॥' इति। संयोगितायाः कारागृहे संयमनमत्र ह्रासस्तृतीयाङ्के च पृथ्वीराजं प्रति मदनिकायाः संप्रेषणमन्वेषणम्।

स्मारं स्मारमिति। अत्र विधानाख्यं संध्यङ्गम्-'सुखदुःखकृतो योऽर्थस्तद्विधानमिति स्मृतम्।' इत्युक्तत्वात्।

इति श्रीसंयोगितास्वयंवरटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां वसन्तोत्सवनामा द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः।

तृतीयोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशतो राजपुरुषौ)

मानसिंहः-अये किमिति चिराद्दर्शयसे ।

समरसिंहः-अन्यत्र नियुक्तः कदाचिदेवात्रोपैमि ।

मानसिंहः-संप्रति क्व ते नियोगः ।

समरसिंहः-निहते वालुकरायेऽस्मत्सेनापतिना कन्हेन बन्दीकृतास्तस्य सैनिकाः । तदर्थं च निर्मितं नूतनं कारागृहम् । तत्र मे नियोगः ।

मानसिंहः-अथ कनोजाधिपेन प्रक्रान्तस्य राजसूयस्य किं संवृत्तम् ।

समरसिंहः-एवं भ्रातुर्वधेन स तु विघ्नितः । परं च संयोगितायाः स्वयंवरार्थं पुनः कनोजाधिपः प्रयतत इति श्रुतं मया कर्णपरंपरया ।

मानसिंहः-भद्रारम्भाण्येव श्रेयांसि । तद्यथा राजसूयस्तथैव स्वयंवरोऽपि भविता ।

समरसिंहः-भवतु यत्किमपि । अहं तु त्वरयामि नियोगपरिपालनाय ।

मानसिंहः-अहमपि तावच्चारदर्शनार्थमन्तर्वेश्मन्यवस्थितं महाराजं पतिपालयितुं प्रतिष्ठे ।

(इति निष्क्रान्तौ)

विष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारः पृथ्वीराजः)

पृथ्वीराजः-(स्वगतम्) अहो विघ्नितेऽपि राजसूये केयं मे मनसि संतापानुवृत्तिः । अथवा

दर्शयस इति । अत्र 'णेरणौ यत्कर्म णौ चेत्स कर्तानाध्याने' इति सूत्रेणात्मनेपदम् ।

भ्रातुरिति । भ्रातुर्वालुकरायस्य ।

विष्कम्भक इति । तल्लक्षणमुक्तं दर्पणे-'वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः । संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥' इति ।

अवश्यमासन्नविपत्तिपूर्वं
श्रुतं मनोऽव्यक्तरुजाऽभिभूतम् ।
तदेव भाविन्यपि मङ्गलार्थे
प्रसादमाविष्कुरुते त्वहैतुकम् ॥१॥

अद्यैव प्रत्यागमिष्यन्ति कनोजनगरं प्रेषिताश्चाराः । यतो ज्ञास्यामि जयचन्दप्रवृत्तिम् । संप्रति खलु

जातः समेतैर्नरपालसंघै-
रुपासितोऽयं नृपतिर्मदोद्धतः ।
उपायसाध्यो यदि नास्त्यपायकृत्
तथापि कार्यः स मया वशानुगः ॥२॥

तच्चारवृत्तान्तमधिगम्य प्राप्तकालं तत्पराभवप्रयोगमन्विष्यामि ।

(प्रविश्य)

द्वारपालः-जयतु जयतु देवः । एष कोऽपि वैदेशिको द्वारि तिष्ठति ।

पृथ्वीराजः-शीघ्रमेनं प्रवेशय ।

द्वारपालः-तथा । (इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

चारः-विजयतां सार्वभौमः ।

पृथ्वीराजः-अये वीरसिंहः । अप्यस्ति काचित्सविशेषा प्रवृत्तिरस्मदरातेः।

वीरसिंहः-पूर्वं तावदभिनन्द्यते सार्वभौमो लोकोत्तरविजयश्रीसमागमेन ।

पृथ्वीराजः-भद्र किमुच्यते ।

वीरसिंहः-श्रृणोतु सार्वभौमः । जयचन्दस्य स्वयंवरार्हा कन्या सार्वभौममेव कामयते ।

पृथ्वीराजः-(सविस्मयं स्वगतम्) अचिन्त्यप्रभावो हि भगवान् कुसुमायुधः।

वीरसिंहः-अनुपमलावण्यशालिन्या तया नन्दनायते राजोपवनम् । सा त्वभिनवयौवना

नन्दनायत इति । नन्दनमिवाचरति नन्दनायते । 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' इति सूत्रेण क्यङ् ।

विकसितजलजाक्षी मुग्धपद्माननश्री-
मुर्कुलकुचमनोज्ञा स्निग्धनालाङ्गयष्टिः ।
निजपरिमललुब्धान्वारयन्ती मिलिन्दान्
लसति ललितलीला पद्मिनी पद्मिनीव ॥३॥

पृथ्वीराजः-(स्वगतम्) अहो कथमेवमेकपदे तस्यामिदं बद्धभावं मनो धैर्यं मुञ्चति । (प्रकाशम्) अथ त्वया निपुणमवलोकिता सा वरवर्णिनी ।

वीरसिंहः-सार्वभौम एकदा मया

कृत्वा बिम्बाधरमवनता साङ्गुलीसंवृताग्रं
हंसद्वन्द्वं प्रकृतिचपलापाङ्गदृष्ट्या पिबन्ती ।
बाला तन्वी कमलवदना चारुकेशी नताङ्गी
दृष्टा राजन् वरतनुलता काऽपि वातायनस्था ॥४॥

पृथ्वीराजः-(स्वगतम्) अपेक्षते त्ववश्यं तरुवराश्रयमुद्यानलता ।

वीरसिंहः-अपि च

उपचितकुचयुग्मेनोन्नता हारकान्ति-
र्हरति नयनयुग्मं तन्मुखालोकलोलम् ।
अलसगतिरताया नूपुरध्वानमग्नौ
स्वन इव रशनाया मूर्च्छयत्याशु कर्णौ ॥५॥

पृथ्वीराजः-(मनोवेगं निरूप्य स्वगतम्) हृदय समाहितं भव । (प्रकाशम्) कथं तत्र प्रचलति स्वयंवरकार्यम् ।

वीरसिंहः-पर्युत्सुकायाः संयोगिताया भावबन्धमभिज्ञातुमुपक्रान्ते

अथ नायिकावर्णनं विकसितेति । ***पद्मिनीलक्षणमुक्तं रतिमञ्जर्यां-'भवति कमलनेत्रा नासिकाक्षुद्ररन्ध्रा । अविरलकुचयुग्मा चारुकेशी कृशाङ्गी ॥ मृदुवचनसुशीला गीतवाद्यानुरक्ता । सकलतनुसुवेशा पद्मिनी पद्मगन्धा ॥' इति । अत्रोपमाऽलङ्कारः । शोभाख्यश्च नायिकाऽलङ्कारः । मालिनीवृत्तम् ।

अहो कथमिति । अत्र भावाख्यो नायकालङ्कारः । 'निर्विकारात्मके चित्ते भावः प्रथमविक्रिया।' इत्युक्तेः ।

कृत्वेति । ***बाला षोडशवर्षदेशीया - 'आषोडशाद्भवेद्बाला' इति वचनात् । ***अत्र विलासाख्यो नायिकाऽलङ्कारः । मन्दाक्रान्तावृत्तम् ।

उपचितेति । ***अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । ललिताख्यश्च नायिकाऽलङ्कारः । मालिनीवृत्तम् ।

वसन्तमहोत्सवेऽर्धप्रत्यागतसंज्ञया तयाऽऽविष्कृतः सार्वभौमानुरागः ।

पृथ्वीराजः-(स्वगतम्) अयि मुग्धे प्रतारिताऽसि खलु सखीजनेन। (प्रकाशम्) ततस्ततः ।

वीरसिंहः-दृढानुरागपरवशा सा तु दुरात्मना जयचन्देन भागीरथीतीरे नूत्नं प्रासादं-अथवा कारागृहं-निर्माय तत्र बन्दीकृता ।

पृथ्वीराजः-वीर सद्यस्त्वं पुनरपि कनोजनगरं प्रतिष्ठस्व ।

वीरसिंहः-यथाज्ञापयति सार्वभौमः ।

(इति निष्क्रान्तः)

पृथ्वीराजः-(स्वगतम्) अयि बाले मदभिनिवेशमात्रेणानुभूयते त्वयेदृशी दुरवस्थेति सुव्यक्तमेव । परं त्वत्र पर्याकुलं मे मनः किंकर्तव्यतामूढं संपद्यते । तन्मन्त्रिभिरनुमतेन पथा प्रयतिष्ये । यतः

नितान्तविद्वेषपरोऽस्ति तद्गुरु-
बार्ला त्वियं मय्यनुरागविह्वला ।
कथं दुराधर्षमृगेन्द्रकन्दरा-
गताऽवनीया हरिणीव सा मया ॥६॥

(प्रविश्य)

द्वारपालः-देव कोऽपि यवनतापसो द्वारि तिष्ठति ।

पृथ्वीराजः-प्रवेशयैनम् ।

द्वारपालः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

यवनतापसः-विजयतां देवः ।

पृथ्वीराजः-अपि कुशलं कविवरस्य दुर्गकेदारस्य ।

यवनतापसः-अथ किम् । परं तु देवेन पराजित्य बन्दिग्राहं गृहीत्वा विसृष्टः कृतघ्नो यवनराजः पुनरप्याक्रमणमुपक्रमत इति संदिष्टं कविवरेण ।

नितान्तेति । ***तापनं नाम संध्यङ्गम्-'उपायादर्शनं यत्तु तापनं नाम तद्भवेत् ।' इत्युक्तेः । उपजातिवृत्तम् ।

पृथ्वीराजः-(स्वगतम्) किमसौ दुरात्माऽद्यापि न विरमति । (प्रकाशम्) भद्र ब्रूहि कविवरं यदनुगृहीतोऽस्मि पुनरप्यरातिप्रवृत्तिपरिचयेनेति ।

यवनतापसः-यद्देव आज्ञापयति ।

(इति निष्क्रान्तः)

पृथ्वीराजः-(स्वगतम्) अहो बत केयमनर्थपरंपरा । यद्

एकतो वरतनुः परिरक्ष्या
सोऽन्यतस्तु यवनो विनिवार्यः ।
क्रन्दितस्य ननु हेममृगेण
लक्ष्मणस्य गमितोऽहमवस्थाम् ॥७॥

ईदृश्येवाथवाऽविरतपरिवर्तनात्मकस्य संसारचक्रस्य स्वाभाविकी घटना । यतः

विपद्विपत्तिं पुनरेव संपदं
संपत्सदैवानुगता हि दृश्यते ।
पक्षे सिते चन्द्रकलोपचीयते
सितेतरे सा परिहीयते क्रमात् ॥८॥

(प्रविश्य)

द्वारपालः-देव पत्रहस्ता काऽपि मदनिकेति नामधेया युवती कनोजनगरान्निजमागमनं ख्यापयन्ती द्वारि तिष्ठति ।

पृथ्वीराजः-सत्वरमेनां प्रवेशय ।

द्वारपालः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

पृथ्वीराजः-(स्वगतम्) अपि नाम स्यान्मे प्रणयिन्या मदनलेखः ।

(प्रविश्य)

मदनिका-विजयतां लोकनाथः ।

एकत इति । ***अत्र निदर्शनाऽलङ्कारः । स्वागतावृत्तम् ।

विपदिति । अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

पृथ्वीराजः-स्वागतमत्रभवत्यै ।

मदनिका-अपि स्मर्यते महानुभावेन यदासीदत्र देवानुग्रहशालिनी कर्णाटकीति ।

पृथ्वीराजः-आं सा तु कनोजेश्वरान्तःपुरपरिचारकगणे नियुक्ता वर्तत इति श्रुतमस्माभिः ।

मदनिका-एवमेव। सैषा कर्णाटक्यस्मत्प्रियसख्याः संयोगितायाः प्रेमपात्रम्।

पृथ्वीराजः-(स्वगतम्) अहो धन्यासि कर्णाटकि । यदरातिश्रिताया अप्युज्जृम्भते तेऽचला राजभक्तिः । (प्रकाशम्) अपि कुशलं तव प्रियसख्योः ।

मदनिका-ज्ञापयिष्यति तन्महानुभावमेषा प्रियजनपत्रिका ।

(इति पत्रिकामर्पयति)

पृथ्वीराजः-(आदायोद्घाट्य वाचयति)

एषा महानुभावस्य भूतपूर्वा परिचारिका साष्टाङ्गं प्रणिपत्य विज्ञापयति। यदधीश्वरे बद्धभावा मे प्रियसखी प्रापिताऽनुकम्पनीयामवस्थां मदनहतकेन। संप्रति खलु सा

प्रियजनपरिहासं तर्जयन्ती सरोषं
परिजनमनिमित्तं चाक्षिपन्ती विनीतम्।
मदनदहनदग्धा म्लानगात्री सखी मे
श्वसिति नरपते ते संगमाशानिबद्धा ॥ ९॥

तदुभयोः स्नेहपरवशाया ममास्त्येकमेवात्र विज्ञाप्यम् । यत्

समुद्गतां जीवितसंशयं सखीं
सपद्युपेत्यार्हसि देव रक्षितुम् ।
त्वदाश्रया त्यक्ष्यति जीवितं चेत्
तस्या यशस्ते पुनरेव वाच्यता ॥ १०॥

एकत इति । ***अत्र निदर्शनाऽलङ्कारः । स्वागतावृत्तम् ।

विपदिति । अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

प्रियजनेति । ***अत्र व्याध्याख्या कामदशा-'व्याधिस्तु दीर्घनिःश्वासपाण्डुताकृशतादयः'-इत्युक्तेः ।

इति। अत्रास्त्यनुबद्धः प्रियसख्या स्वहस्तेन लिखितो मदनलेख इति ।

मदनिका-देव यथार्थमेव लिखति कर्णाटकी ।

पृथ्वीराजः-(मदनलेखं वाचयति)

निर्घृणमनसिजविशिखै-
र्विलुप्यमानां त्वदाश्रयामबलाम्।
प्राणेश्वर परिपालय
परमशरण्यः श्रुतस्त्वमार्तानाम् ॥११॥

(निःश्वस्य स्वगतम्) हा प्रियतमे नायं मनसिजो निर्घृणः किंत्वहमेव । (प्रकाशम्) अपि सततं संनिहिता वर्तते कर्णाटकी ।

मदनिका-देव तथैव समाश्वासिताऽस्मत्प्रियसखी कथमप्याशाबन्धेन कालं यापयति ।

पृथ्वीराजः-(स्वगतम्) अहो अनर्थप्राया हि राजवृत्तिः। यत्कार्यबाहुल्यान्न स्मर्यते स्मरणार्हम् । (प्रकाशम्) मदनिके इदानीमेव भवति मे स्मृतिगोचरा प्रागेव चन्दकविनिवेदिता तव प्रियसख्याः प्रणयप्रवृत्तिः ।

मदर्थं क्लिश्यन्तीं सुतनुमपि विज्ञाय सुहृदः
प्रमत्तेनैवाहो न खलु कलितं तत्प्रियवचः ।
मयैवैवं बाला कठिनहृदयेनाविमृशता
दशामेतां नीता कुसुमसुकुमारा प्रणयिनी ॥१२॥

मदनिका-नार्हति देव एवमात्मानमुपालब्धुम् ।

पृथ्वीराजः-अयि मदनिके ब्रूहि मद्वचनात् कर्णाटकीम् । यत्त्वदधीनमेव मे प्रियतमाया जीवितम् । तत्सर्वात्मना रक्षैनाम् । प्रस्थास्येऽद्यैव कनोजनगरमिति।

मदनलेख इति । तदुक्तं दर्पणे-'लेखप्रस्थापनैः स्निग्धैर्वीक्षितैर्मृदुभाषितैः । दूतीसंप्रेषणैर्नार्या भावाभिव्यक्तिरिष्यते ॥' इति ।

निर्घृणेति । ***अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः ।

मदर्थमिति । ***अत्र पश्चातापनामा नाट्यालङ्कारः-'मोहावधीरितार्थस्य पश्चातापः स एव तु।'-इत्युक्तेः । शिखरिणीवृत्तम् ।

पत्रिकां चैतां प्रणिपातपुरःसरं प्रियतमायै निवेदय।

(पत्रिकां लिखति-स्वगतम्)

अयमागतो जनस्ते
प्रणयपरवशः स्मरोषितः शरणम् ।
को नु यदृच्छोपगतं
पीयूषरसं न सेवते दयिते ॥१३॥

मदनिके गृहाणेमाम् ।

(इत्यर्पयति)

मदनिका-(गृहीत्वा)यद्देव आज्ञापयति ।

(इति निष्क्रान्ता)

पृथ्वीराजः-(स्वगतम्) निश्चितमेव मेऽद्य प्रस्थानम्। यावदामन्त्रये महिषीम्। कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

द्वारपालः-आज्ञापयतु देवः ।

पृथ्वीराजः-अन्तःपुरमार्गमादेशय ।

द्वारपालः-इत इतो देवः ।

(उभौ परिक्रामतः)

एतदन्तःपुरद्वारं प्रविशतु देवः । (इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

पृथ्वीराजः-अप्यनुकूला उपचाराः । (इत्युपसर्पति)

(ततः प्रविशत्यासनस्था महिषी)

इच्छिनीकुमारी-आर्यपुत्र मृगयाप्रियस्य ते चिराद्दर्शनमेव ममोपतापकारण्। अत्र किं करिष्यन्ति चिकित्सकाः ।

पृथ्वीराजः-देवि मिथ्यैष आक्षेपः। संप्रति तु राजकार्यव्यग्रस्य मे निवृत्तो मृगयाव्यापारः ।

इच्छिनीकुमारी-तत्किमेवं व्यवहितसमयेनात्मानं दर्शयत्यार्यपुत्रः ।

पृथ्वीराजः-देवि दुर्वाह्यो हि राज्यभरः । यतः

निगृह्य दुष्टाननुगृह्य सज्जनान्
प्रजाः स्वयं पालयतो महीभुजः ।
अनिच्छतोऽप्यस्ति दिशो दिगन्तरं
दिनेशवच्चङ्क्रमणं न च स्थितिः ॥१४॥

इदानीमप्यापतितः प्रयाणप्रसङ्गः । तदनुजानीहि मां कनोजनगरं प्रति संचाराय।

इच्छिनीकुमारी-सुखाः सन्तु ते पन्थानः । (दीपं निर्वर्ण्य) अहो ज्वलत्यपि प्रदीपे कोऽयं प्रकाशापकर्षः ।

कस्तूरिकाक्तमृदुनिर्मलतूलवर्तिः
सैवास्ति पूर्णमपि तत्स्फटिकाच्छपात्रम् ।
स्नेहेन चन्दनभवेन तथापि मन्दं
मन्दं कथं प्रियतम ज्वलति प्रदीपः ॥१५॥

पृथ्वीराजः-प्रिये शृणु तत्र कारणम् । अद्य खलु प्रवृत्ते वसन्ते तत्सहायस्य दक्षिणानिलस्येदं विचेष्टितम् ।

मन्दानिलसंचार-
श्चालयतीमां नताङ्गि दीपशिखाम् ।
वात्सल्यपोषितामपि
गुरुसदनगतामनङ्ग इव वनिताम् ॥१६॥

इच्छिनीकुमारी-एवमेतत् । अथ कदार्यपुत्रस्य पूर्णचन्द्रावदातं मुखं पुनर्द्रक्ष्यामि ।

पृथ्वीराजः-पक्षावसानेन भविष्यति मे पुनरागमनम् । तद्राजकार्याणि निर्वहन्ती परिपालय तावदन्तरम् ।

निगृह्येति । ***वंशस्थवृत्तम् ।

कस्तूरिकेति । ***अत्रोग्रज्वलनरूपकार्यस्य कारणसत्त्वेऽप्यनुत्पद्यमानत्वाद्विशेषोक्तिरलङ्कारः । अत्र प्रदीप इव त्वमपि कथं मन्दानुरागः संवृत्त इति ध्वनिः । वसन्ततिलका च वृत्तम् ।

मन्दानिलेति । ***अत्रोपमाऽलङ्कारः ।

इच्छिनीकुमारी-तथा। अथ स्वापाकुला नोत्सहेऽहमत्र चिरमवस्थातुम्। तद्गच्छामि शयनगृहम्।

(इति निष्क्रान्ता)

पृथ्वीराजः-(स्वगतम्) गता देवी। अहमपि तावत्किंकर्तव्यतानिर्णयाय मन्त्रगृहमुपैमि।

(नेपथ्ये)

विदूषकः-अहो कथमेवं भूतोपसृष्ट इवायं पार्श्ववर्तिनमपि मां सततमुपेक्षते।

पृथ्वीराजः-(आकर्ण्य) अपि संनिहितो मे प्रियवयस्यः।

(प्रविश्य)

विदूषकः-(स्वगतम्) अये प्रकृतिमापन्न इव लक्ष्यते। (प्रकाशम्) भो वयस्य त्वामेवमुद्विग्नमानसं वीक्ष्य च्छिद्यते मे हृदयमर्म। अप्यनामयं ते भद्र।

पृथ्वीराजः-(निःश्वस्य) वयस्य प्रार्थितविषयानधिगमे कथं मेऽनामयम्।

विदूषकः-(विहस्य) अये मृगयाभिरतस्य ते विषयान्तराधिगमः पुनः क्लेशायैव।

पृथ्वीराजः-मूढ मृगलोचनापहृतं मे मनो न कुतोऽपि प्रसादमधिगच्छति।

विदूषकः-(स्वगतम्) स्थान एवास्य मृगयाप्रियस्याभिनिवेशः। (प्रकाशम्) भो वयस्य अथ मृगयाशीलस्य तवाप्यसुलभं मृगलोचनम्।

पृथ्वीराजः-(स्वगतम्) अहो कथमयं वेदाभ्यासजडो मयानुनेयः। तावत्कथयामि तं यथातथम्। (प्रकाशम्) मित्र अस्ति कनोजाधिपस्यानुपमलावण्यशालिनी कन्या संयोगिता नाम।

विदूषकः-आं ज्ञातमेव तवोपतापकारणम्। (सविस्मयम्) अहो भविता त्वमद्य षोडशसहस्रस्त्रीसमेतोऽपरो वासुदेवः।

पृथ्वीराजः-मित्र कथमप्येतत्स्त्रीरत्नं त्ववश्यं संपादनीयम्।

विदूषकः-अप्येषा प्रत्यक्षीकृता त्वया। अन्यथा कदाचिज्जाम्बवतीसदृश्यपि स्यात्ते नवसुंदरी।

विदूषक इति। तल्लक्षणमुक्तं दर्पणे-'कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेशभाषाद्यैः। हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात्स्वकर्मज्ञः॥'-इति। इत आरभ्य विदूषकनिष्क्रमणान्तो हास्यरसः प्रधानरसपोषकः।

पृथ्वीराजः-मिथ्यैवैष ते वितर्कः । तया त्वधरीकृता अमरविलासिन्यो लावण्यातिशयेनेति साक्षाद्वीरसिंहः कथयति ।

विदूषकः-तद्भवतु ते कार्यसिद्धिः ।

पृथ्वीराजः-प्रतिगृहीता विप्राशिषः ।

विदूषकः-परं चास्यां संलग्नो यदि मित्रं विस्मरिष्यसि तदा तु तव सर्वथा कार्यहानिरेवेति ब्रह्मवाक्यं सम्यगवधारय ।

पृथ्वीराजः-(सस्मितम्) अत्र विस्रब्धो भव ।

(प्रविश्य)

प्रतिहारी-उपस्थिता मन्त्रिणो देवस्यादेशं प्रतीक्षन्ते ।

पृथ्वीराजः-कार्यबाहुल्यादाकुलोऽहमामन्त्रये प्रियवयस्यम् ।

विदूषकः-सुगुप्ताः सन्तु ते मन्त्राः ।

पृथ्वीराजः-दण्डपाल मन्त्रगृहमार्गमादेशय ।

प्रतिहारी-इत इतो देवः ।

(उभौ परिक्रामतः)

एतन्मन्त्रगृहद्वारं प्रविशतु देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

पृथ्वीराजः-स्वागतं मन्त्रिवरेभ्यः ।

मन्त्रिणः-(उत्थाय) जियतां सार्वभौमः ।

(इति पृथ्वीराजमनूपविशन्ति)

पृथ्वीराजः-(सनिःश्वासम्) कवीश्वर कथमपि रक्षणीया मदनुरागविक्लवा संयोगिता ।

ज्ञेया वयस्य तरसा सुतनोः प्रवृति-
स्ताताधमेन कुपितेन विवासितायाः ।

ज्ञेया वयस्येति । ***अत्रौत्सुक्याख्यो व्यभिचारिभावः 'इष्टानवाप्तेरौत्सुक्यं कालक्षेपासहिष्णुता।' इत्युक्तत्वात् ।

युञ्जीत सा तु विवशा विरहासहिष्णु-
भग्नाशमात्मविलयाय मनः कदाचित् ॥१७॥
तच्चिन्त्यतां कोऽपि प्रियतमासमागमोपायः।

हरिसिंहः-सार्वभौम तरसैवाक्रमणीय एष निर्घृणारातिः।

अद्य प्रयातु गजवाजिरथाधिरूढ-
शस्त्रप्रहारपटुवीरभटोत्कटं ते।
सैन्यं प्रमत्तपरिपन्थिपराभवाय
सम्राड् यदिच्छसि कथं भुवि तद्दुरापम् ॥१८॥

कन्हः-राजसूयोत्सवसमेतै राजसैन्यैः संप्रति समेधितं प्रत्यर्थिसामर्थ्यम्। अतः

रिपुर्महान् कोशबलप्रदीप्तो
जातः किलायं सहसाऽप्रधृष्यः।
छलावरुद्धः स तु दुर्मदान्धो
वन्यः करीवाशु वशं प्रयायात् ॥१९॥

चन्दः-ममाप्येतदेव संमतम्। तदत्र दुःसाध्येऽर्थे सुसाध्यं प्रयोगं परिकल्पयामि। शृणोतु सार्वभौमः।

मित्रेष्वमित्रेष्वपि वाग्विलासाः
कवीश्वराः सन्ति सुखप्रचाराः।
आमोददानग्रहणप्रवृत्ताः
सर्वत्र चैतेऽनिलवद् व्रजन्ति ॥२०॥

तत्सार्वभौमप्रमुखाः सर्वेऽपि सामन्ता विशन्तु मे परिचारकगणम्। एवं प्रच्छन्नमुपसृत्य कनोजाधीश्वरमवधार्य च तस्य सामर्थ्यं यथोचितं विधास्यते।

आततायीवीरः-(साक्षेपम्) धन्योऽसि कवीश्वर यत्स्वामिनोऽपि स्वामित्वं संपादयितुमुपक्रमसे।

अद्य प्रयात्विति। ***अत्र वसन्ततिलकावृत्तम्।

मित्रेष्विति। *** वाचो विलासो येनामोदस्य गन्धस्य दाने ग्रहणे च प्रवृत्त इति श्लेषेणानिलपक्षेऽपि विशेषणानि संगच्छन्ते। अत्र श्लेषानुप्राणित उपमालङ्कारः।

कन्हः-आश्रयणीयोऽस्ति कवीश्वरप्रयोगः । एवमेवाप्रतिहतसंचरा वयं कनोजाधिपराजधानीं प्रवेष्टुं प्रभविष्यामः ।

पृथ्वीराजः-(सस्मितम्) मयाप्युररीक्रियते कविवरविभावितोऽयं नाट्यप्रयोगः। कविवर

नान्या गतिः प्रियतमामिलने यदि स्यात्
मित्रस्य तेऽनुचरतामुपयामि सद्यः ।
प्राणप्रियाहरणदीक्षितफाल्गुनेन
भिक्षुत्वमुत्सवधिया न विडम्बितं किम् ॥२१॥

तदद्यैव प्रयाणाभिमुखा भवन्तु मे प्रियसामन्ताः । समरसिंह हीनबलस्य यवनस्याक्रमणाद्राष्ट्रं रक्षितुं त्वमत्रैवावहितस्तिष्ठ ।

सामन्ताः-यथाज्ञापयति सार्वभौमः ।

(इति निष्क्रान्ताः)

पृथ्वीराजः-मित्र एहि । आवामपि प्रस्थानोद्यमं कुर्वहे ।

(इति निष्क्रान्तौ)

॥ समाप्तोऽयं **चारसंप्राप्ति**नामा तृतीयोऽङ्कः ॥

उररीक्रियत इति । अत्र कपटनामा नाट्यालङ्कारः । तदुक्तं दर्पणे-'कपटं मायया यत्र रूपमन्यद्विभाव्यते।' इति ।

नान्येति । ***वसन्ततिलकावृत्तम् । अत्र युक्त्याख्यो नाट्यालङ्कारः 'युक्तिरर्थावधारणम् ।' इत्युक्तेः।

इति श्रीसंयोगितास्वयंवरटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां
चारसंप्राप्तिनामा तृतीयोऽङ्कः समाप्तः ।

चतुर्थोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति राजसभामध्यवर्ती जयचन्दः चन्दकविश्च सपरिवारः)

वीणिकौ-(वीणावाद्येन गायतः)

(केदाररागेण त्रितालेन गीयते ।)

माधव यमुनातीरविहारी ॥
मृदुराधाऽधरमधुमधुमधुकर-
नटवर गिरिवरधारी ॥ माधव० ॥१॥
राधायौवनवनवनमाली ।
गोपीजनसुखकारी ॥ माधव० ॥२॥
सुमतिमयि जनय नय नयशाली ।
त्वमु जयपथमविकारी ॥ माधव० ॥३॥

चन्दः-(अपवार्य) अये जलधर दत्तावधानो भव। ग्राम्यं नेत्रचापल्यमुत्सृज्य त्वयाऽत्र विवृतकर्णेनैव भाव्यम् ।

जलधरः-यदाज्ञापयति भर्ता । (स्वगतम्) अहो मामधिकृत्यैवैषा गीतिः प्रगीयते। तत्संनिहितैवाभिमतार्थसिद्धिरिति तर्कये ।

जयचन्दः-कविवर, अनुगृहीता वयमत्रभवतां सान्निध्येन ।

चतुर्थोऽङ्क इति । अयमप्यङ्कावतारः पूर्वाङ्कान्ते पात्रैः सूचितत्वात् ।

केदाररागेणेति । तल्लक्षणमुक्तं लक्ष्यसंगीते-'**कल्याणीमेलके प्रोक्तः केदारो बहुसंमतः । शङ्कराभरणेऽप्यन्ये केचिदाहुर्विपश्चितः ॥ मद्वन्द्वमिह संप्रोक्तं गौणत्वं तीव्रमे यदि । अंशत्वं शुद्धमेऽभीष्टं व्यस्तत्वं चापि तत्स्वरे ॥ रिगोनत्वं रोहणे स्यात्पूर्वाङ्गे संमतं सताम् । असत्प्रायत्वमारोहे चावरोहे तु गस्य तत्॥ पूर्वाङ्गे रिगदौर्बल्यं यथोपरि निरूपितम् ॥ तथैव चोत्तमाङ्गेऽपि निधयोस्तत्सुनिश्चितम् ॥**' इति ।

माधवेति । ***अत्र यमुनातीरविहारीतिपदेन यमुनातटवर्तिदिल्लीनगराधिपः पृथ्वीराजः गोपीजनसुखकारीतिपदेन बहुवल्लभस्यापि तस्य दक्षिणनायकत्वं च सूच्यते। जयपथं नयेत्यनेन च त्वं जयचन्दं विजित्य संयोगितां नयेति सूच्यते। अत्र लाटानुप्रासः शब्दालङ्कारः। गेयपदं नाम च लास्याङ्गम् ।

जलधर इति । अत्र जलधरो जलधरच्छद्मना स्थितः पृथ्वीराजः ।

चन्दः-महाराज, स्वभाविकी खल्वेषा प्रवृत्तिः कविजनस्य। यतः

भक्ताः परेशं वनिताः पुमांसं
लतास्तरुं धूर्तजनास्तु लुब्धम्।
खगाश्च नीडं सरितः समुद्रं
व्रजन्ति तद्वत् कवयो नरेन्द्रम् ॥१॥

जयचन्दः-(सस्मितम्) तद्धूर्ताः कवयो यशोलुब्धं नृपमुपयन्तीति तात्पर्योपपत्तिः।

चन्दः-(सस्मितम्) महाराज पूर्वोक्ता भक्तादयस्तु स्वाश्रयं स्वार्थसिद्ध्यै व्रजन्ति परं च सरिद्वत् कविततिस्तु सर्वमपि स्वीयं मधुररसौघमुपहारीकर्तुमेवेति ममाभिप्रायः।

जयचन्दः-कविवर, प्रसन्नोऽस्मि भवतां वाग्विलासेन। मन्त्रिन् महार्हद्रव्यवस्त्रालङ्कारादिभिः कवीश्वरं सत्कृत्य तोषय।

सुमतिः-तथा।

(इति यथोक्तं वितरति)

चन्दः-वर्धतां महाराजः श्रिया यशसा च।

जयचन्दः-प्रतिगृहीतमाशीर्वचनम्। (विचिन्त्य) अपि च कवीश्वर कोऽयं युष्मन्मित्रस्य दुराग्रहो यदसौ धर्मकार्येष्वपि मेऽन्तरायो भवति।

चन्दः-महाराज कथमेत्संभवति धर्मसंस्थापनव्रतस्य दिल्लीश्वरस्य।

जयचन्दः-तत्कथमनेन नानुमतमस्मन्निमन्त्रणम्।

चन्दः-महाराज राजपुरोहितेन प्रधानमन्त्रिणा च निवारितेनाऽपि भवता कथमादृतो राजसूयोपक्रमः।

जयचन्दः-(अपवार्य ससंभ्रमम्) मन्त्रिन् आश्चर्यं कोऽयं मन्त्रभेदः।

सुमतिः-(अपवार्य) देव समाहितो भव।

जयचन्दः-(मनः समाधाय) स्वतन्त्रा हि नरपतयः। को वैतान् प्रवर्तयितुं निरोद्धुं वा प्रभवति।

भक्ता इति। अत्र मालोपमाऽलङ्कारः। उपजातिवृत्तम्।

चन्दः-महाराज धर्मतन्त्रा नृपाला इत्येव समञ्जसम् । यतः स्वच्छन्दविहारिणस्ते त्वचिरेणैव वियुज्यन्ते राज्यश्रिया ।

ऐश्वर्यमत्तो नहुषो निमिश्च
सुयोधनोऽनर्थपरश्च वेनः ।
एते तथाऽन्येऽपि च सार्वभौमा
विहाय धर्मस्थितिमेव नष्टाः ॥२॥

जयचन्दः-भवतु । परं च राजसूयं वितन्वद्भिरस्माभिः किमधर्मे प्रवृत्तम्।

चन्दः-सार्वभौमस्यैव विहिते राजसूये महाराजस्य प्रवृत्तिः कथं धर्माय ।

जयचन्दः-(सरोषम्) आः किमुच्यते । तर्हि कः पुनरधिकृतः पृथ्वीराजः।

चन्दः-प्रसीदतु महाराजः । संप्रति तु नास्त्यत्राधिकृतो दिल्लीश्वरोऽपि । परंतु

विततभुजबलोत्कटप्रतापः
प्रथितयशाः शरणार्थिनां शरण्यः ।
मखविधिपरमो भवेत्स सम्राड्
यदि विजहासि धरापते विरोधम् ॥३॥

जयचन्दः-कविवर कोऽयं मयि मिथ्याक्षेपः । स्वमित्रस्य च केयं मिथ्या प्रशस्तिः । अहो कथमेवं समबुद्धयो विद्वांसोऽपि मित्रपक्षपातिनो भवन्ति ।

चन्दः-महाराज एष तु लोकप्रत्ययः । परं च जानाति यथातथं महात्मनामन्तरात्मैव ।

सुमतिः-(अपवार्य) देव अत्रैव पुनः पृथ्वीराजोपस्थितिं शङ्कते मे हृदयम् । पश्य

ऐश्वर्यमत्त इति । अत्र निदर्शनाख्यं लक्षण् । तदुक्तं । तदुक्तं दर्पणे-'यत्रार्थानां प्रसिद्धानां क्रियते परिकीर्तनम् । परपक्षव्युदासार्थ तन्निदर्शनमुच्यते ॥' इति ।

वितत्तेति । ***अत्र सामान्यार्थस्य मखशब्दस्य मखविशेषरुपविवाहहोमरूपार्थप्रतिपादनेन 'शरणार्थिनां शरण्यः' इत्यनेन च संयोगितायाः शरणप्रदत्वेन भाविविरोधपरिहारद्वारा संयोगितोद्वाहरूपं प्रधानफलं सूच्यते । तत्पताकास्थानमिदम् । तदुक्तं दर्पणे-'द्व्यर्थो वचनविन्यासः सुश्लिष्टः काव्ययोजितः । प्रधानार्थान्तराक्षेपी पताकास्थानकं परम् ॥' इति । अतिशयोक्तिरलङ्कारः-'यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम्' इत्युक्तेः ।

तेजस्व्ययं नरपते समुपस्थितो वै
पृथ्वीपतिः स्वयमिहानुचरापदेशात् ।
आच्छादितो जलधरैरपि किं विवस्वान्
नाविष्करोति निजमप्रतिमं प्रकाशम् ॥४॥

जयचन्दः-(अपवार्य) सत्यं जलधरवेषधरेणैव पृथ्वीराजेन भवितव्यम् । यतः

आजानुलम्बिदृढमांसलबाहुशाली
संतप्तदीप्तनयनोऽपि मनोऽभिरामः ।
एवं स्वमित्रपरिचारकतां गतोऽपि
स्वाभाविकीं न स पुनः प्रभुतां जहाति ॥५॥

सुमतिः-(अपवार्य) अद्यैवैनं निग्रहीतुमर्हति महाराजः ।

जयचन्दः-(विचार्यापवार्य च) मन्त्रिन् यद्यन्यथा निष्पद्येत तदानीं तु स्यान्मे दारुणो जनापवादः ।

पृथ्वीपतिप्रबलसाहसविक्रमौजः-
संत्रस्त एष नृपतिर्ननु वीतधैर्यः ।
यत्संभ्रमेण कुरुतेऽत्र विवेकशून्य-
स्तन्मन्त्रिणोऽप्यनुचरे स तु राजबुद्धिम् ॥६॥ इति ।

सुमतिः-(अपवार्य) तदानीयतां राजसभायां कर्णाटकी संदिग्धार्थनिर्णयाय।

जयचन्दः-(अपवार्य) आं साधु स्मारितम् । (प्रकाशम्) कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

प्रतिहारी-आज्ञापयतु देवः ।

जयचन्दः-कर्णाटकीं द्रष्टुमिच्छामि ।

तेजस्वीति । ***अत्र दृष्टान्तालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

आजान्विति । *** अत्र विरोधाभासोऽलङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

पृथ्वीपतीति । पृथ्वीपतेः पृथ्वीराजस्य प्रबलं यत्साहसं विक्रम ओजश्च तैः संत्रस्तो भीत एष नृपतिर्वीतं नष्टं धैर्यं यस्य स वीतधैर्यो ननु निश्चयेन वर्तत इति शेषः । यद्यस्मात्स संभ्रमेण स विवेकशून्यः सन्नत्र तन्मन्त्रिणश्चन्दस्यानुचरे राजबुद्धिं कुरुते । अत्र वसन्ततिलकावृत्तम् ।

प्रतिहारी-यद्देव आज्ञापयति ।

(इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति पृथ्वीराजं दृष्ट्वा मुखमावृत्य
चन्दकवेस्तु लब्धसंकेता तदपावृण्वती कर्णाटकी)

जयचन्दः-(स्वगतम्) अहो आश्चर्यम् ।

प्रागावृतं तु वसनेन मुखं क्षणेन
कर्णाटकी किमिति तद्विवृतं करोति ।

अथवा

चापल्यमेव सहजं कुलयोषितां चेद्
व्यक्तं तदा किमुत वारविलासिनीनाम् ॥७॥

चन्दः-(स्वगतम्)

व्यामोहयन्ती ललिताङ्गविभ्रमै-
र्वराङ्गना कामकलाविधिज्ञा ।
कादम्बिनीमध्यगता स्फुरन्ती
संचारिणीयं चपलेव राजते ॥८॥

कर्णाटकी-जयतु देवः ।

जयचन्दः-अयि कर्णाटकि किं त्वयाऽञ्जसाऽपसारितं ते मुखावरणम् ।

कर्णाटकी-(सस्मितम्) देव न खलु मया तद् ह्रिया समावृतम् । किंतु

मित्रं विलोक्य पुरतो मम पूर्वभर्तु-
स्तस्यादरात्सपदि संवृतमाननं मे ।
एकः पुमान् स पृथिवीपतिरेव यस्माद्
रात्रिर्यथा दिनकरात्समुपैमि लज्जाम् ॥९॥

प्रागावृत्तमिति । ***अत्रार्थापत्तिरलङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

व्यामोहयन्तीति । ***अत्रोपमाऽलङ्कारः । उपजातिर्वृत्तम् ।

मित्रमिति । ***वसन्ततिलकावृत्तम् । अत्र च्छलाख्यं वीथ्यङ्गम् । तदुक्तं दर्पणे-'अन्ये त्वाहुश्छलं कंचित् कार्यमुद्दिश्य कस्यचित् । उदीयंते यद्वचनं वञ्चनाहास्यरोषकृत् । वाक्केलिर्हास्यसंबन्धो द्वित्रिप्रत्युक्तितो भवेत् ॥' इति ।

चन्दः-(स्वगतम्) अहो रक्षिता वयमस्या वारविलासिन्याश्चातुर्योत्कर्षेण।

पृथ्वीराजः-(स्वगतम्) अयि धन्या ते राजभक्तिः ।

जयचन्दः-(स्वगतम्) कथमस्यामपि न विश्वसिति मे मनः । (प्रकाशम्) अयि कर्णाटकि अथ प्रकृतिमापन्ना संयोगिता ।

पृथ्वीराजः-(स्वगतम्) अहो ममैव मनोगतमनुयुङ्क्ते ।

कर्णाटकी-महाराज निगृहीतोऽस्या वेदनाप्रकर्षः शिशिरैरुपचारैः । व्याधिप्रशमनाय त्वपेक्षितः कश्चिन्निपुणो राजवैद्यः ।

पृथ्वीराजः-(सनिःश्वासं स्वगतम्) हा, प्रिये ननु ममापराधेनैव त्वयानुभूयत एषा दुरवस्था ।

जयचन्दः-मन्त्रिन् नियोज्यः कोऽपि रसवैद्यः संयोगितायाश्चिकित्सार्थम्।

सुमतिः-नास्त्यत्र प्रतीकारान्तरम् ।

चन्दः-(स्वगतम्) संप्रति नातिदूरं वर्तते राजकन्यायाश्चिकित्सकः ।

जयचन्दः-अयि कर्णाटकि त्वं तावदुपचर यथोपतापं संयोगिताम् ।

कर्णाटकी-यद्देव आज्ञापयति ।

(इति निष्क्रान्ता)

जयचन्दः-कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

प्रतिहारी-आज्ञापयतु देवः ।

जयचन्दः-प्रापयैनं कविकुलनायकं स्वनिवेशम् ।

प्रतिहारी-इत इत आर्यः। (इति जयचन्दमाशीर्भिरभिनन्द्योत्थाय सपरिवारश्चन्दः प्रतिहारी च परिक्रामतः)

प्रतिहारी-एतद्भवतो निवेशस्थानम् । प्रविशत्वार्यः ।

(इति निष्क्रान्तः)

राजवैद्य इति । वैद्यानां राजा राजा चासौ वैद्यश्चेति वा । अत्राभूताहरणाख्यं संध्यङ्कम्-'तत्र व्याजाश्रयं वाक्यमभूताहरणं मतम्' इत्युक्तेः । 'अपेक्षितो राजवैद्यः'-इत्यनेन भाविपृथ्वीराजसमागमस्य सूचितत्वादिदं पताकास्थानम् ।

रसवैद्य इति । रसेन पारदेन वैद्यश्चिकित्सकः रसः शृङ्गारस्तस्य वैद्यो वा ।

(सपरिवारं प्रविश्य)

चन्दः-प्रेम्णादृता वयं जयचन्देन। परं च सार्वभौमसान्निध्यमाशङ्कत एवास्य हृदयम् ।

कन्हः-कवीश्वर एवं जाताशङ्कः स उपरोत्स्यत्यस्मन्निवेशम्। तदत्र प्रागेव प्रतीकारोऽध्यवसेयः ।

चन्दः-अस्ति ममाप्येतदेवाभिप्रेतम् ।

कन्हः-तद्राजभक्त्युज्जृम्भितविक्रमशालिनः संजयरायात्मजस्य लङ्गडीरायस्यास्तु सेनाधिपत्यम् ।

लङ्गडीरायः-शिरसि क्रियते पितृव्यचरणादेशः । कवीश्वर उत्पत्स्यमाने तूपप्लवेऽहमेव नेष्यामि सैनिकनिवहम् ।

पर्याप्त एव रिपुसैन्यविमर्दनार्थ-
मेकोप्यहं किमुत वीरभटानुक्लृप्तः ।
खड्गप्रहारपरिलुप्तमदा द्विषो मे
ताक्ष्यार्दिवोरगगणा भयविद्रुताः स्युः ॥१०॥

चन्दः-युक्तमेवैतत्क्षत्रप्रवीरस्य राजभक्तस्य ।

कन्हः-तदेहि पर्यटावो युद्धानुगुणप्रदेशप्रकल्पनाय ।

लङ्गडीरायः-तथा । (इति निष्क्रान्तौ)

(नेपथ्ये किङ्किणीक्वणनम्)

पृथ्वीराजः-(आकर्ण्य स्वगतम्) अहो
श्रोत्राभिरामो विपिनेऽपि कोऽयं
विलासिनीनूपुरशिञ्जितस्वनः ।
मन्ये कदाचित्प्रियया प्रवृत्तिं
ज्ञातुं ममैवं प्रहितः सखीजनः ॥११॥

चन्दः-(आकर्ण्य दूरं विलोक्य) अहो आश्चर्यम् ।

पर्याप्त इति । ***वसन्ततिलकावृत्तम् ।

पुष्पितां कमलिनीं प्रकम्पनः
संनिपत्य सरसो विचाल्य किम् ।
प्रेरयत्यभि विविक्तकाननं
कामुको गुरुकुलादिवाङ्गनाः ॥१२॥

पृथ्वीराजः-(निपुणं निरीक्ष्य) आर्य एताः कर्णाटकीपुरःसरा ललना इत एवाभिवर्तन्ते ।

चन्दः-मङ्गलसूचकं हि कन्यकाजनदर्शनम् ।

पृथ्वीराजः-किं नु खलु स्यादेतासामागमनप्रयोजनम् ।

चन्दः-प्रकृतिरसिकानां नवयुवतीनां काव्यरसपिपासामन्तरेण किमन्यत्प्रयोजनं संभाव्यते । अहो

यल्लोकपाला विजितेन्द्रसंपदः
स्वरूपलावण्यगुणा मृगाक्ष्यः ।
वीरा भटा भक्तजनश्च सेवते
धन्यं हि तन्मानधनं कवित्वम् ॥१३॥

पृथ्वीराजः-(स्वगतम्) सर्वोऽप्यात्मानमेव बहु मन्यते ।

(प्रविश्य)

द्वारपालः-आर्यं संभावयितुं संप्राप्तो नवयुवतिगणो द्वारि तिष्ठति ।

चन्दः-तावदविलम्बेन प्रवेशय ।

द्वारपालः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

सख्यः-जयतु जयत्वार्यः । (इति पुष्पाणि विकीर्य फलान्युपहरन्ति)

चन्दः-अपि कुशलं राजमातुस्तत्कन्यकायाश्च ।

कर्णाटकी-अथ किम् । परं चैकस्या राजप्रासादेऽपरायास्तूपवनभवने ।

पुष्पितामिति । ***पुष्पितां 'तदस्य संजातमिति तारकादिभ्य इतच्' इति सूत्रेणेतच् प्रत्ययः। ***अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । रथोद्धतावृत्तम् । अत्र संयोगिताया गुरुकुलात् हरणरूपप्रधानार्थसूचनेन पताकास्थानमिदम् ।

चन्दः-अये किमुच्यते ।

कर्णाटकी-कवीश्वर पित्रा विवासिता निवसति संप्रति राजकन्या गङ्गातीरोपवनप्रासादे । अस्याश्च संदेशहरोऽयं सखीजनो वाग्देवतावतारं कविकुलेश्वरमत्रभवन्तं स्वागतेनाभिनन्दितुं संप्राप्तः ।

चन्दः-तेनातीव खलूपकृतोऽस्मि । अथ श्रावयतु राजपुत्र्याः संदेशं सखीजनः।

कर्णाटकी-कवीश्वर अस्त्येतन्मे प्रियसख्या विज्ञापनम् । यत्

समायान्तं श्रुत्वा कविवरमधीशप्रणयिनं
भवन्तं साष्टाङ्गं प्रणमति महाराजतनया ।
महेशे मित्रे वा भवति नतिभाजां तनुभृतां
यतो मुक्तिर्बन्धादभिमतवरस्याप्यधिगमः ॥१४॥

पृथ्वीराजः-(स्वगतम्) अहो मामेवाधिकृत्यायं पदप्रयोगः । प्रिये समुपस्थिता ते मुक्तिः ।

चन्दः-भवतु राजकन्यायाः प्रार्थितवरसिद्धिरित्याशास्महे ।

सख्यः-अनुगृहीताः स्मोऽत्रभवतामाशीर्वचनेन ।

पृथ्वीराजः-(अपवार्य) आर्य एषाऽस्ति पूर्वपरिचिता कर्णाटकी ।

(इति कर्णाटकीमभिमुखीकृत्य निशीथान्तं मदागमनं परिपालयेति नेत्रसंकेतेन सूचयति।)

चन्दः-(अपवार्य) अथ किम् । इदानीं खल्वेषा परमविस्रम्भमाजनं कनोजाधिपस्य ।

सख्यः-परिणतो दिवसः । तदर्हति गमनायानुज्ञां दातुं कवीश्वरः ।

चन्दः-सुखाः सन्तु पन्थानः ।

(इति निष्क्रान्तः सखीजनः)

समायान्तमिति । ***श्लेषालङ्कारः । शिखरिणीवृत्तम् । त्वां प्रणताया मम मुक्तिप्रदो भवेति ध्वनिः । अत्रोपपत्त्याख्यो नाटकालङ्कारः-'उपपत्तिर्मता हेतोरुपन्यासोऽर्थसिद्धये ।' इत्युक्तत्वात् ।

परिणत इति । अत्र कनोजाधिपस्य परिणतो दिवस इति संबन्धयोजनया कनोजाधिपस्य भाविपराभवसूचनात् पताकास्थानमिदम्।

पृथ्वीराजः-मित्र ज्ञातमेव प्रत्यर्थिसामर्थ्यम् । अतोऽकारणद्वेषपरस्य तस्य शासनार्थं प्रकटीभवितुमिच्छामि ।

चन्दः-सार्वभौम साहसप्रतिपत्त्या तु भविष्यत्यत्र कार्योपघातः ।

पृथ्वीराजः-अभिनन्दितं मित्रवचनम् ।

(स्वगतम्)

किमिति धावति विह्वलतां गतं
प्रणयसूत्रनिबद्धमिदं मनः ।
प्रियतमाप्रणिपातपुरःसरं
भवतु पूर्वमिहाशु विमुक्तिभाक् ॥१५॥

(प्रकाशम्) तावदश्वमारुह्य भागीरथीतीरे प्रियामन्विष्यामि । (इति द्वारदेशं गत्वाऽश्वमारुह्य) वीर भागीरथीमार्गमादेशय ।

वीरसिंहः-इत इतो देवः ।

(उभौ परिक्रामतः)

देव एषा लोकत्रयपावनी पुण्यजला भागीरथी ।

पृथ्वीराजः-वीर मद्वचनादुच्यतां प्रियवयस्यो यन्नृशंसारातिहस्तगतेन त्वया सावधानेन भवितव्यमिति ।

वीरसिंहः-यद्देव आज्ञापयति ।

(इति निष्क्रान्तः)

पृथ्वीराजः-(प्रणम्य) भगवति भागीरथि प्रसिद्धमेव ते लोकोत्तरं पावनत्वम्। यतः

कल्लोलवीचिरमणीयजलप्रवाहे
मज्जन्ति ये सुकृतिनः किल मुक्तिभाजः ।
(सनिःश्वासम्) तथापि
बाल्यात्तवैव चरणौ शरणं प्रपन्ना
हा मे कथं प्रियतमा समवाप बन्धम् ॥१६॥

किमिति धावतीति । ***अत्रोद्यमाख्यो नाट्यालङ्कारः-'कार्यस्यारम्भ उद्यमः' इत्युक्तेः । द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ।

प्रियामन्विष्यामीति । अत्र परिसर्पाख्यं संध्यङ्गम्-'इष्टनष्टानुसरणं परिसर्पश्च कथ्यते' इत्युक्तेः ।

मातः नोचितं तवैतावन्नैष्ठुर्यम्। कृतागस्यप्यपत्ये स्निह्यत्येव जननी। तथा च बाल्यात्प्रभृति त्वयैव संपादितमस्या मातृकृत्यम्। अतः

सन्त्येव तेऽच्छपयसा परिपोषितायां
तस्यां गतं विमलता रसविभ्रमाश्च।
माधुर्यशैत्यमिति किं न तु कामचारो
मातुर्गुणा हि तनयाऽनुगता भवन्ति ॥१७॥

अहो एवं निरुद्धसंचारा सा प्रकृतिसुकुमारा कदाचिदपहतधैर्याऽनिष्टमप्याचरेत्। हा अम्ब

भस्मीकृता ये कपिलेन कोपात्
समुद्धृतास्ते सगरात्मजास्त्वया।
दग्धां प्रियां मे स्वगुरोरमर्षात्
कर्तुं प्रवृत्तासि कथं नु भस्मसात् ॥१८॥

(परिक्रम्य) अहो कथमद्यापि नैवोपयाति दृष्टिपथं प्रियतमापदाङ्कितोपवनसरणिः। (दीर्घं निःश्वस्य) हा संप्रति

ललितविभवैर्बाल्ये बाला तु यैरुपलालिता
गुरुभिरथ तैर्नैष्ठुर्येण स्वयं परितापिता।
हिमकरहता शुष्यन्ती सा वने नवमल्लिका
हृदयरमणी क्वाऽन्वेष्टव्या प्रिया चिरदुःखिता ॥१९॥

(दूरं विलोक्य) किमेतद्दीपप्रभामण्डितं राजमन्दिरमिव पुरतो दृश्यते। यावत्तत्रैव गच्छामि।

(इति निष्क्रान्तः)

॥ समाप्तोऽयं **प्रच्छन्नसंचार**नामा चतुर्थोऽङ्कः ॥

सन्त्येवेति। बाल्य एव संयोगिताया मातुरवसानात्ते तवाच्छेन निर्मलेन पयसा जलेन स्तन्येन वा परिपोषितायां तस्यां *** सर्वे त्वदाश्रया गुणाः सन्ति। तुकामचारः किं कथं नास्ति। ***वसन्ततिलकावृत्तम्।

भस्मीकृता इति। ***उपजातिवृत्तम्।

ललितविभवैरिति। ***हरिणीवृत्तम्।

इति श्रीसंयोगितास्वयंवरटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां प्रच्छन्नसंचारनामा चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः।

पञ्चमोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशत्युपर्यलिन्दमारूढा सखीद्वितीया संयोगिता)

कर्णाटकी-अयि तावत्तन्त्रीवादनेन विनोदयात्मानम् ।

संयोगिता-सखि देहि मे विरहसहायां वल्लकीम् ।

कर्णाटकी-तथा ।

(इति वीणामर्पयति)

संयोगिता-(वीणामादाय गायति)

(गौण्डमल्लाररागेण त्रितालेन गीयते)

क्व नु मम विहरसि मानसहंस ॥
घन इव सततं वर्षति नयनम् ।
स्फुटयति तडिदिव रतिरिह हृदयम् ॥ क्व नु० ॥१॥
तिरयति तिमिरं तव पन्थानम् ।
अयि कुरु मरुतं प्रिय तव यानम् ॥ क्व नु० ॥२॥
विरहविलुलितां परमाकुलिताम् ।
प्रियमुखनिरतामव तव दयिताम् ॥ क्व नु० ॥३॥

हा नाथ क्वासि-

(इति मूर्च्छति)

कर्णाटकी-सखि समाश्वसिहि समाश्वसिहि । अयि पश्यैतास्तव गीतप्रकर्षोद्भवाः कालिन्दीनिभा मेघततय इत एवाभिवर्तन्ते ।

पञ्चमोऽङ्क इति । अयमप्यङ्कावतारः ।

गौण्डमल्लारेति । तल्लक्षणं लक्ष्यसंगीते-'**खंमाजीमेलके ख्यातो गौण्डमल्लारनामकः ॥ संपूर्णोऽयं मध्यमांशो गीयते लक्ष्यवर्त्मनि । आरोहणे निदुर्बलो वर्षासु सुखदायकः ॥ गन्योरत्र परित्यागाच्छुद्धमल्लारसंभवः। मध्यमादृषभे पातो विशिष्टां रक्तिमावहेत् ॥**' इति ।

क्व न्विति । वर्षागमे राजहंसा मानसमाश्रयन्त इति प्रसिद्धिः । इत आरभ्य विप्रलम्भशृङ्गारो रसः।

गीतप्रकर्षेति । मल्लाररागप्रभावेणाकालेऽपि मेघो वर्षतीति लोकवादः ।

संयोगिता-(संज्ञां लब्ध्वा) अहो कालिन्दीशब्देन खलु वञ्चिताहम् । यतः

तरङ्गभङ्ग्याकुलमानसाया
न मे प्रिया जह्नुसुतातरङ्गाः ।
कलिन्दनन्दिन्यवगाहनन्दो
मथ्नात्यजस्रं विकलं मनो मे ॥१॥

कर्णाटकी-(सस्मितम्) अभिलङ्घति भागीरथीतटमिदानीं तु तव मन्मथः।

संयोगिता-(सभ्रूभङ्गम्) किमेवं मां परिहससि मिथ्याप्रलापैः ।

कर्णाटकी-अयि नायं परिहासः किंतु परमार्थः ।

संयोगिता-यद्येवं तर्हि कथय कुतस्तवेयमुपलब्धिः ।

कर्णाटकी-कवीश्वराभिनन्दनमिषेण तन्निवेशमुपगतायाः सूचितं मेऽधीश्वरेण निशीथान्ते मदुपागमनं भविष्यतीति ।

संयोगिता-(स्वगतम्) हृदय संप्रति नातिदूरं वर्तते ते प्रार्थनाविषयः । (प्रकाशम्) सखि पश्यैनं वियन्मध्यवर्तिनं भगवन्तं कुमुदिनीनायकम् ।

कर्णाटकी-अहो निशीथकल्पा हि रजनी । तदत्रैवाधीश्वरस्यागमनं परिपालयावः ।

संयोगिता-(स्वगतम्) कथमद्यापि न श्रद्दधाति विरहकातरं मे हृदयम् । (प्रकाशम्) अपि त्वया सुगृहीतः संकेतः ।

कर्णाटकी-सखि नास्त्यत्र शंकावसरः । यदसौ

अनुचरपदमप्युपेत्य सम्राड्
निवसति भीरु तवेह संगमोत्कः ।

तरङ्गेति । तरङ्गाणां मनसः सरितश्च भङ्ग्या मालयाकुलं मानसं यस्यास्तस्या मे मम जह्नुसुताया गङ्गायास्तरङ्गाः प्रिया न सन्तीत्यर्थः । कलिन्दस्य तदाख्यस्य गिरेर्नन्दिनी कन्या यमुना तस्यामवगाहेन नन्दति स पृथ्वीराजोऽजस्रं सततं मे विकलं मनो मथ्नाति । उपजातिवृत्तम् ।

तव मन्मथ इति । अत्र नर्माख्यं संध्यङ्गम्-'परिहासवचो नर्म' इत्युक्तेः ।

अनुचरेति । हे भी रु तव संगमोत्कः सम्राडनुचरणपदमप्युपेत्येह निवसति । स च त्वां तमस्विनीं तमोगुणाभिभूतां रात्रीं वा हिमकरवत् चन्द्रवत् निजैः करैः किरणै रुचिरां द्योतमानां पक्षे निजकरेण स्वहस्तेन यत्तव पाणिग्रहणं तेन रुचिरां विराजमानां निजकररुचिरामत एव प्रसन्नां करिष्यति । पुष्पिताग्रावृत्तम् ।

निजकररुचिरां करिष्यति त्वां
हिमकरवच्च तमस्विनीं प्रसन्नाम् ॥२॥

संयोगिता-(सनिःश्वासम्) अयि अतीतः खलु संकेतकालः ।

कर्णाटकी-सखि अपरिचितप्रदेशसंक्रमणे तु भवत्येव संकेतव्यत्ययः ।

संयोगिता-(सावेगम्) आवां तावत्प्रतिष्ठावहे तमन्वेष्टुम् । यतः

प्रियतममुपलभ्य संनिकृष्टं
न हि हृदयं सखि विन्दते धृतिं मे ।
मृगसलिलनितान्तपीडितः किं
त्वरितमुपैति समीक्ष्य नोदपानम् ॥३॥

कर्णाटकी-अयि क्षणं तावद्धैर्यावष्टम्भं कुरु । यावत् सकलसंशयोच्छेदि भवेत्तव प्रियसंनिधानम् ।

संयोगिता-एवं परिणतपरितापास्तु बहवो मे व्यतीताः क्षणाः । तदधुना

व्याहारे ते दूतिकायाश्च सूक्तौ
स्निग्धे तस्मिंश्चाटुवादे प्रियस्य ।
सद्यो हित्वाप्यालि विश्वासयोगं
निष्ठाशून्यं भ्राम्यतीदं मनो मे ॥४॥

अयि पश्यैष दिल्लीश्वरोऽपि

संप्राप्याहं कथमपि रहः सान्त्वयिष्ये प्रिये त्वा-
मित्येवं मां वचननिपुणः किं प्रतिश्रुत्य कान्तः ।
नैवायातो गमयति न वा किं स्वकीयां प्रवृत्ति-
माशाबन्धप्रधृतहृदयं हाऽवलम्बं जहाति ॥५॥ (इति मूर्च्छति)

अयि अतीत इति । अत्र विमर्शसंध्यारम्भः । तदुक्तं दर्पणे-'यत्र मुख्यफलोपाय उद्भिन्नो गर्भतोऽधिकः। शापाद्यैः सान्तरायश्च स विमर्श इति स्मृतः ॥' इति ।

प्रियतममिति । ***अत्रौत्सुक्याख्यो व्यभिचारिभावः । पुष्पिताग्रावृत्तम् ।

व्याहार इति । *** शालिनीवृत्तम् ।

संप्राप्येति । ***आशाबन्धेन प्रधृतं हृदयमवलम्बं जहाति धैर्यं मुञ्चतीत्यर्थः । अत्र विरहोत्कण्ठितानायिका । तदुक्तं दर्पणे-'आगन्तुं कृतचित्तोऽपि दैवान्नायाति यत्प्रियः । तदनागमदुःखार्ता विरहोत्कण्ठिता तु सा ॥' इति । मन्दाक्रान्तावृत्तम् ।

कर्णाटकी-सखि समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

संयोगिता-(संज्ञां लब्ध्वा) अयि

यश्चेतनां जडयति श्लथयत्यथाङ्गं

दृष्टिं करोति सहसा तमसाऽभिभूताम् ।

मथ्नाति यश्च विरहव्यथितं मनो मे

कोऽयं पुनः समुदितः प्रबलो विकारः ॥६॥

कर्णाटकी-(स्वगतम्) अहो कष्टां दशां प्रापितेयं मदनहतकेन । (प्रकाशम्) प्रियसखि त्वं तावत्क्षणं शय्यामारुह्य विनोदय प्रजागरविक्लवमात्मानम् ।

संयोगिता-सखि न मे उन्निद्रायाः कुसुमशय्यापि संतापं शमयति । यावत्प्रासादपृष्ठे कौमुद्यामात्मानं विनोदयामि । (इति सख्या सहारोहति)

(आरुह्य वातस्पर्शमभिनीय) अहो दक्षिणानिल त्वमेक एव सर्वत्र सुलभसंचारः। तन्मन्दभाग्याया शृणु मेऽभ्यर्थनाम् ।

मन्दस्त्वं बहुवल्लभोऽप्यविरतं दूरादुपेत्य प्रियाः

स्नेहान्नन्दयसीत्थमामुकुलिता एकान्तभोगी लताः ।

अद्य त्वं कुरु बन्धुकृत्यमिति मे प्राणेश्वरं संदिशन्

नाथे त्वय्यपि सीदति प्रणयिनी तत्किं तवात्रोचितम् ॥७॥

कर्णाटकी-(स्वगतम्) नितान्तमाक्रान्तेयं कुसुमसायकेनातश्च्छन्दानुरोधेनैवात्र प्रतिपत्तिरुचिता । (प्रकाशम्) अयि सकृत्प्रार्थितोऽपि जात एव ते संदेशहरोऽयं दक्षिणानिलः ।

संयोगिता-अत एवापादितोऽयं स्वसहायतां तत्सौजन्यतुष्टेन वसन्तसखेन।

कर्णाटकी-अथ किम् ।

संयोगिता-(निःश्वस्य) अपि तातापकृत्यादसौ विनिवृत्तो भवेत् । (ऊर्ध्वं

यश्चेतनामिति । ***वसन्ततिलकावृत्तम् ।

मन्दस्त्वमिति । ***अत्रोन्मादाख्या सप्तमी कामदशा । तदुक्तं दर्पणे- 'उन्मादश्चापरिच्छेदश्चेतनाचेतनेष्वपि । अलक्ष्यवाक्प्रलापः स्याच्चेतसो भ्रमणाद् भृशम् ॥' इति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

अपि तातापकृत्यादिति । अत्र शङ्काख्यं संध्यङ्गम् - 'परक्रौर्यात्मदोषाद्यैः शङ्काऽनर्थस्य तर्कणम् ।' इति ।

विलोक्य) अयि रजनीरमण

रे मां कथं व्यथयसि क्षपिताङ्गयष्टिं
ज्योत्स्नान्तरे कुमुदिनीश कुरु प्रलीनाम् ।
प्रासादपृष्ठमपि भाग्यवशाच्चरन्ती
प्राणेश्वरप्रणयपात्रमतो भवेयम् ॥८॥

कर्णाटकी-प्रियसखि न युक्तं मिथ्यातर्केणैवमात्मानमवसादयितुम् । यतः

त्वामात्मनः प्रियतमामपहाय सम्राड्
देशान्तरप्रवसनाभिरुचिः कथं स्यात् ।
त्यक्ता श्रुता किमयि वारिधरेण पूर्वं
विद्युल्लता निजरसाश्रयिणी कदाचित् ॥९॥

संयोगिता-न मा समादधति ते मधुरोक्तयः । तच्छ्रुणु मे चरमामभ्यर्थनाम्।

कथमपि बलादेवंप्रायं धृतं हतजीवितं
सखि परमतो जाने नाहं भविष्यति तस्य किम् ।
विरहविकलं यावद्देहं न मुञ्चति मारुतो
हृदयरमणं स्निग्धे तावत्तमानय मेऽन्तिकम् ॥१०॥

(नेपथ्येऽश्वखुरसंचारध्वनिः)

(आकर्ण्य ससंभ्रमम्) अयि पुरस्तादश्वखुरसंचार इवोपश्रूयते । यावदवलोकयावः।

(इति मन्दं परिक्रामतः)

(ततः प्रविशत्यश्वारूढः पृथ्वीराजः)

पृथ्वीराजः-(पुरतो विलोक्य स्वगतम्) अहो एष तु राजकुलावासयोग्यः प्रासादः । (अश्वादवतीर्य परिक्रम्य च) श्रुतं हि मया चारमुखेन यदत्रकुत्रचिदवरुद्धा

रे मां कथमिति । ***त्वं मां ज्योत्स्नान्तरे कौमुदीमध्ये प्रलीनां कुरु । अतो भाग्यवशात् प्रासादपृष्ठं ज्योत्स्नारूपेण चरन्ती प्राणेश्वरस्य पृथ्वीराजस्य प्रणयपात्रं भवेयम् । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

त्वामात्मन इति । ***अत्रापि जलधरच्छद्मा पृथ्वीराजो विद्युल्लतारूपां निजो रसः प्रेम तदाश्रयिणीं त्वां त्यक्त्वा देशान्तरं न हि गच्छेदिति श्लेषेण सूच्यते । अत्र दृष्टान्तालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

कथमपीति । ***हरिणीवृत्तम् ।

तिष्ठति मे प्राणेश्वरी । कदाचिदत्रैव सोपलभ्येत । (पुनः परिक्रम्य) अहो समन्ततः पिहितान्येव द्वाराणि । गाढनिद्राक्रान्तश्च लक्ष्यते रक्षकगणः ।

संयोगिता-(वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा स्वगतम्) अहो सर्वथा परिद्यूनेऽपि मनसि कोऽयमकाण्ड एवोत्सवः ।

पृथ्वीराजः-(ऊर्ध्वं विलोक्य) अहो निशीथेऽपि केयमुपरिस्थिता दृश्यते ।

किं स्यादेषा हिमकरकला चञ्चलत्वं कुतोऽस्या
विद्युल्लेखा वियति विमले नाऽपि संभाव्यते वै ।
मन्ये त्वेवं मनसिजरुजा तप्तगात्री प्रिया मे
प्रासादेऽस्मिन्विरहविकला संचरत्येव तन्वी ॥११॥

संयोगिता-(अधो विलोक्य परिवृत्य च) इत इतः प्रियसखि ।

पृथ्वीराजः-(साश्चर्यम्) अहो न्वियमेकपदे

प्रसादयन्ती नयने कृशाङ्गी
क्व विच्युता लोचनकौमुदी मे ।

(सहर्षम्)

दिष्ट्या पुनर्हन्त समागतेयं
सखिद्वितीयोपरि विस्फुरन्ती ॥१२॥

कर्णाटकी-अयि त्वत्पदानुगाऽत्रैवाभिवृत्तास्मि । (अधो विलोक्य) एष तु साक्षाद् देव एव ।

संयोगिता-हन्त भो उज्जीविता ते सहचरी ।

कर्णाटकी-सखि तिष्ठ । यावत्तमधीश्वरमानयामि ।

(इति सोपानमार्गमवतरति)

पृथ्वीराजः-अये कथं कर्णाटकी । सा त्वित एवाभिवर्तते ।

संयोगिता-(स्वगतम्) अहो मम पुनः

किं स्यादिति । ***अत्र निश्चयालङ्कारः । मन्दाक्रान्तावृत्तम् । इत आरभ्य संभोगशृङ्गारः । तदक्तं दर्पणे-‘दर्शनस्पर्शनादीनि निषेवेते विलासिनौ । यत्रानुरक्तावन्योऽन्यं संभोगोऽयमुदाहृतः ।’ इति ।

प्रसादयन्तीति । ***उपजातिवृत्तम् ।

सकृत्प्रियस्यैवमकाण्डदर्शनं
निर्वापयत्यात्ययिकीं मनोरुजम् ।
मन्ये नितान्तं भुवि सैव धन्या
स्वप्नेऽपि यस्या न हि विप्रलम्भः ॥१३॥

कर्णाटकी-(प्रासादपृष्ठतोऽवतीर्य शनैश्च द्वारमपावृत्य) देव तूष्णीं मामनुसर ।

(इति सोपानमारोहयति)

कर्णाटकी-(आरुह्य) अधीश्वर एषा मे प्रियसखी भवन्तमेव प्रतिपालयन्ती तिष्ठति ।

संयोगिता-(ससंभ्रमलज्जम्) स्वागतं दिल्लीश्वरस्य ।

(इत्यधोमुखी तिष्ठति)

पृथ्वीराजः-राजपुत्रि अलमुपचारैः ।

(निपुणं निर्वर्ण्य)

प्रतप्यमानावयवा किलैव-
मुपेक्षिता मूढधिया मया त्वम् ।
नैष्ठुर्यमेतत्कृपया क्षमस्व
वितीर्य मे प्रेमभरं कटाक्षम् ॥१४॥

संयोगिता-(सलज्जम्) नार्हत्येवमात्मानमधिक्षेप्तुं लोकनाथः । ममैव मन्दभाग्यादीदृशीमवस्थामापन्नाहं पुनरुज्जीविता प्रियदर्शनेन ।

कथमपि विधृतं मनोनुरागा-
त्त्वयि मम जीवितमन्तमभ्युपेतम् ।
तव वदनविलोकनोत्सवेन
स्वयमपि तन्नवतां पुनः प्रयातम् ॥१५॥

(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य)

अयि वासन्तिके समानय सत्कारसंभारान् ।

प्रतप्यमानेति । अत्र प्रार्थनाख्यं संध्यङ्गम् 'रतिहर्षोत्सवानां तु प्रार्थनं प्रार्थना भवेत् ।' इति ।
कथमपीति । ***पुष्पिताग्रावृत्तम् ।

पृथ्वीराजः-कृशाङ्गि अलमायासेन ।

प्रेमाकुलापाङ्गविलोकनेन
मनोज्ञया कोमलया गिरा च ।
चिरप्रमत्तोऽप्यनुकम्पया पुनः
सुसत्कृतोऽयं प्रणयी जनस्ते ॥१६॥

(प्रविश्य)

वासन्तिका-यथाज्ञापयति भर्तृदारिका ।

(इति विवाहसंभारान्समर्प्य निष्क्रामति)

संयोगिता-(सविस्मयम्) हला कर्णाटकि किमिदमुपनीतम् ।

कर्णाटकी-सखि अत्र त्वेषैव सत्क्रिया । अलंकुरुतां प्रियसख्यधीश्वरश्चेदं वरासनम् ।

(इति तावुपवेशयति हस्तयोश्चोभयोर्विवाहसूत्रं बध्नाति)

कर्णाटकी-(विवाहकङ्कणैः संयोगितामलङ्कृत्य) सखि अर्पयैनां वरमालामधीश्वराय । (इति मालामर्पयति । नेपथ्ये वीणावादनम्)

संयोगिता-(सलज्जस्मितम्) भगवन् कुसुमायुध

प्रागेव यत्र प्रणयप्रवृत्तं
मनः श्रितं पुण्यगुणानुबन्धम् ।
पुरो लसन्तं हृदयाधिवासं
सर्वात्मना तं समुपाश्रयेऽहम् ॥१७॥

(इति वरस्रजमारोपयति)

पृथ्वीराजः-(स्वगतम्) दिष्ट्या खल्वहमद्य स्त्रीरत्नयोगेनाखण्डैश्वर्यभाक् संवृत्तः। (प्रकाशम्) प्रिये स्वीकृत्येमामङ्गुलीमुद्रामनुगृहाण ते स्वजनम् ।

(इत्यर्पयति)

संयोगिता-भवतु सर्वदा मे हृदयसंनिहिता मुक्तावलिमध्यमणिपदमलङ्कुर्वाणैषा प्रियमुद्रा।

(इति मुक्तावल्या योजयति)

स्निग्धे अद्य खलु सनाथा संवृत्ता ते प्रियसखी।

कर्णाटकी-महानेषोऽनुग्रहः शरणोन्मुखानां शरण्यस्य दिल्लीश्वरस्य। अयि तिष्ठ तावन्मुहूर्तम्। यावदानयाम्यन्तर्गृहान्मधुपूर्णं चषकम्।

(इति निष्क्रान्ता)

पृथ्वीराजः-अयि जीवितेश्वरि अत्र तु त्वमेव मे शरण्या। यतः

मनसिजविशिखाहतं प्रिये मां
पुनरपि जीवयसि त्वमीक्षणाभ्याम्।
हिमकरकरतापितान्तरङ्गं
सुखयसि चेन्दुमुखि स्वयं कराभ्याम् ॥१८॥

(इति चुम्बितुमिच्छति)

संयोगिता-नाथ रक्ष विनयम्। (इति वारयति) एषा प्रत्युपागता चषकहस्ता मे प्रियसखी।

(प्रविश्य)

कर्णाटकी-अयि निवेदय ते हृदयाधीश्वरायेदं श्रमविनोदक्षमं चषकम्। (इति मधुपूर्णं सुवर्णचषकमर्पयति)

संयोगिता-(आदाय सलज्जम्) अङ्गीकरोत्वार्यपुत्रः।

(इति अर्पयति)

पृथ्वीराजः-प्रिये

आप्यायितस्ते नवपल्लवाधर-
श्रितेन पीयूषरसेन कामिनि।
कथं भवेयं मधुपानलालसः
किमाप्तकामस्य हि दृश्यते स्पृहा ॥१९॥

अथवा

नवं मृगाङ्कप्रतिमाङ्कशीतलं
प्रियाङ्गुलीस्पर्शगुणान्वितं मधु।

मनसिजेति। ***पुष्पिताग्रावृत्तम्।

आप्यायित इति। ***अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः। उपजातिवृत्तम्।

नवमिति। ***वंशस्थवृत्तम्।

स्मितेन चैवं प्रणयप्रसारितं
प्रकाममास्वादयतीह धन्यः ॥२०॥

तत्सानन्दं स्वीकरोमि। (इत्यादाय पीत्वा सावशेषं चषकं संयोगितायै समर्पयति)

संयोगिता-(निपीय) अहो मे सौभाग्यम् । यतः

दूरादुपेत्यालि मदन्तिकं स्वयं
संतर्प्य चैवं मधुरोक्तिभिः प्रियः ।
करिष्यतीत्थं मधुपानभागिनीं
स्वप्नेऽपि नासीन्मम सा प्रतीतिः ॥२१॥

कर्णाटकी-(स्वगतम्) अहो परस्परानुरागद्रवीभूतान् घटयतोऽनङ्गस्य कृतकृत्यता । (प्रकाशम्) सखि एतां ताम्बूलवीटिं ते वल्लभाय समर्पय ।

संयोगिता-(तथा कृत्वा) स्निग्धे त्वमेवासि मम सौभाग्यदेवता । तद् गृहाणैनां मुक्तावलिं मया प्रेम्णोपहारीकृताम् ।

कर्णाटकी-(सस्मितमादाय) अधीश्वर एतच्छयनगृहम् । तद्विश्राम्यतु चिरप्रवासजनितश्रमविनोदार्थम् । सखि त्वमपि तावदाह्लादय वीणागानेनाधीश्वरम्।

संयोगिता-इत इत आर्यपुत्रः । (इति पृथ्वीराजेन सह निष्क्रान्ता)

कर्णाटकी-दिष्ट्याद्य संपन्नं मे पूर्वभर्तुः प्रियसख्याश्चाभीप्सिततमम् । यतः

अनन्यभावेन सखीं प्रपन्ना-
मधीश्वरं तुल्यगुणानुरागम् ।
संयोज्य तां संप्रति तेन भर्त्रा
ममान्तरात्मा परितृप्तिमेति ॥२२॥

(ऊर्ध्वं विलोक्य) अहो अतीतप्राया हि रजनी। यावदहमपि शयनमारोहामि।

(इति निष्क्रान्ता)

॥ समाप्तोऽयं **प्रियसमागम**नामा पञ्चमोऽङ्कः ॥

तद्गृहाणेति। अत्र मुक्तावलीसमर्पणेनैकान्तसमागमाभिलाषस्य प्रदर्शितत्वान्मनोरथाख्यं लक्षणम्। 'मनोरथस्त्वभिप्रायस्योक्तिर्भङ्ग्यन्तरेण यत् ।' इत्युक्तत्वात् ।

अनन्यभावेनेति । ***उपजातिवृत्तम् ।

इति श्रीसंयोगितास्वयंवरटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां
प्रियसमागमनामा पञ्चमोऽङ्कः समाप्तः ।

षष्ठोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशतः लवङ्गिका मालिनी च)

मालिनी-अहो लवङ्गिका । (परितो विलोक्य) क्व गता रक्षपालाः ।

लवङ्गिका-अये किमनभिज्ञेव मां पृच्छसि ।

मालिनी-प्रातरुत्थाय ग्रामान्तरं प्रस्थिताऽहं किमपि न जाने ।

लवङ्गिका-अयि जातमभीष्टं भर्तृदारिकायाः ।

मालिनी-अप्यभिनन्दितोऽस्या मनोरथो महाराजेन ।

लवङ्गिका-असंभाव्यमेवैतत् । किंतु समागतोऽत्र सम्राट् पृथ्वीपतिः ।

मालिनी-(ससंभ्रमम्) अरे किं ब्रवीषि ।

लवङ्गिका-प्रच्छन्नं प्रविष्टेन तेन संगताऽस्मद्भर्तृदारिका । ततश्च किलकिलाध्वनिमुपश्रुत्य प्रयाणाभिमुखेन तेनैकाकिना निहताः सर्वेऽप्यवरोधकारिणो रक्षपालाः ।

मालिनी-(ससाध्वसम्) तत्का गतिरस्माकमत्र निर्जने प्रदेशे ।

लवङ्गिका-मूढे समाश्वसिहि । स एवास्माकं रक्षिता ।

मालिनी-स त्वितः प्रयात इति त्वयैव भणितम् ।

लवङ्गिका-परंतु प्रणयसूत्रग्रथितस्य तस्य महानुभावस्य पुनरागमनं प्रतीक्ष्यते।

मालिनी-क्व पुनरस्मद्भर्तृदारिका ।

लवङ्गिका-(उपरि निर्दिश्य) अयि पश्य । उपर्यलिन्दस्थितैषा सखीद्वितीयाऽस्मद्भर्तृदारिकाऽपि तमेव प्रतिपालयति । यावत्तत्रैव गच्छावः ।

(इति निष्क्रान्ते)

प्रवेशकः ।

प्रवेशक इति । तल्लक्षणमुक्तं दर्पणे- 'प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः । अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा' इति ।

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा संयोगिता)

संयोगिता-कथमद्यापि नोपतिष्ठत्यार्यपुत्रः। अयि

वाते निश्चलतां गते सविहगं जातं वनं निःस्वनं
सोऽयं चापि विराजते कुमुदिनीकान्तो वियन्मध्यगः।
नैराश्यं समुपश्रितो निजजनः स्वापाकुलो मन्थरो
मुक्ताहारमणिर्न किं तदपि मे हृद्देशमाश्लिष्यति ॥१॥

कर्णाटकी-प्रियसखि न हि स्वच्छन्दविहारिणो लोकनाथाः। तथा च

कथं स सम्राड् रिपुवाहिनीवृत-
स्त्वाविर्भवेत्ते नियमेन सन्निधौ।
न वै स्वयं प्रावृषि मेघसंवृतः
स्फुटं सदा तिग्मरुचिः प्रकाशते ॥२॥

संयोगिता-स्निग्धे प्रियसमागमसुखरसास्वादविदुरं तु मे हृदयमतितरां विरहासहिष्णु संवृत्तम्। यतः

यस्या मे प्रियसंगमे क्षण इव स्निग्धे त्रियामा गता
सैवाहं क्षपितुं क्षणं विरहिणी नैवास्म्यलं विक्लवा।
रोषाद्वाऽविनयान्ममालि सुभगो दुर्दैवतो मेऽथवा
नायातः किमिवेति तर्कविकलं चेतः स्वयं ताम्यति ॥३॥

(इति निःश्वसिति)

कर्णाटकी-(स्वगतम्) अहो उन्मत्तेवासंबद्धप्रलापिनीयं मया कथमाश्वासनीया। (प्रकाशम्) अयि भीरु

त्वदर्थमेवं प्रतिपद्य साहसं
प्रत्यर्थिमध्ये विचरन् सुगुप्तः।
प्रजागरैः किं कृशतामुपेत-
स्त्वया न दृष्टः सखि सार्वभौमः ॥४॥

कथं स इति। ***अत्र दृष्टान्तालङ्कारः। उपजातिवृत्तम्।

यस्या म इति। ***अत्र विरहोत्कण्ठिता नायिका। तर्काख्यश्च व्यभिचारिभावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

संयोगिता-(सनिःश्वासं साशङ्कम्) किं नु खल्वेष स्वप्नप्रत्ययः स्यात्। अथवा

मामाश्लिष्य चिरं प्रसन्नवदनः प्रेम्णा सुधासूक्तिभि-
श्चाराध्याङ्कगतां विहाय किमिति प्रेयान्मनोवल्लभः ।
सैषा त्वं स सखीजनः पुनरयं तच्चापि शय्यागृहं
सर्वं प्रागिव सुस्थितं प्रियतमस्त्वेको न दृग्गोचरः ॥५॥

कर्णाटकी-सखि किमेवं भ्रान्तासि ।

आच्छिद्य मे हस्तगतां स्मितदृशा
ताम्बूलवीटिं सुभगाय दत्त्वा ।
स्वयं विसृष्टं पुनरागमाय तं
स्निग्धे कथं विस्मृतवत्यसि त्वम् ॥६॥

(नेपथ्येऽश्वखुराघातः)

(आकर्ण्य) अयि पश्यैनमवितथप्रतिज्ञमुपवनपदं प्रतिपन्नम् ।

संयोगिता-(दूरं विलोक्य) अहो मृषैव मुषितास्मि विस्मृतिमापादयता विरहेण।

(ततः प्रविशति पृथ्वीराजः)

पृथ्वीराजः-प्रिये क्षमस्व मे विलम्बम् । अस्मत्प्रस्थानव्यवस्थितिव्यवसायिना मया विलङ्घितः खलु संकेतकालः ।

संयोगिता-आर्यपुत्र तातापचारशङ्काव्याकुलं मे हृदयं तु तव संनिकर्ष एव धृतिं लभते । यतः

नियतमभियुता दिवा प्रियेण
विविधविलासरताऽपि चक्रवाकी ।
निशि न हि सहते स्वकल्पितं सा
कमलदलान्तरिता तु तद्वियोगम् ॥७॥

पृथ्वीराजः-प्रिये एवमेतद् । यतः

आनन्दमात्रामनुभूय जन्तवो

मामाश्लिष्येति । ***शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

नियतमिति । ***पुष्पिताग्रावृत्तम् ।

जीवन्ति साक्षादिति लोकसिद्धम् ।
जने तदानन्दपयोधितुल्ये
कथं वियुक्ते त्वसवो वसेयुः ॥८॥

तत्प्रस्थानप्रवणा भवतु मे प्रियतमा ।

संयोगिता-अनुगृहीताऽहमार्यपुत्रस्य मन्मनोरथानुरूपाध्यवसायेन ।

कर्णाटकी-अधीश्वर भवतु तवेयं वाराङ्गनाछद्मना परिचरन्ती परिचारिकाऽपि पूर्ववत् त्वदनुग्रहभाजनम् ।

पृथ्वीराजः-(सविस्मयम्) अहो छद्मशब्देन तु जनयसि मे कुतूहलम् ।

कर्णाटकी-तत्तावच्छृणोत्वधीश्वरः । कर्णाटराजकुलप्रसूता खल्वहमुपश्रुत्य संगीताचार्येभ्यस्त्वद्गुणातिरेकं त्वयि बद्धानुरागा साक्षादुत्कृष्टकुलयोगं दुर्लभं मन्वाना छद्मरूपधरा

मधुकरी मधुकोशविनिर्गता
परिपतेत्सुमनोरसिका यथा ।
अभिसरन्त्यतिदूरमहं तथा
प्रणयभाजनतां प्रिय ते गता ॥९॥

पृथ्वीराजः-अहो आश्चर्यम् ।

कर्णाटकी-तथा च

आजन्मनो नाथ वपुर्ममेदं
दृढानुरागोन्मथितं मनश्च ।
त्वामाश्रिते ते तव चानुवर्तिनी
पराभिमर्शाद्भवतः सुरक्षिते ॥१०॥

पृथ्वीराजः-अयि राजपुत्रि किमिदमुच्यते ।

तत्प्रस्थानप्रवणेति । अत्र निर्वहणसन्ध्यारम्भः । तदुक्तं दर्पणे-'बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम् । एकार्थमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत् ॥' - इति ।

अहो छद्मशब्देनेति । अत्र पृथ्वीराजस्य विस्मयः स्थायिभावो रहस्यभेद उद्दीपनं कर्णाटक्या वचनमालम्बनमेवमत्राद्भुतो रसः । तदुक्तं दर्पणे-'कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम्' - इति ।

मधुकरीति । ***द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ।

कर्णाटकी-तथैव चाधीश्वरस्य मित्रमिति मया तोषितः संगीतप्रयोगमात्रेणामात्यः कयमाषः।

पृथ्वीराजः-(सनिःश्वासम्) अहो धिङ् मेऽविमृश्यकारित्वम् ।

कर्णाटकी-केवलं दैवाधीने जगत्तन्त्रे नार्हत्येवमात्मानमधिक्षेप्तुमधीश्वरः । ततः परमिहागत्य तवैव हितं समाचरन्त्या मया रक्षितेयं मे प्रियसखी-इति ।

पृथ्वीराजः-राजपुत्रि कथं प्रागेव नाविष्कृतं त्वयेदं निजाभिजनरहस्यम् ।

संयोगिता-अयि मत्तोऽपि गोपायितम् ।

कर्णाटकी-ननु समय एव रहस्यभेदोऽर्थाय कल्पते । अन्यथा त्वनर्थायैव।

पृथ्वीराजः-राजपुत्रि अतः परं त्वमेव प्रपस्त्यसे मेऽन्तःपुराधिकारम् । तदद्यैव कवीश्वरेण सार्धं प्रयाहि सुगुप्तेन पथा दिल्लीनगरम् ।

कर्णाटकी-आमन्त्र्याधीश्वरं प्रियसखीं च तथा करिष्ये ।

पृथ्वीराजः-प्रिये प्रत्यासन्ना प्रयाणवेला । तदनुज्ञापय ते सखीजनम् ।

संयोगिता-प्रथमं तावदामन्त्रये ममोपवनसहायान् ।

(इति अन्तर्गृहस्थसखीजनानुगताः सर्वे सोपानमार्गमवरोहन्ति)

(प्रासादाङ्गनमुपेत्य) अये

रम्या मे वनवासबन्धुतरवो नानालतालिङ्गिताः
स्निग्धे मे शुकसारिके च दयितालापे नितान्तं रते ।
वीणे मे मधुरस्वरानुरणनानन्दोर्मिमालावहे
यास्यन्तीं पतिमन्दिरं निजसखीं सर्वेऽनुजानन्तु माम् ॥११॥

अयि मालिनि त्वयि न्यासीकृतेष्वेतेषु सर्वथाऽवहिता भव ।

मालिनी-यदाज्ञापयति भर्तृदारिका ।

चातुरिका-सखि पश्य । एते खलु

कयमाष इति । अत्रेदमनुसन्धेयम् - 'एकदा मृगयाविहारार्थं गते पृथ्वीराजे कामपरवशः कयमाषः कर्णाटक्या भवनं जगाम । तस्यामेव रजन्यां निभृतं दिल्लीनगरमुपेत्य इच्छिनीकुमार्या मन्दिरं प्रविष्टेन पृथ्वीराजेन कर्णाटकीभवने कोऽयं महोत्सव इत्यनुयुक्त्या तया सर्वं वृत्तजातं निवेदितम् । तदाकर्ण्यैव कुपितेन पृथ्वीराजेनासौ बाणेन निहतः-' इति ।

विकीर्यमाणैः कुसुमैर्महीरुहाः
        प्रियानुलापैः शुकसारिके पुनः ।
स्वयं च वीणा स्वरमूर्च्छनादिभिः
        प्रतन्वते ते मदिराक्षि मङ्गलम् ॥१२॥

(तत आरोहत्यश्वं पृथ्वीराजः)

कर्णाटकी-अयि प्रतीक्षते त्वामश्वारूढोऽधीश्वरः ।

संयोगिता-अनुजानातु मां गमनाय प्रियः सखीजनः ।

सख्यः-का वयमनुज्ञातुम् । परं चास्त्येतदस्मदभ्यर्थनीयं यद्

अतुलरूपगुणान्वितविक्रमं
        पतिमवाप्य मनोज्ञमधीश्वरम् ।
ललितनर्मरताऽपि निजं क्वचित्
        स्मर वियोगविपन्नसखीजनम् ॥१३॥

संयोगिता-अचिरेणैव यमुनाविहारभागिन्यो भविष्यन्ति मे प्रियवयस्याः ।

(इति पृथ्वीराजाङ्कमारोहति)

कर्णाटकी-अधीश्वर पश्य

प्रियसखीविरहव्यसनार्दितोऽ-
        प्यभिमतार्थसमागमनन्दितः ।
विधृतबाष्पसमाकुललोचनोऽ
        पि मुदितानन एष सखीजनः ॥१४॥

पृथ्वीराजः-अयि राजपुत्रि समेतु सखीजनो मम राजधानीं

रम्या इति । ***शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

विकीर्यमाणैरिति । 'क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम् । मूर्च्छनेत्युच्यते ग्रामस्था एताः सप्त सप्त च ॥' इति मूर्च्छनालक्षणम् । आदिशब्देन तानादीनां ग्रहणं । वंशस्थवृत्तम् ।

प्रियसखीति । ***अत्र हर्षविषादयोर्युगपदाविर्भावाद्भावसन्धिः । तदुक्तं दर्पणे-'भावस्य शान्तावुदये संधिमिश्रितयोः क्रमात् । भावस्य शान्तिरुदयः संधिः शबलता मता ॥' इति । द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ।

विवाहकौतुकावसरे।

(इति प्रतिष्ठते)

कर्णाटकी-यथा दिशत्यधीश्वरः ।

सख्यः-उभयोर्मङ्गलमाशास्महे । (इति पुष्पाणि विकिरन्ति)

कर्णाटकी-पश्यतु सखीजनः ।

प्रजवतुरगकल्पितासनोऽयं
रिपुहितहेतिकिणाङ्किताङ्कलीनाम् ।
वरतनुमुपगुह्य तां नवोढां
धृतगिरिजाङ्गभवश्रियं दधाति ॥१५॥

अहो निमेषमात्रेण दृष्टिपथमतिक्रान्तस्तुरंगमः । तदेत साधयामस्तावत् ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वाः)

इति समाप्तोऽयं **संयोगिताहरण**नामा षष्ठोऽङ्कः ।

प्रजवेति । ***अत्र निदर्शनालङ्कारः । पुष्पिताग्रावृत्तम् ।

इति श्रीसंयोगितास्वयंवरटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां
संयोगिताहरणनामा षष्ठोऽङ्कः समाप्तः ।

सप्तमोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशतः रामगुरुपुरोहितश्चन्दश्च)

रामगुरुपुरोहितः-कवीश्वर स्थाने स्थानेऽवस्थापितानस्मत्सैनिकनिवहान्निर्भिद्यात्र संप्राप्त एष उन्मत्तः कनोजाधिपः कथमपि सान्त्वयितव्यः ।

चन्दः-संकल्पमात्राधीना हि सतामभिमतार्थसिद्धयः । तद्भगवतः कृपया जात एवासौ सर्वथाऽनुकूलः ।

रामगुरुपुरोहितः-(साश्चर्यम्) कथमिव ।

चन्दः-भगवन् प्रभूतबलक्षयेन तमापन्ननिर्वेदमुपश्रुत्योपयातोऽहं प्रभाते भगवतीमाराध्य तस्य शिबिराराामम् । तत्र च स्वयमेव सोऽभिनन्द्य ममानुनयामन्त्रणं स्वसुतोद्वाहप्रवणतामात्मन आवेदयत् ।

रामगुरुपुरोहितः-अहो प्रभवति सर्वत्रैव वाग्विभवो देवतानुग्रहशालिनां कवीश्वराणाम् । अप्यस्ति विदितमेतत्सार्वभौमस्य ।

चन्दः-भगवन् एषोऽहमुपसर्पामि श्रावयितुमिमं मङ्गलोदन्तं सार्वभौमम् ।

रामगुरुपुरोहितः-यावदहमप्यग्निकार्यं निर्वर्तयितुमग्निशरणमुपाश्रये ।

(इति निष्क्रान्तौ)

विष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशत्यन्तर्वेश्मन्यवस्थितः पृथ्वीराजश्चन्दश्च)

पृथ्वीराजः-मित्र परितो निवेशिताशेषस्कन्धावारः कनोजाधिप उपरुध्यास्मानवतिष्ठते । तदत्र साम्नैवोपपन्नं प्रतिविधानम् ।

चन्दः-सार्वभौम दिष्ट्याऽभ्युदितस्ते मनोरथः ।

पृथ्वीराजः-(साश्चर्यम्) अहो किमुच्यते ।

स्वसुतोद्वाहेति । अत्र निर्णयाख्यं संध्यङ्गम् । 'निर्णयः पुनरनुभूतार्थकथनम्'-इत्युक्तेः ।

श्रावयितुमिति । 'गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ' -इति सूत्रेण सार्वभौममित्यत्र द्वितीया ।

चन्दः-निशामयतु सार्वभौमः । मयाऽनुनीतः कनोजेश्वरः स्वसुताया अनुरागातिरेकेण वीतामर्षः संवृत्तः ।

पृथ्वीराजः-असंभाव्यस्याप्यर्थस्यापादयिता प्रभवति सर्वत्रापि कविजनप्रभावः ।

चन्दः-सार्वभौम यत्सत्यम्

कार्यं त्वसंभाव्यमपि प्रकर्तुं
भर्तुः प्रभावात्प्रभवन्ति भृत्याः ।
रामस्य दूतत्वमुपेत्य तीर्णो
महोदधिर्वन्यवलीमुखेन ॥१॥

पृथ्वीराजः-मित्र तथापि त्वद्योगात्सर्वत्रैवानायासेन भवति मे कार्यसिद्धिरिति तु प्रत्यक्षीक्रियते । अथ का वार्ता कनोजाधिपस्य ।

चन्दः-स तु स्वयमेवात्रोपागत्य कन्याप्रदानायोत्सहते ।

पृथ्वीराजः-(साश्चर्यम्) अहो भगवतो विधेर्विलसितम् ।

क्व सार्वभौमोच्चपदाभिपत्तिः
क्व मे कनोजाधिपविप्रकारः ।
क्व चोद्वहस्तत्तनयानुरागज-
श्चित्रं बताहोऽस्तिविधेर्विधित्सितम् ॥२॥

(प्रविश्य)

द्वारपालः-विजयतां देवः । सार्वभौमं द्रष्टुकामः सुमतिर्द्वारि तिष्ठति ।

पृथ्वीराजः-प्रवेशय कनोजाधिपमन्त्रिणम् ।

द्वारपालः-यथाज्ञापयति देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

सुमतिः-(समुदम्) वर्धतां सम्राड् दिल्लीश्वरो नवविवाहमङ्गलेन ।

पृथ्वीराजः-स्वागतं मन्त्रिवर्याय । अप्यनामयं कनोजनरपतेः ।

कार्यं त्विति । ***अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

क्व सार्वभौमेति । ***अत्र विषमालङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ।

सुमतिः-अथ किम् । इच्छत्यसौ तु स्वयमेव सम्राजं सभाजयितुं कन्याप्रदानेन। तदनुजानातु सार्वभौमः ।

पृथ्वीराजः-मन्त्रिन् सर्वथा मान्या एवास्माकं श्वशुरचरणाः। तदलङ्कुर्वन्त्वेते सपरिवारा अस्मत्सभामण्डपम् ।

सुमतिः-यथादिशति सार्वभौमः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(नेपथ्ये)

वैतालिकः-विजयतां देवोऽभिनवविवाहमङ्गलेन ।

नवजलधरलीलानन्दनोत्तानपक्षा-
मुपवनलुलिताङ्गीं मानसावासलोलाम् ।
कमलदलनिलीनां राजहंसीमवाप्य
प्रमुदितवदनस्त्वं राजसे राजहंसः ॥३॥

पृथ्वीराजः-(आकर्ण्य) सत्यमिदानीमेव मया समुत्तीर्णश्चिन्तापारावारः ।

चन्दः-जातः खलु सभाप्रवेशसमयः । तदाज्ञापयतु गमनाय सार्वभौमः ।

पृथ्वीराजः-साधयतु कविवरः। अहमपि तावद्देव्या साकं यथासमयमुपतिष्ठे।

चन्दः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

पृथ्वीराजः-कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

दौवारिकः-आज्ञापयतु देवः ।

पृथ्वीराजः-अन्तःपुरमार्गमादेशय ।

दौवारिकः-इत इतो देवः ।

(उभौ परिक्रामतः)

एतदन्तःपुरद्वारं प्रविशतु देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

नवजलधरेति । ***अत्र रूपकालङ्कारः । मालिनीवृत्तम् ।

पृथ्वीराजः-(संयोगितां निर्वर्ण्य) अहो अनभ्यस्तप्रवासवेदनास्तिमिता मे प्रियतमा मञ्चावस्थितैव निद्राति ।

दीर्घायासस्फुरितहृदया स्रंसमानाङ्गबन्धा
विस्रब्धं मे स्वपिति दयिता म्लानपद्माननेयम् ।
निर्वर्ण्यैनां दिनकरकरैराविलां चन्द्रलेखां
विन्देतेदं कथमिव धृतिं बोधितुं मानसं मे ॥४॥

तथापि सकलसंतापप्रशमनं तत्पितुः संदेशं श्रावयितुं तावत्सौम्येनोपचारेण तां प्रबोधयामि । अहो ममोपागमापहृतनिद्रा सा तु स्वयमेवोत्थिता ।

संयोगिता-(ससंभ्रमम्) आर्यपुत्र एतावता कालेनाद्यैव मे सुखं प्रवृत्ता निद्रा।

पृथ्वीराजः-प्रिये समाहिता भव ।

त्वं मर्षिताऽमर्षणतातपादैः
सुखं स्वपीस्तत्र न विस्मयो मे ।
सख्यू रिपोर्वाऽपि मनोगतं यतः
स्वयं स्फुरत्येव निजान्तरात्मनि ॥५॥

संयोगिता-(साश्चर्यम्) अप्यनुकूलास्तातचरणाः ।

पृथ्वीराजः-न केवलमनुकूला अपि तु स्वयमेवास्मद्विवाहोत्सवायोत्कण्ठिताः।

संयोगिता-(ससंमोदम्) आर्यपुत्र संप्रति परां निर्वृतिमधिरोहति मे हृदयम्।

पृथ्वीराजः-प्रिये प्रत्यासन्नः सभाप्रवेशसमयः ।

संयोगिता-सज्जास्म्यहम् ।

पृथ्वीराजः-कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

दीर्घायासेति । बोधितु-'बुधिर्बोधने' इत्यस्य तुमुनन्तं रूपम् । ***अत्र श्रमाख्यो व्यभिचारिभावः 'खेदो रत्यध्वगत्यादेः श्वासनिद्रादिकृच्छमः-' इत्युक्तत्वात् । मन्दाक्रान्तावृत्तम् ।

सौम्येनोपचारेणेति । अत्र वात्स्यायनः - 'कुसुमसधर्माणो हि योषितः सुकुमारोपक्रमाः । .....तस्मात्साम्नैवोपचरेत् ।' इति ।

दौवारिकः-विजयतां देवः। इत इतो भर्ता भट्टिनी च।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

एतत्सभागृहद्वारं प्रविशतु भर्ता भट्टिनी च।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

पृथ्वीराजः-स्वागतं सभ्यवरेभ्यः।

सभ्याः-(उत्थाय) विजयतां सम्राट्। विजयतां सम्राज्ञी।

(इति सम्राजमनु सर्वे उपविशन्ति)

वीणिनौ-(वीणावाद्येन गायतः)

(आसावरीरागेण त्रितालेन गीयते।)

भारतराजकुलेश कृपालो ॥
अनुपममहिमगुणानामाकर।
रसमयसरितामयि रत्नाकर।
कविवरवरदधनेश ॥ भारत०॥१॥
सुरपतिसमितिविकासितविक्रम।
स्वर्विलासिनीलासितविभ्रम।
अभयवरदकमलेश। भारत० ॥२॥
निजजनपदपरिपालनदीक्षित।
अशरणशरणमितीव सुवीक्षित।
जीव चिरं भुवनेश। भारत० ॥३॥

रामगुरुपुरोहितः-पूर्वं तावदभिनन्द्यते परमोत्कर्षसंपत्त्या सार्वभौमः। यतः

कन्यां प्रदाय मुदितोऽद्य कनोजराजो
मित्रत्वमेति परिहृत्य निजं विरोधम्।
एकातपत्रमवनेरतुलं प्रभुत्वं

आसावरीति। तल्लक्षणमुक्तं लक्ष्यसंगीते - **भैरवीमेलसंजाता रागिण्यासावरी मता। नटभैरविमेलेऽपि गुणिभिः कैश्चिदीरिता ॥ आरोहे गनिहीना स्यादवरोहे समग्रका। मग्रहा धांशिका पान्ता द्वितीयप्रहरे दिने ॥'** इति

सम्राट् चिरार्थितमहो त्वमथाभिपन्नः ॥६॥

पृथ्वीराजः-(सप्रश्रयम्) भगवन्, 'तस्य राजा मित्रं भवति द्विषन्तमपबाधते यस्यैवं विद्वान् ब्राह्मणो राष्ट्रगोपः पुरोहितः' - इति श्रुतिसिद्धेनैव भगवतो महिम्ना ममाप्तकामत्वम् ।

कन्हः-अथ संभावयतु सार्वभौमोऽस्मन्मान्यं कनोजाधीश्वरम् ।

पृथ्वीराजः-सभ्याः, अद्य खलु कनोजाधीश्वरस्य शाश्वतिकीं मैत्रीमभिलषन्

स्वागतेन गुरुतामुपयातं
तं नरेन्द्रमभिनन्द्य मुदाऽहम् ।
योजये जनपदे मम मान्यं
छत्रचामरयुगान्तविभूत्या ॥७॥

तदर्पयतु पितृव्यचरणा ममादेशनिदर्शकं ताम्रपट्टम् ।

कन्हः-तथा ।

(इति कनोजाधिपमन्त्रिणेऽर्पयति)

सुमतिः-सार्वभौम, अस्मदधीश्वरोऽपि

नयप्रयोगैर्नितरामधृष्यः
सुताभियोगस्य पुनः प्रकर्षात् ।
स्वयं तवैवं वशतामुपेत
आशंसते ते स्थिरमद्य सौहृदम् ॥८॥

कन्हः-यत्प्रयोगालम्बनमात्रेणानुभूयत इयं मङ्गलपरंपरा तमनुगृह्णातु सार्वभौमो मन्त्राधिकारनियोजनेन ।

पृथ्वीराजः-बुद्धिप्रकर्षाच्छौर्यातिरेकाच्चार्हत्येव मन्त्रिपदं कवीश्वरः । तदद्य खल्वहं

धीवैभवप्रथितचारुयशःप्रकाश-

श्रुतिसिद्धेनेति । ऐतरेयब्राह्मणप्रतिपादितेनेति ।

स्वागतेनेति । गुरुतां श्वशुरपदमुपयातं प्राप्तमत एव मान्यं ***। स्वागतावृत्तम् ।

नयप्रयोगैरिति । ***उपजातिवृत्तम् ।

मेकान्तभक्तिपरमं कविराजमित्रम्।
प्रेम्णाऽभिनन्द्य समदुःखसुखाय तस्मै
मन्त्राधिकारमसमं वितरामि तुष्टः ॥९॥

तदर्हयतु मन्त्रिपदमण्डनैः कवीश्वरम्।

कन्हः-तथा ।

(इति यथादिष्टं कुरुते)

चन्दः-(ससंमोदम्) सार्वभौम महत्यस्मिन्ननुग्रहेऽप्यस्ति मेऽभ्यर्थनीयम् । यन्मम

समुपचारपरंपरयाकुलं
नयनियन्त्रितवाक्प्रसरं पुनः ।
तदधिगम्य तु मन्त्रिपदं वरं
भवतु मा प्रियमित्रपदच्युतिः ॥१०॥

कन्हः-अलोकसामान्यराजभक्तिविशिष्टं संजयरायस्य विश्रुतवंशं प्रतिष्ठापयतु सेनाधिपत्ये सार्वभौमः ।

पृथ्वीराजः-प्राणव्ययेनाऽपि भर्तुर्हितं संपादयता संजयरायेण लङ्गडीरायेण च लीलयैव संसाधितः पुण्यलोकजयः । अतः

देहं निजं समरयज्ञबलिं प्रकल्प्य
यद्वंशजैः प्रकटिता मयि राजभक्तिः ।
तस्यान्वये प्रबलवीरजनाकरेऽहं
संस्थापयाम्यखिलराष्ट्रबलाधिकारम् ॥११॥

तद्वितरन्तु राजशासनं लङ्गडीरायात्मजे पितृव्यचरणाः ।

कन्हः-तथा ।

(इति यथादिष्टं करोति)

पृथ्वीराजः-अथार्हयतु यथाविक्रमं विक्रमशालिनः सर्वानपि वीरभटान्

धीवैभवेति । ***वसन्ततिलकावृत्तम् ।
समुपचारेति । ***द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ।

कोशाध्यक्षः।

कोशाध्यक्षः-यथाज्ञापयति देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

कन्हः-कर्णाटराजपुत्रि, सन्निष्ठया निषेवितः सार्वभौमस्त्वां नियोजयत्यन्तःपुराधिकारे।

कर्णाटकी-महानेषोऽनुग्रहो लोकनाथस्य । अद्य खलु

आजन्मविश्रम्भपरस्य भर्तुः
प्रियं हितं चैव समाचरन्त्या ।
दिष्ट्या पुनर्भृत्यजनैः सदार्थितः
स्थिरः प्रसादः समुपार्जितो मया ॥१२॥

जयचन्दः-अये भारतैकवीर

मिथोऽनुरागाभ्युदयप्रहर्षितः
स्वयंवरां मे तनयां समर्प्य ।
सम्राट् स्वयं विक्रमशालिने ते
कृतार्थतामद्य गतोऽस्मि सान्वयः ॥१३॥

पृथ्वीराजः-अहो बतायं मे युगपदुपनतो मङ्गलसमुच्चयः ।

सम्राट्पदं प्रचुरकोशबलेशमैत्री
साचिव्यमप्यमितभक्तिनयप्रदीप्तम् ।
एकान्तरागरसिकप्रियया च योगो
लोकानुरञ्जनमथ स्वजनस्य तोषः ॥१४॥

संयोगिता-दिष्ट्याऽहमपि

सम्राट्पदमिति । अत्र भाषणाख्यं संध्यङ्गम्-'मानाद्याप्तिश्च भाषणम्'-इत्युक्तेः ।

तेजस्विने राजकुलेश्वराय
तुष्टेन पित्रा स्वयमेव दत्ता ।
कान्तं मनस्कान्तमवाप्य नून-
मेकान्तसौभाग्यफला भवामि ॥१५॥

(प्रविश्य)

प्रतिहारी-एष तेजोमण्डलमण्डिताननः कोऽपि तपोनिधिर्द्वारि तिष्ठति ।

पृथ्वीराजः-प्रवेशयैनं भगवन्तं महानुभावम् ।

प्रतिहारी-यद्देव आज्ञापयति ।

(इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति सिद्धतापसः)

पृथ्वीराजः-(सर्वैः सहोत्थाय) एष पृथ्वीराजोऽभिवाद्य भगवन्तं महानुभावं स्वागतेन पुनरभिनन्दति ।

(इति प्रणमति)

सिद्धतापसः-समृद्ध्यतां सार्वभौमो महेन्द्रश्रिया ।

(वीणावादनं प्रवर्तते)

पृथ्वीराजः-(सप्रश्रयम्) भगवन् प्रतिगृहीताशीः ।

सिद्धतापसः-सार्वभौम, क्षात्रधर्मानुवर्तिनस्ते सकलमप्यभीष्टं मया तपःप्रभावात् संपादितम् । अथ किं ते भूय उपकरवाणि ।

पृथ्वीराजः-भगवदनुग्रहेण न मे किमपि भद्रमवशिष्यते । तथापीदमस्तु भरतवाक्यम् ।

मिथो रागासक्तान्प्रणयमयलीलाविलसितै-

तेजस्विन इति । अत्रानन्दाख्यं संध्यङ्गम्-'आनन्दो वाञ्छितागमः'-इत्युक्तेः ।

भरतवाक्यमिति । भरतवाक्यं नटवाक्यम् । अत्र प्रशस्त्याख्यं सन्ध्यङ्ग-'प्रशस्तिः शुभशंसनम्' - इत्युक्तेः ।

द्रवत्वं संप्राप्तान्नियतमनुरूपान्युवगणान्।
स्थिरं कृत्वा स्नेहं निरवधिसुखे भारतभुवि
नियुञ्जानो रत्या सह कुसुमधन्वा विजयताम् ॥१६॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ समाप्तोऽयं **विवाहोत्सव**नामा सप्तमोऽङ्कः ॥

॥ समाप्तमिदं संयोगितास्वयंवरं नाम नाटकम् ॥

मिथ इति । मिथः परस्परं रागेण स्नेहेनासक्तान् प्रणयमयाः स्नेहप्रचुराश्च ता लीलाश्च तासां विलसितैर्द्रवत्वं संप्राप्तान् द्रवीभूतान् नियतं नियमेनानुरूपान् तुल्यान् युवानश्च युवत्यश्च तेषां गणान् भारतभुवि स्नेहे स्थिरं कृत्वा निरवधिसुखे नियुञ्जानो रत्या सह कुसुमधन्वा मदनो विजयताम्। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

सर्वेषां नाटकाङ्गानां दिङ्मात्रमिह दर्शितम्।
विशेषः शास्त्रतस्तूह्यः काव्यपीयूषलालसैः ॥

इति श्रीसंयोगितास्वयंवरटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां
विवाहोत्सवनामा सप्तमोऽङ्कः समाप्तः ।

पद्यसूची

पद्यानां छन्दःसूची

आर्या -	१/२
उपजाति -	१/१४, १/१६, २/१, २/४, २/९, २/१३, २/१६, २/२२, ३/१, ३/२, ३/६, ३/८, ३/१०, ३/१४, ३/१९, ३/२०, ४/१, ४/२, ४/८, ४/११, ४/१३, ४/१८, ५/१, ५/१२, ५/१३, ५/१४, ५/१६, ५/१७, ५/१९, ५/२०, ५/२१, ५/२२, ६/२, ६/४, ६/६, ६/८, ६/१०, ६/१२, ७/१, ७/२, ७/५, ७/८, ७/१२, ७/१३, ७/१५
गीति -	२/२०, ३/११, ३/१३, ३/१६
द्रुतविलम्बित -	१/५, २/६, ४/१५, ६/९, ६/१३, ६/१४, ७/१०
पुष्पिताग्रा -	१/७, १/८, १/९, १/१५, २/१४, २/१५, २/२१, ४/३, ५/२, ५/३, ५/१५, ५/१८, ६/७, ६/१५
मन्दाक्रान्ता -	३/४, ५/५, ५/११, ७/४
मालिनी -	२/२, ३/३, ३/५, ३/९, ७/३
रथोद्धता -	४/१२
वंशस्थ -	१/१२
वसन्ततिलका -	१/४, १/६, १/१०, १/१३, २/५, २/७, २/८, २/१२, २/१८, २/१९, ३/१५, ३/१७, ३/१८, ३/२१, ४/४, ४/५, ४/६, ४/७, ४/९, ४/१०, ४/१६, ४/१७, ५/६, ५/८, ५/९, ७/६, ७/९, ७/११, ७/१४
शार्दूलविक्रीडितम् -	१/१, १/३, २/३, २/१०, ५/७, ६/१, ६/३, ६/५, ६/११
शालिनी -	२/२३, ५/४
शिखरिणी -	२/१७, ३/१२, ४/१४, ७/१६
स्रग्धरा -	१/११
स्वागता -	३/७, ७/७
हरिणी -	२/११, ४/१९, ५/१०

गीतानां तालिका

क्रम	स्थान	ध्रुवपदम्	राग	ताल
१.	प्रस्तावना	विलसति ललिता । उपवनवनिता ॥	वसन्त	त्रिताल
२.	२/१० पश्चात्	पायय तव रसिकां रसपानम् ॥	भूपाली	त्रिताल
३.	२/१३ पश्चात्	वितरति नतिमयि रतिरमण । युवतिजनस्ते रतिरमण ॥	वसन्त	त्रिताल
४.	तत्रैव तत्पश्चात्	पाहि मनोभव मदन । अरमिह सदयमुपेहि समेहि ॥	बाहार	त्रिताल
५.	४ अङ्कारम्भे	माधव यमुनातीरविहारी ॥	केदार	त्रिताल
६.	५ अङ्कारम्भे	क्व नु मम विहरसि मानसहंस ॥	गौण्डमल्लार	त्रिताल
७.	७/५ पश्चात्	भारतराजकुलेश कृपालो ॥	आसावरी	त्रिताल

गीतानां स्वरसंयोगः ।

१. (पृ० २/३)-

वसन्तरागेण त्रितालेन गीयते ।

[१]स्थायी

वि ल स ति । ल लि ता ऽ । उ प व न । व नि ता ऽ ।

[३]सां नि ध प । [१]म ग म ग । [२]रे सा म ग । [०]म ध रें सां ।

ध्रुवपदम् ॥

अन्तरा

न व प ऽ । ल्ल वि ता ऽ । अ नि ल त । र लि ता ऽ ।

म ध सां - । [३]सां रें सां सां । [२]सां गं मं गं । [०]मं गं रें सा ।

त रु व र । मि लि ता ऽ । सु कु मा ऽ । र ल ता ऽ ।

[३]रें नि ध प । [१]म ग म ग । [२]नि म ग - । [०]म ग रे सा ।

वि ल स ति० ॥

[३]सां नि ध प० ॥

१. तदुक्तं संगीतरत्नाकरे-

उद्ग्राहः प्रथमो भागस्ततो मेलापकः स्मृतः ।
ध्रुवत्वाच्च ध्रुवः पश्चादाभोगस्त्वन्तिमो मतः ॥
ध्रुवाभोगान्तरे जातो धातुरन्योऽन्तराभिधः ॥ इति ।
अत्रोद्ग्राहो नाम स्थायिस्वरविशिष्टः स्वरसमूहो लोके

स्थायीति प्रसिद्धः ।

२. (पृ० १९)-

भूपालिरागेण त्रितालेन गीयते ।

स्थायी

पा ऽ य य । त व र सि । कां ऽ र स । पा ऽ नं ऽ ।

२ ० ३ १
सां - ध प । ग प ध प । ग रे सा रे । पे - ग - ।

ध्रुवपदम् ॥

अन्तरा

मो ऽ द य । स द यं ऽ । द यि ता ऽ । हृ द यं ऽ ।

२ ० ३ १
ग - प ध । सां सां सां सां । ध सां रें - । सां ध प - ।

द्यो ऽ त य । स हृ द य । ल ता ऽ वि । ता ऽ नं ऽ ।

२ ० ३ १
गं गं रें सां । रें सां धं पं । ग ग - प । ग रे सा - ।

पा ऽ य य० ॥
२
सां - ध प० ॥

३. (पृ० २१)-

वसन्तरागेण त्रितालेन गीयते ।

स्थायी

वि त र ति । न ति म यि । र ति र म । ण ऽ ऽ ऽ

२ ० ३ १
सां नि ध प । म ग म ग । म ध म ध । रें - सां - ।

यु व ति ज । न ऽ स्ते ऽ । र ति र म । ण ।

२ ३ १
नि म - ग । म ग रे सा । सा ग म ग । रे - सा - ।

ध्रुवपदम् ।

अन्तरा

न व सु म । सा ऽ य क । व स ऽ न्त । ना य क ।

म ध म ध । सां - सां - । सां सां सां सां । नि सां रें सां ।

अ लि कु ल । गा ऽ य क । र ति र म । ण ऽ ऽ ऽ ।

सां - गं - । मं गं रें सां । म ध म ध । रें - सां - ।
वि त र ति० ॥
सां नि ध प०॥

४. (पृ० २१)-

बाहाररागेण त्रितालेन गीयते ।

स्थायी

पा ऽ हि म । नो ऽ भ व । म द न ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ ।

म प ग म । ध - नि सां । नि नि सां ऽ । सां - नि प ।

अ र मि ह । स द य मु । पे ऽ हि स । मे ऽ हि ऽ ।

मं प नि प । म प ग म । ग म रे सा । रे रे सा - ।
ध्रुवपदम् ॥

अन्तरा

अ लि कु ल । सं ऽ कु ल । ब कु ल सु । वा ऽ सि त ।

म प प प । म प ग म । धं - ध - । नि सां रें सां ।

वा ऽ त वि । का ऽ सि त । न व र स । ला ऽ सि त ।

नि - सां - । गं मं रें सां । नि नि सां सां । नि् स्ां रें् स्ां नि ध

यु व ज न । मा ऽ न स । स द न ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ ।

नि प म प । म प ग म । ध नि सां - । सां - नि प

पा ऽ हि म० ॥

म प ग म० ॥

५. (पृ० ४०)-

केदाररागेण त्रितालेन गीयते ।

स्थायी

मा ऽ ध व । य मु ना ऽ । ती ऽ र वि । हा ऽ री ऽ ।

म प ध प । म रे सा - । सा रे सा सा । मे - प - ।

ध्रुवपदम् ॥

अन्तरा

मृ दु रा ऽ । धा ऽ ध र । म धु म धु । म धु क र ।

प - प - । सां - सां - । सां ध सां रें । सां ध प प ।

न ट व र । गि रि व र । धा ऽ ऽ ऽ । री ऽ ऽ ऽ ।

गं मं रे सा । सां सां ध प । ध नि सां रे । सां नि ध प ।

मा ऽ ध व० ॥

म प ध प० ॥

६. (पृ० ५१)-

गौण्डमल्लाररागेण त्रितालेन गीयते।

स्थायी

क नु म म । वि ह र सि । मा ऽ न स । हं ऽ स ऽ ।

²रे ग रे म । ⁰ग रे सा सा । ³रे ग रे ग । ¹॥म प म ग ।

ध्रुवपदम् ॥

अन्तरा

घ न इ व । स त तं ऽ । व ऽ र्ष ति । न य नं ऽ ।

²रे ग रे प । ⁰प - प - । ³म प ध सां । ¹ध प म ग ।

स्फु ट य ति । त डि दि व । र ति रि ह । हृ द यं ऽ ।

²रे ग रे म । ⁰ग रे सा सा । ²रे ग रे ग । ॥म प म ग ।

क नु म म ० ॥
रे ग रे म ० ॥

७. (पृ० ७२)-

आसावरी रागेण त्रितालेन गीयते ।

स्थायी

भा ऽ र त । रा ऽ ज कु । ले ऽ श कृ । पा ऽ लो ऽ ।

⁰रे॒ - सा - । ³रे॒ - म प । ¹॥ध॒ - प प । ²म् प् ध॒ प् ग - ।

ध्रुवपदम् ।

अन्तरा

अ नु प म । म हि म गु । णा ऽ ना ऽ । मा ऽ क र ।

म म प प । ध ध प ध । सां - सां - । सां - - - ।

र स म य । स रि ता ऽ । म यि र - । त्ना ऽ क र ।

सां सां गं गं । रें रें सां सां । नि ध सां रें । सां नि ध प ।

क वि व र । व र द ध । ने ऽ श ऽ ऽ ऽ ऽ ।

म म प प । म प ध सां । सां नि ध प । म ग रे सा ।

भा ऽ र त० ॥

रें - सा - ० ॥

छत्रपतिसाम्राज्यम् ।

अङ्कानुक्रमः

अथ

छत्रपतिसाम्राज्यम् ।

प्रथमोऽङ्कः ।

उत्तुङ्गं सुरनिम्नगावलयितं नानामृगैः संकुलं
संक्रामन्मृगयुर्द्रुतं हिमवतः शृङ्गान्तरं शृङ्गतः ।
सानन्दं विजयाय सत्त्वविजितो दिव्यं निजास्त्रं दिशन्
युष्मानेष पिनाकपाणिरवताल्लीलाकिरातः शिवः ॥१॥

नान्द्यन्ते

सूत्रधारः-(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये, अलमतिपरिश्रमेण। इतस्तावदागम्यताम्।

(प्रविश्य)

नटी-इयमस्मि। आज्ञापयत्वार्यपुत्रः।

एकाकिन्यपि दिक्षु दानवदलान् विद्राव्य या लीलया
स्वाराज्यं विबुधेश्वराय ददती रेजे शिवाङ्कालया ।
नत्वा तां भुवनेश्वरीं भगवतीं प्रेम्णा पदे श्रीधरो
व्याख्यां वाक्यविशारदो वितनुते सर्वाङ्गविद्योतनीम् ॥

अथ नाटकादौ-'यन्नाट्यवस्तुनः पूर्व रङ्गविघ्नोपशान्तये । कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते ॥ उत्थापनादिकान्यङ्गान्यस्य भूयांसि यद्यपि । तथाप्यवश्यं कर्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये ॥' इति विघ्नोपशान्तयेऽवश्यकर्तव्यतयोपपादितां 'आशीर्नमस्क्रियारूपः श्लोकः काव्यार्थसूचकः। नान्दीति कथ्यते' इत्यादिलक्षणलक्षितामाशीरूपां - 'सूत्रधारः पठेन्नान्दीं मध्यमं स्वरमाश्रितः । नान्दीपदैर्द्वादशभिरष्टाभिर्वाप्यलङ्कृताम्॥' इति श्रीमदभिनवगुप्तपादाचार्यमतानुसारेण चतुरस्रतालानुगतां चतुष्पदां नान्दीं सूत्रधारः पठति-**उत्तुङ्गमिति ।***** अथ 'श्लोकः काव्यार्थसूचकः' इत्युक्तत्वादस्य तत्सूचकत्वं निरूप्यते । अत्र शिवपदेन शिवराजः शृङ्गान्तरं शृङ्गत इत्यनेन नानादुर्गाक्रमणं, नानामृगैः संकुलमित्यनेन नानारिपुगणाकीर्णत्वं, मृगयुपदेन रिपुदलानुसरणं, विजयाय दिव्यं निजास्त्रं दिशन्नित्यनेन मन्त्र्यादिभ्यो मायोपायोपदेशः लीलाकिरातपदेन च किरातवत् सह्याद्रिकानने पर्यटनं सूच्यते । पिनाकपाणिपदेन चात्र वीररसस्याङ्गित्वं सूच्यते । अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

नान्द्यन्त इति । अत्र पत्रावलीसंज्ञा नान्दी - 'यस्यां बीजस्य विन्यासो ह्यभिधेयस्य वस्तुनः । श्लेषेण वा समासोक्त्या नान्दी पत्रावलीति सा ॥' इत्युक्तेः ।

सूत्रधार इति । सूत्रं प्रयोगानुष्ठानं धारयतीति सूत्रधारः स्थापकनामा नटः ।

सूत्रधारः-अद्य खलु नटपुरवास्तव्यमूलशङ्करविरचितेनच्छत्रपतिसाम्राज्याख्येन नवेन नाटकेनैषा परिषत्सभाजनीया। तत्प्रस्तूयतां तावन्मल्लाररागेण स्वरतालबद्धा कापि रमणीया गीतिः परिषच्चेतोरञ्जनाय। संप्रति खलु,

तपनांशुतपनशमनो
ऽनिलचपलश्चञ्चलोल्लसितमेघः।
गर्जति वर्षति विकिरति
वनचरनिकरान् प्रसादयति लोकान् ॥२॥

नटी- यदार्यपुत्र आज्ञापयति।

(इति गायति)

(मल्लाररागेण त्रितालेन गीयते)

रसमति रसयति रसा विशाला।
विवलति चपलपयोधरमाला॥
भवति सपदि जनतापविलयनम्।
मृग्यति मृगपतिरुपरि निलयनम् ॥ रस० ॥१॥
नमयति तरुगणमलमासार ः।
क्षुभ्यति गर्जति पारावारः ॥ रस० ॥२॥
नन्दति मुदितो जनपदलोकः।
जलदविलोकनविगलितशोकः। ॥ रस० ॥३॥

सूत्रधारः-(परिषदभिमुखमवलोक्य) आर्ये, एष त्वामभिनन्दति तव संगीतकलाकौशलेन समाराधितो रङ्गः।

छत्रपतीति । छत्रपतेः साम्राज्यं यस्मिंस्तेन छत्रपतिसाम्राज्येन नाटकेन ।

नाटकेनेति । तल्लक्षणमुक्तं दर्पणे - 'नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसन्धिसमन्वितम् । विलासर्द्ध्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः ॥ सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम् ॥ पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः ॥ प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् । दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः । एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा । अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ॥ चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरुषाः । गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तिततम् ॥' इति ।

तपनेति । *** अत्र कारकदीपकमलङ्कारः ।

रसमतीति । *** अत्रान्त्यानुप्रासः शब्दालङ्कारः ।

नटी-आर्यपुत्र यत्सत्यम्

शिष्या यदुत्कर्षमवाप्नुवन्ति
प्रभाव एवैष गुरोरमोघः।
जातः प्रतापोद्धतकौरवाणां
कृष्णोपदिष्टो हि जयो विजेता ॥३॥

सूत्रधारः-(आकर्ण्य) आर्ये श्रृणु तव गीतप्रकर्षेणोज्जृम्भितस्य नवजलधरस्यैतन्मन्दगर्जितम्।

नटी-(सस्मितम्) आर्यपुत्र, नास्त्येतन्मेघगर्जितम्। किंतु संप्रति भूभारावताराय तपनान्वये शङ्करांशेनावतीर्णः शिवराजः। स्वातन्त्र्यभावनया समिद्ध :

पित्रोर्गुरोश्चाधिगतार्थविद्यो
वीरानुरक्तै : सवयोभिरावृतः।
स्वराज्यसंस्थापननिश्चितव्रतो
गर्जत्ययं केसरिणः किशोरः ॥४॥

प्रस्तावना।

(ततः प्रविशति वयस्यैः सह शिवराजः)

एसाजीः-अहो किंनु खलु

प्रवर्तितं यैर्भुवनैकचक्र-
मूर्जस्वलैर्धर्मनयोपबृंहितैः।
ते भारतीया यवनेशमर्दिता
नष्टप्रभा यान्त्यभिधानशेषताम् ॥५॥

तानाजीः-वयस्य स्वोदरपूरणार्थं यवनेशमुपाश्रिता वयमेव तत्र कारणम्।

शिष्या इति । *** अत्र अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः ।

पित्रोरिति । *** अत्र रूपकमलङ्कारः ।

प्रस्तावनेति। अत्रावलगिताख्या प्रस्तावना। तदुक्तं दर्पणे - यत्रैकत्र समावेशात्कार्यमन्यत्प्रसाध्यते। प्रयोगे खलु तज्ज्ञेयं नाम्नाऽवलगितं बुधैः ॥ इति । अत्र नटीगीतरागस्वराणामनुरणनसादृश्योद्भावनेन स्वराज्यसंस्थानोद्यतस्य गर्जतः शिवराजस्य प्रवेशप्रसाधनादिति।

प्रवर्तितमिति । *** उपजातिवृत्तम् ।

बाजीः-अस्थान एव तवायमुपालम्भः। यतो मिथोविद्वेषविभिन्नानामस्माकं यवनेशाश्रयं विना काऽन्या गतिः संभाव्यते। संप्रति तु तैरेव सुनियन्त्रिता वयं सुखेन कालं यापयामः।

एसाजीः-उदारचरितानस्मन्नृपतिगणान् कूटप्रबन्धैरुन्मूलयद्भिस्तैः किं न्याय्यमाचरितम्।

बाजीः-न सन्त्यत्रैकान्तेन दोषभाजो यवनेश्वराः। यतः

परस्परोन्मूलनसंप्रवृत्तान्
विहाय धर्मं विषयेषु सक्तान्।
नित्यं प्रजास्वापहरान्नृपालान्
निगृह्य तैर्गर्ह्यमनुष्ठितं किम् ॥६॥

एसाजीः-अरे किमेवं भ्रान्तोऽसि। धर्मच्युतानेतान्निगृह्य किं धर्मराज्यं स्थापितं यवनेश्वरैः। एतेषामपचारपरम्परास्मरणेन जायते मे रोमहर्षः । संमाननमिषेण राजसभामुपस्थापितस्य सात्मजस्य जाधवरावस्याकाण्डवधेन प्रज्वालितः क्रोधानलोऽद्यापि सर्वत्र गूढं प्रज्वलति।

बाजीः-स्वकृतघ्नताया एवं फलमुपभुक्तं जाधवरावेण। यवनेश्वरस्तु तत्र निमित्तमात्रम्।

शिवराजः-वयस्याः, अलं वचनप्रतिवचनैः। परमार्थतस्तु न केवलमेकान्तेन दोषभाजो दुर्वृत्ता यवनेश्वराः किंतु तत्सधर्माण इदानींतना राष्ट्रद्रुहः क्षत्रेश्वरा अपि। यतः

दुर्वृत्ते नृपतौ तु मन्त्रिसचिवास्त्यक्त्वा नियोगं निजं
स्वच्छन्दं विहरन्ति कामवशगा उद्वेजयन्तः प्रजाः।
राष्ट्रोपप्लवशङ्कयाऽन्यनृपतिं सद्यः श्रयन्ते जनाः
कालेनापचयेन कोशबलयो राष्ट्रं ततो नश्यति ॥७॥

जाधवरावस्येति । अत्रेदमनुसन्धेयं - 'शिवराजस्य मातामहो जाधवरावः स्वस्वामिनं निजामशाहीशमभिद्रुह्य मोगलेशसहायोऽभवत्। ततोऽन्यः कश्चन निजामशाहीराज्यमाक्रम्य स्वायत्तीचकार। अनेन पराजिते मोगलेशबले यदा जाधवरावः पुनरपि निजामशाहीश्वरमाश्रयत्तदा संमाननमिषेण राजसभामाहूयानेन नवेन निजामशाहीश्वरेणासौ सपुत्रो घातितः।' इति।

तद्वयस्याः!
उद्धर्तुमेनां परिपीडितां भुवं
धर्मच्च्युतैरुन्मदराजसंघैः।
साम्राज्यसंस्थापनमन्तरेण
न वर्ततेऽन्याऽर्थकारी प्रतिक्रिया॥८॥

अपिचाततायिभ्यः स्वप्रजानिर्विशेषं प्रजानां परिपालनमेव सर्वत्र राज्ञां परमो धर्मः। अतो धर्मराज्यसंस्थापनोद्यतस्य मम

दुर्वृत्तभृत्याहितराज्यभाराः
प्रजाद्रुहश्चार्थपराः कुशीलाः।
क्षत्रेश्वरा वा यवनेश्वरा वा
सद्यो भविष्यन्ति कृपाणगोचराः ॥९॥

बाजीः-कुमार, अपायसमाकुलो हि बलवतां विरोधः। यतः

विना विवेकं प्रतिपद्य साहसं
परापकर्षं किल यश्चिकीर्षति।
विपद्विभिन्नः स जनोऽल्पसाधनः
क्षुब्धार्णवे नौरिव सीदति स्वयम् ॥१०॥

शिवराजः-वयस्य साहस एव श्रीः प्रतिष्ठिता । यतः

रिपुप्रकर्षेऽप्यनपागतद्युति-
र्जितेन्द्रियः साहसविक्रमोर्जितः।
दिवानिशं यः सततं प्रयत्नवां-
स्तमेव सद्यो वृणुते नृपश्रीः ॥११॥

उद्धर्तुमिति। अत्र मुखसन्ध्यारम्भः। 'यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससंभवा। प्रारम्भेण समायुक्ता तन्मुखं परिकीर्तितम्।' इत्युक्तत्वात्।

आततायिभ्य इति। आततेन विस्तीर्णेन शस्त्रादिना अयितुं शीलमस्य। 'अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रोन्मत्तो धनापहः। क्षेत्रदारहरश्चैतान् षड् विद्यादाततायिनः॥'

अतो धर्मराज्येति। अत्रोपक्षेपात्मकं संध्यङ्गम्। 'काव्यार्थस्य समुत्पत्तिरुपक्षेप इति स्मृतः।' इत्युक्तेः।

पुराऽपि साहसेनैव स्वायत्तीकृतं स्वपितृपैतामहं राज्यं पाण्डुनन्दनैः।

एसाजीः-अये तेजस्विनां तु साधननिरपेक्षैव साध्यसिद्धिः। यतः

स्वल्पोऽप्यग्निर्ज्वलयति न किं काननं शैलसंस्थं
मत्तेभेन्द्रान्विदलति न किं लीलया सिंहशावः।
बालोऽप्यर्को विकिरति न किं ध्वान्तमारात् क्षणेन
सर्वत्रैवाप्रतिहतरयस्तेजसां हि प्रभावः॥१२॥

तानाजीः-कुमार तेजस्विनामपि साहाय्यमन्तरेण तु संशयितैव कार्यसिद्धिः। परंतु

यथा समन्तात् सरितः प्रवाहं
स्रोतांसि सर्वाणि समाविशन्ति।
तेजस्विनं लोकहितैकतत्परं
तथा स्वयं वीरगणाः श्रयन्ते ॥१३॥

शिवराजः-नास्त्यत्र विसंवादः। लोकहिततत्परस्य तु सन्ति निसर्गसिद्धाः सहायाः। तद्भवद्भिः प्रकल्पितैरुपायविशेषैरहं

साहाय्यमासाद्य महद्वनौकसां
ध्रुवं विजेष्ये यवनेशमुन्मदम्।
रघूद्वहाभ्यां कपिसेनया न किं
दशाननस्यापि कृता कबन्धता ॥१४॥

(प्रविश्य)

अनुचरः-विजयतां कुमारः। स्वभगिनीमावुत्तस्य ग्रामं प्रापयन्तं नेताजीं मार्गे समाक्रम्य सबान्धवं च तं निहत्यापहृता तस्य भगिनी बीजापुरसैनिकैः।

(इति निष्क्रान्तः)

साहसेनेति। स्वसैन्यस्य न्यूनत्वेऽपि कौरवैः सह विग्रहारम्भरूपेणेत्यर्थः।

स्वल्प इति। *** अत्र अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः। मन्दाक्रान्तावृत्तम्।

साहाय्यमिति। वने ओकः निवासः येषां तेषां वनौकसां मावळेजनानां। *** यवनेशं बीजापुरेशम्। *** यदि रामलक्ष्मणाभ्यां कपिसेनया दशाननो निहतः तदा वयं सर्वे मिलित्वा मानवसेनया एकाननं बीजापुरेशं ध्रुवं विजयेष्यामहे इति किमु वक्तव्यम्। अत्र दृष्टान्तालङ्कारः। उपजातिवृत्तम्।

शिवराजः-(सरोषम्) अरे कथमेतादृशमत्याहितं क्षत्रकुलप्रसूतैरस्माभिर्मर्षणीयम्। वयस्याः

आर्तानां परिपालनाय सहसा शस्त्रं न येनोद्धृतं
विप्राणां व्रतिनां च वेदविदुषामाराधने न स्थितम्।
राज्ञामुत्पथगामिनां प्रमथने युद्धं न चैवादृतं
क्षात्रं जन्म धिगस्य राघवयशःप्रज्वालिते भारते॥१५॥

तदद्य धर्मराज्यसंस्थापनेन संपादनीयमस्मज्जीवितसाफल्यम्।

एसाजीः-अभिनन्द्यते कुमारभाषितम्। (दूरं विलोक्य) एष दादोजीदेशमुख इत एवाभिवर्तते।

(प्रविश्य)

दादोजीः-अप्यनामयं कुमारस्य।

शिवराजः-स्वागतं देशमुखप्रवरस्य। समन्तात् प्रवृत्ते लोकविप्लवे कुतोऽनामयं क्षत्रियाणाम्।

दादोजीः-तथ्यमेवाभिहितं कुमारेण। यतो लोकसंग्रहार्थमेव ध्रियन्ते क्षत्रियस्य प्राणाः। कुमार त्वदधीन एवास्त्यस्य महतः कार्यस्योपक्रमः । तद्भविष्याम्यहमत्र यावज्जीवं तव सहायः।

शिवराजः-अनुगृहीतोऽहं भवतां सौजन्येन। वयस्याः! प्रथमं तावदस्माभिर्बीजापुरेशहस्तगताः सह्याद्रिदुर्गाः कथमपि स्वायत्तीकर्तव्याः।

बाजीः-प्रचुरकोशबलाढ्योऽयं वर्तते बीजापुरेश्वरः। तत्

शक्तित्रयोत्कर्षसमेधितानां
सामाद्युपायैः परिरक्षितानाम्।

आर्तानामिति । *** शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

शक्तित्रयेति । शक्तित्रयस्य प्रभुमन्त्रोत्साहशक्तीनामुत्कर्षेण समेधितानां समृद्धानां सामाद्युपायैः सामदानभेददण्डैः परिरक्षितानां षाड्गुण्यं 'संधिर्नाविग्रहो यानमासनं द्वैधमाश्रयः' तस्य योगेन उन्मथिताः द्विषः यैः तेषां यैः तेषां विद्वेषतः किं श्रेयः उपाश्रयेम न किमपीत्यर्थः । इन्द्रवज्रावृत्तम् ।

षाड्गुण्ययोगोन्मथितद्विषां किं
विद्वेषतः श्रेय उपाश्रयेम ॥१६॥

एसाजीः-बलवतामप्यभिभवायोज्झृम्भते परा संघशक्तिः। यतः

प्रभावमुख्या न हि शक्तयस्तथा
संपादयन्तीप्सितकार्यसिद्धिम्।
यथा रिपौ कोशबलप्रमत्ते
नयप्रयुक्ता परसंघशक्तिः ॥१७॥

तानाजीः-उदात्तचरितानामेव परिपन्थिनामभियोग उपयुक्ता एताः शक्तयो न त्वधमानाम्। अपिच

मन्त्रगुप्तिविरहाद्गणसंघौ
युक्तितस्तु भवतः सुखभेद्यौ।
माययाऽधमपरप्रतिघातः
श्रेयसे नयविदां नृपतीनाम् ॥१८॥

तत्पञ्चमोपायमात्रसाध्या भविष्यन्त्यधमारातयः।

शिवराजः-ममाप्येतदेवास्त्यभिमतम् । यतः

परे तु तेजस्विनि धर्म्यवृत्तौ
सामाद्युपायाः सफला भवन्ति।
न विद्यते दुर्नयशालिनां जये
मायाप्रयोगादपरा प्रतिक्रिया॥१९॥

प्रभावेति। प्रभावः मुख्यः प्रधानः यासु ताः प्रभुमन्त्रोत्साहशक्तयः कोशबलाभ्यां प्रमत्ते रिपौ तथा ईप्सितकार्यसिद्धिं न संपादयन्ति यथा नयेन अर्थशास्त्रविहितरीत्या प्रयुक्ता परा उत्कृष्टा चासौ संघशक्तिश्च कार्यं संपादयतीत्यर्थः। उपजातिवृत्तम्।

मन्त्रेति। गणः क्षत्रियाणां वणिजां वा, संघः जानपदानां तौ मन्त्रस्य गुप्तेः रक्षणस्य विरहात् मन्त्रभेदादित्यर्थ; युक्तितः सामाद्युपायैः सुखभेद्यौ भवतः। तथा चोक्तं महाभारते - 'चारमन्त्रबलादानैः सामदानविभेदनैः। क्षयव्ययभयोपायैः प्रकर्षन्तीतरेतरम्॥' इति। अतः मायया छलप्रयोगैः अधमः यः परः रिपुः तस्य प्रतिघातः नयविदां नृपतीनां श्रेयसे भवतीत्यर्थः। स्वागतावृत्तम्।

पञ्चमेति। सामदानभेददण्डमायेन्द्रजालोपेक्षासु पञ्चमो मायोपायः।

अपिच

धर्मतः प्रतिविधानमात्मनो
विप्लवाय वृजिनावृते रिपौ।
विष्णुनाऽपि बलिनः सुरद्विषः
घातिताः प्रतियुगं स्वमायया ॥२०॥

सर्वे-सर्वथाऽभिनन्द्यते कुमारवचनम् ।

शिवराजः-तदेष भवन्मित्रपदमारूढोऽहमद्य प्रतिजाने यत्

मानं धनं राजविलासभोगान्
मित्राणि दारानपि जीवितं च।
हुत्वा रिपुज्वालितहव्यवाहने
संस्थापयिष्ये मम धर्मराज्यम् ॥२१॥

सर्वे-कुमार एतद्भीष्मप्रतिज्ञासिद्धये बद्धपरिकरानस्मान्

दुर्भेद्यदुर्गाक्रमणे प्रयाणे
रणाङ्गणे दुष्करसाहसे वा।
अवेहि राजंस्तव पार्श्ववर्तिनः
स्वजीवितेऽस्मिन्निरपेक्षतां गतान् ॥२२॥

शिवराजः-वयस्याः! भविष्यन्ति भवन्त एवाधिकारपदभागिनो मम धर्मराज्ये। यतः

समानविद्यानयविक्रमेषु
राष्ट्रैकभक्तिप्रथितान्वयेषु।
जितेन्द्रियेष्वेव निजाधिकारं
विभज्य साम्राज्यमुपैति भूमिपः॥२३॥

धर्मत इति । वृजिणावृते पापात्मनि रिपौ धर्मतः प्रतिविधानं आत्मनः स्वस्य विप्लवाय विनाशाय भवति । लोकसंग्रहार्थं मायाप्रयोगो न दोषायेत्याह । **विष्णुनेति** । अलोकसाधारणविक्रमशालिना विष्णुना अपि बलिनः सुरद्विषः दानवाः प्रतियुगं स्वमायया घातिताः । रथोद्धतावृत्तम् ।

मानमिति । अत्राध्यवसायो नाम नाट्यालङ्कारः । परिकराख्यं च सन्ध्यङ्गम् ।

(ततः प्रविशत्यपटीक्षेपेण दादाजीकोंडदेवः)

शिवराजः-(सप्रश्रयम्) स्वागतं भगवतः।

दादाजीः-वत्स, विरमास्मात्साहसाध्यवसायात्। एवं कुलक्रमागतवृत्तिपरित्यागात्तु तवानर्थापत्तिरेवेति तर्कये।

शिवराजः-भगवन् यवनेशविद्वेषप्रभवादनर्थशतादपि श्रेय एवेति मे बलवान् प्रत्ययः। यतः

धर्मध्वंसधृतव्रतान् परधने लुब्धान् मृदौ निर्दयान्
मन्दान् विक्रमशालिनि प्रतिभटे कूटप्रयोगोत्कटान्।
विश्वस्तेऽपि च हिंस्रकान् कुलवधूसंकर्षणे सोत्सवान्
गोविप्रेष्वपचारिणः कथमिमान् देवद्विषः संश्रये ॥२४॥

दादाजीः-वत्स शिवराज, सम्यगवधारितयवनेशस्वभावमद्य त्वामवरोद्धुं नोत्सहे। तच्छृणु मे परमं नयबचनं यदाश्रयणेन निष्प्रत्यूहा भविष्यन्ति तवाभिमतार्थसिद्धयः। त्वं तावत्

अन्योऽन्येर्ष्याकलुषितधियः संप्रयुञ्जन्नृपालान्
प्रीत्युद्रेकाद्वनचरपतीन् प्रीणयन् सिद्धलक्ष्यान्।
दानैर्मानैर्मधुरवचनै रञ्जयन् लोकवीरान्
लीलायुद्धैर्जय जनपदान् दुर्जयांश्चाद्रिदुर्गान् ॥२५॥

कुमार, सर्वत्र मन्त्रगुप्त्यधीन एव विजयः। तन्मन्त्रसंवरणे सदैव त्वया सावधानेन भवितव्यम्। यतः

मन्त्रो विहङ्गैः पशुभिश्च गृह्यते
तलैश्च कुड्यैः पटलैर्निशम्यते।
समीरणेनाऽपि सुदूरमुह्यते
क्वचिन्निजैराप्तजनैस्तु भिद्यते ॥२६॥

धर्मेति। *** शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

अन्योऽन्येति। *** मन्दाक्रान्तावृत्तम्। अत्रोपदिष्टं नाम नाट्यलक्षणम्।

एवं च सुगुप्तमन्त्रस्त्वं
साम्ना क्षत्रपुलिन्दवृन्दनृपतीनापादय स्वानुगान्
निःशङ्कं नयसंश्रितो बलवतो दृप्तान्रिपून्धर्षय।
धूर्तारातिविकल्पिते प्रतिविधौ मा स्म प्रमत्तो भवः
स्वातन्त्र्यं समुपास्स्व मन्त्रपरमः साम्राज्यमास्थापय ॥२७॥

शिवराजः-भगवन्नैष उपदेशः किंतु साक्षाद्वर एव। अतो भगवदनुग्रहेणाचिरेण संपादयिष्ये साम्राज्यसिद्धिम्।

दादाजीः-वत्स सफलाः सन्तु ते नयोपक्रमाः।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-दिष्ट्या गुरुचरणा अप्यत्रानुकूलाः।

तानाजीः-(दूरं विलोक्य) कुमार समुपागतोऽयं जराजर्जरिताङ्गस्तोरणादुर्गपालः।

(प्रविश्य)

तोरणादुर्गपालः-(शिवराजमुपसृत्य) कुमार, धर्मराज्यसंस्थापनोद्यतं त्वां निशम्य तीर्थयात्राप्रवणेन मया त्वदायत्तः क्रियते मम तोरणादुर्गः । त्वं तावत्तत्र स्थित्वा प्रवर्तय तव शासनम्।

शिवराजः-यदत्रभवते रोचते। श्व एवाहं तत्र प्रस्थास्ये।

तोरणादुर्गपालः-वत्स चिरं जीव। पूरयतु तव मनोरथं भगवती परदेवता।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-दिष्ट्या हस्तगतोऽस्माकं तोरणादुर्गः। एवं
अनायासेन कार्यस्य यस्य सिद्ध्यत्युपक्रमः।
आसमाप्तेर्ध्रुवं तस्य व्याघातो नैव कुत्रचित् ॥२८॥

तानाजीः-भवान्यनुग्रहशालिनस्ते नास्ति किमप्यसाध्यं नाम।

साम्नेति । क्षत्राः क्षत्रियाः पुलिन्दाः वनेचराः तेषां वृन्दानि *** मन्त्रः मन्त्रिभिः संमन्त्र्य निर्णीतः अर्थः स एव परमः प्रधानः यस्य । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

प्रस्थास्य इति । अत्र करणं नाम संध्यङ्गम् ।

दिष्ट्येति । अत्र प्राप्तिर्नाम संध्यङ्गम् ।

भवानीति । अत्र विलोभनं नाम संध्यङ्गम् ।

एसाजीः-कुमार तोरणाच्छद्मना तु साम्राज्यश्रीमन्दिरस्य तोरणमेव त्वया समासादितम्। अतः परं ते भद्रमेव पश्यामि।

शिवराजः-वयस्याः, भवतां साहाय्येन संनिहितैव मम साम्राज्यसिद्धिः। तद्युष्माभिर्महार्होपायनैर्वशीकृत्य चाकणकोण्डनेदुर्गपालौ तदधिष्ठितौ दुर्गौ संपादनीयौ। अहमपि नयेन पुरन्दरदुर्गमात्मसात्कृत्वा दुर्वृत्तं सुपेप्रान्ताधिपं मातुलं निगृह्णामि।

सर्वे-यदाज्ञापयति कुमारः।

शिवराजः-साधयामस्तावत्स्वनियोगमनुष्ठातुम्।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ समाप्तोऽयं **साम्राज्योपक्रम**नामा प्रथमोऽङ्कः॥

भवतां साहाय्येनेति। अत्र परिन्यासो नाम संध्यङ्गम्।

प्रथमोऽङ्क इति। तल्लक्षणमुक्तं नाट्यशास्त्रे - 'अङ्क इति रूढिशब्दो भावैश्च रसैश्च रोहयत्यर्थान्। नानाविधानयुक्तो यस्मात्तस्माद्भवेदङ्क।॥' इति।

इति श्रीछत्रपतिसाम्राज्यटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां
साम्राज्योपक्रमनामा प्रथमोऽङ्कः समाप्तः।

द्वितीयोऽङ्कः।

(ततः प्रविशत एसाजीस्तानाजीश्च)

एसाजीः-अप्यभिनन्दितं देवस्याधिपत्यं चाकणदुर्गपालेन।

तानाजीः-अथ किम्। अपि च तस्य राजनिष्ठापरितुष्टेन देवेन पुनः स एव तत्राधिकारपदे स्थापितः।

एसाजीः-मयाऽपि स्वामिनियोगानुरोधेन महार्होत्कोचप्रदानेन वशीकृत्य कोण्डनेदुर्गपालं तत्र प्रवर्तितं महाराजशासनम्।

तानाजीः-देवेनापि परस्परविनाशायोद्यतान् पुरन्दरदुर्गपालात्मजाननुकूलान्विधाय रिक्थांशविभागेन च तान्संतर्प्य स्वायत्तीकृतः पुरन्दरदुर्गः। अनन्तरं च सहसा विजित्य स्वामिना कारागृहे निक्षिप्तो दुर्विनीतो निजमातुलः।

एसाजीः-अहो दैवं सर्वथाऽनुकूलमिति तर्कये।

तानाजीः-एवमेतत्। अन्यथा कथं नेताजीसदृशाः प्रवीराः परोक्षेऽपि स्वामिकार्यं साधयेयुः।

एसाजीः-(सविस्मयम्) अये किमुच्यते। नेताजीस्तु यवनसैनिकैर्निहत इति लोकप्रसिद्धिः।

तानाजीः-तं त्वपगतचेतनं मत्वा परावृत्ते यवनसैनिकगणे प्रकृतिमापन्नः स प्रच्छन्नमुपेत्य माथेरानयतीन्द्रं तदधिगतशस्त्रास्त्रप्रयोगकौशलस्तदादेशानुरोधेन साम्राज्यसंस्थापनोद्यतं स्वामिनमन्वेष्टुं यतिच्छद्मना राजमाचीदुर्गं प्रातिष्ठत। मार्गे च तद्दुर्गमवरोद्धुं नियुक्तस्य बीजापुरसैन्यस्य नायकं बन्दीकृत्य

यतिवसनधरो दृढायताङ्गः

प्रबलरुषा ज्वलितः स कुन्तपाणिः।

यतिवसनेति। *** नियमितो निगृहीतो यो यवनेशस्य बीजापुरेशस्य सादी अश्ववारो यवनेशश्यालस्तेन जुष्टः सेवितः *** राजदुर्गं राजमाचीदुर्गं विवेश। पुष्पिताग्रावृत्तम्।

नियमितयवनेशसादिजुष्टः
सरभसमेत्य विवेश राजदुर्गम् ॥१॥

एसाजीः-विक्रमैकरसा हि तेजस्विनामुपक्रमाः।

तानाजीः-ततश्च स्वामिप्रवृत्तिमुपलभ्य यवनवेशधरः सोऽतिक्रम्यारातिसेनानिवेशं लोहगडदुर्गावस्थितेन स्वामिना समगंस्ताभवच्च सद्य एव स्वामिनो विश्रम्भभाजनम्। संप्रति खलु द्वित्राण्यहानि तेन सह किमपि मन्त्रयमाणस्तस्मिन्नेव तिष्ठतेऽस्मन्महाराजः।

एसाजीः-दिष्ट्या प्रतिक्षणमेधते स्वामिनः प्रभावः।

तानाजीः-(ऊर्ध्वं विलोक्य) अहो प्रभाता रजनी। साधयामस्तावच्छस्त्रास्त्रपरिचयं कारयितुं नवसैनिकान्।

एसाजीः-तथा।

(इति निष्क्रान्तौ)

विष्कम्भकः।

(ततः प्रविशति तोरणादुर्गोपवनस्थितः शिवराज)

शिवराजः-अहो

अपास्य दूरं मलिनां तमस्विनीं
क्षणेन तिर्यक् प्रसृतैर्नवांशुभिः।
लताप्रतानाम्रनिकुञ्जमण्डिता
दिवाकरेणारुणिता वनस्थली ॥२॥

तथैव स्वातन्त्र्यसूर्येणापि रञ्जितानि सह्याचलनिवासिनां मावळेजनानां मनांसि। संप्रति तेषा चत्वारिंशत्सहस्राणि प्रविविक्षन्ति मम सेनानिवहम्। किंत्वल्पधनो

तस्मिन्निति। तस्मिन्नेव तिष्ठते तमेव विवादपदनिर्णेतृत्वेनाश्रयतीत्यर्थः।

विष्कम्भक इति। तल्लक्षणमुक्तं दर्पणे-वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः। संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥ इति ॥

अपास्येति। *** वंशस्थवृत्तम्।

किंत्वल्पधन इति। अत्र प्रतिमुखसन्ध्यारम्भः। तदुक्तं दर्पणे-'फलप्रधानोपायस्य मुखसंधिनिवेशिनः। लक्ष्यालक्ष्य इवोद्भेदो यत्र प्रतिमुखं च तत् ॥' इति।

नोत्सहे तान्विनियोक्तुम्। अपिच द्वीपान्तराद्विक्रयार्थं संप्राप्तं महान्तं शस्त्रास्त्रायुधसंचयं सार्धलक्षेणाऽपि क्रेतुं प्रार्थयते मां फिरङ्गी वणिक्पतिः। यदृच्छयोपेतोऽयमवसरो मया कथं ग्रहीतव्यः। अहो

स्वातन्त्र्यवह्निर्ज्वलितः समन्ततः
सह्याचलो मोदयते मनो मे।
वनेचरान् सैन्यगणे नियोक्तुं
न चास्म्यलं तन्नितरां दुनोति ॥३॥

(पुरतो विलोक्य) एष गृहीतसंकेतो वीर इत एवाभिसर्पति।

(प्रविश्य)

नेताजीः-विजयतां देवः।

शिवराजः-अपि चिन्तितस्त्वया दुर्गसंतरणोपायः।

नेताजीः-प्रथमं तावदादिशतु देवो मां राजमाचीदुर्गं प्रस्थातुम्। अल्पैरपि भटैरहं नाशयिष्यामि तद्दुर्गावरोधकगणम्।

शिवराजः-वीर संप्रति तु कथमपि शस्त्रास्त्रपरिक्रयेणाधिष्ठानबलं संनाह्य तदजय्यं विधातुं स्वायत्तीकृतानां च दुर्गाणां प्राकारपरिखादिभिर्दुष्प्रधर्ष्यत्वमापादयितुमतीवोत्कण्ठितोऽस्मि।

नेताजीः-देव युगपत्समुपस्थितानां व्यवसायानां क्रमेणैवोपपन्नो विनियोगः। तत्पूर्वं राजमाचीरक्षण एव तावदात्मानमभिनिवेशयतु देवः। एवमुत्तरोत्तरविजयेन भविष्यति देवस्य साम्राज्यसिद्धिः।

शिवराजः-(निःश्वस्य) सर्वथा साधनविकलस्य कुतो मे साम्राज्यसंस्थापन-सौभाग्यम्। यतः

विना भृतिं भृत्यगणाः प्रिया मे
विनाग्रभित्तिं प्रवराश्च दुर्गाः।

स्वातन्त्र्येति। *** च वनेचरान् मावळेजनान् *** उपजातिवृत्तम्। अत्र हर्षविषादयोर्युगपदाविर्भावाद्भावसन्धिः। तदुक्तं दर्पणे-'भावस्य शान्तावुदये संधिमिश्रितयोः क्रमात्। भावस्य शान्तिरुदयः संधिः शबलता मता॥' इति। अत्र च विधानाख्यं संध्यङ्गम्।

साधनविकलस्येति। अत्र तापनं नाम संध्यङ्गम्।

विना बलं मे प्रबलोऽन्तरात्मा
सर्वेऽवसीदन्ति सह प्रवीर ॥४॥

केवलमिदानीमवशिष्यते चरमं विधेयम्। त्वया सह भवानीमन्दिरमुपाश्रित्याभीष्टं संपादयितुमद्य प्रातरादिष्टोऽस्म्यहं भगवत्या परदेवतया। यदि तत्रापि मे भाग्यविप्लवस्तदानीं तु

त्वय्येव वीराग्रसरे समग्रां
विन्यस्य राष्ट्रोद्धरणप्रवृत्तिम्।
अकिंचनो दण्डकपालपाणिः
परिव्रजिष्यामि परात्मनिष्ठः ॥५॥

नेताजीः-देव धर्मराज्यसंस्थापनोद्धृतकृपाणस्य तवास्थान एवायं निर्वेदः। यतः

अन्तरायनिकषैः परीक्षिताः
प्राप्नुवन्ति मनुजा महत्पदम्।
विघ्नविक्लवधियो निरुत्सवा
हेलयापि निपतन्त्यधीश्वराः ॥६॥

तद् धैर्यमवलम्ब्य साम्राज्यसंपादनार्थं बद्धपरिकरो भव। तवानुशासनपरेणैव मया वर्तितव्यमित्यादिष्टोऽस्मि भगवता सिद्धतापसेन। न चैतदन्यथा भवितुमर्हति। तद्

अनन्यभावः परदेवतायां
मनः समाधाय लभस्व वाञ्छितम्।
किमाश्रितः कल्पतरुं कदाचि-
न्निवर्तते कोऽप्यनवाप्तकामः ॥७॥

शिवराजः-वीर सम्यगनुबोधितोऽस्मि। कः कोऽत्र भोः।

(प्रविश्य)

अङ्गरक्षकः-आज्ञापयतु देवः।

शिवराजः-भवानीमन्दिरमार्गमादेशय।

अङ्गरक्षकः-इत इतो देवः।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

एतन्मन्दिरद्वारं तत्प्रविशतु देवः।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-वीर अत्र स्थित्वा मां प्रतिपालय। यावदहं भगवतीमाराध्य प्रत्यावर्ते।

नेताजीः-तथा।

(इति द्वारदेशमधितिष्ठति)

शिवराजः- (मन्दिरं प्रविश्य साश्रु साष्टाङ्गं प्रणिपत्य स्तौति)

(कर्णाटरागेण त्रितालेन गीयते)

तारय तव सुतमम्ब भवानि॥
प्रबलयवनरिपुगलितविभावम्।
प्रलयपयोनिधिविलुलितनावम्।
पालय परममृडानि॥ तारय० ॥१॥
विबुधनुते वनुते तव दासः।
विजयरमां हुतदिव्यविलासः।
वारय मम विषमाणि ॥ तारय० ॥२॥
त्वमसि ममैकं परमं शरणम्।
कलयसि यदि हितमार्योद्धरणम्।
दारय विघ्नशतानि॥ तारय० ॥३॥
वितरसि यदि नहि करुणालेशम्।
धृत्वा ममाटनं यतिवेषम्।
निश्चितमयि शर्वाणि॥ तारय० ॥४॥

तारयेति । *** यदि आर्याणां भारतीयानामुद्धरणं हितं श्रेयस्करं कलयसि मन्यसे तदा मम विघ्नशतानि दारय नाशयेत्यर्थः । ***

(आकाशे)

मा शुचः सहायसाध्यास्ते सिद्धयः।

शिवराजः-(आकर्ण्य) शरणागतवत्सले त्वदनुग्रहपरवशा एव मे प्रार्थितसिद्धयः। (प्रणम्य द्वारदेशमुपसृत्य) वीर त्वदधीना मे सिद्धय इति भगवत्या आदेशः। तन्ममाङ्गरक्षकबलेनाक्रम्य बीजापुरप्रदेशमाहरापेक्षितं हिरण्यसंचयम्।

नेताजीः-देव पुरोवर्तिजीर्णदेवालयकोणप्रस्तरप्रच्छन्नो महान् निधिस्त्वयोत्खातव्य इति मम पुनरान्तरः प्रत्ययः।

शिवराजः-न मृषा भवितुमर्हति तवायं प्रतिभासः। यतः

संयतेन्द्रियमनाः प्रसन्नधीः
प्रत्यगात्मनि च यः समाहितः।
तस्य यत्स्फुरति भाविदर्शनं
नैव तद्भवति संशयावहम् ॥८॥

कः कोऽत्र भोः।

अङ्गरक्षकः- आज्ञापयतु देवः।

शिवराजः- शिल्पिमुख्यं द्रष्टुमिच्छामि।

अङ्गरक्षकः- तथा।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-वीर माथेरानयतीन्द्रवचसा खलु प्रोत्साहितोऽस्मि।

(प्रविश्य)

शिल्पिमुख्यः-विजयतां देवः।

शिवराजः-(जीर्णदेवालयं निर्दिश्य) तत्र खनित्वा यदुपलभ्येत तत्सत्वरमिहाहर।

शिल्पिमुख्यः-तथा।

(इति खनित्वा भाण्डान्याहृत्य)

दिष्ट्याऽधिगतान्येतानि द्रव्यपूर्णानि भाण्डानि निखातभूमिविवरात्।

(इति स्थापयति)

संयतेति । *** रथोद्धतावृत्तम् ।

शिवराजः-रेचयैतान्यत्र शिलापट्टे।

शिल्पिमुख्यः-तथा।

(इति रेचयित्वा निष्क्रामति)

नेताजीः-देव बहुमूल्यो लक्ष्यतेऽयं महानिधिः।

शिवराजः-अये नैष निधिः किंतु साक्षात् स्वातन्त्र्यदेवतैवास्मत्पुरतः समुल्लसति। वीर

अवेहि नैनं पुरतः प्रसारितं
हिरण्यरत्नप्रचयं महानिधिम्।
एतत्त्वमोघायुधसंचयप्रदं
साम्राज्यलक्ष्म्या वपुरेव मूर्तिमत् ॥९॥

नेताजीः-देव सर्वत्र धैर्यमूलान्येव भद्राणि।

शिवराजः-एवमेतद्। कः कोऽत्र भोः।

(प्रविश्य)

अङ्गरक्षकः-आज्ञापयतु देवः।

शिवराजः-मणिकारं द्रष्टुमिच्छामि।

अङ्गरक्षकः-तथा।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-संप्रति प्रभविष्याम्यहं संनाहयितुं मम वीरनिवहान्। अथ कियत्परिमाणोऽयं निधिः परिकल्प्यते।

नेताजीः-देव पर्याप्त एवायमस्मत्प्रयोजनाय।

(प्रविश्य)

मणिकारः-विजयतां देवः

शिवराजः-अवधार्यतामस्य कोशसंचयस्य मूल्यपरिमाणम्।

मणिकारः-(निरीक्ष्य) देव सूक्ष्ममानेनायं दशलक्षहिरण्यार्घो भवितुमर्हति।

शिवराजः-तावत्पत्र आरोप्य विस्तरेण दर्शयास्य मूल्यपरिच्छेदव्यञ्जकं

अवेहीति । *** उपजातिवृत्तम् । अत्रापह्नुतिरलङ्कारः ।

परिसंख्यानम्।

मणिकारः-तथा।

(इति यथोक्तं कुरुते)

शिवराजः-वीर महानेषोऽनुग्रहः परदेवतायाः । यतः संप्रति खलु मम

शस्त्रास्त्रसंनद्धरणोत्सुका भटाः

सद्यः पराहत्य परप्रवीरान्।

अत्युत्कटं मर्मविदारणं द्विषां

प्रकाशयिष्यन्त्यतुलं पराक्रमम् ॥१०॥

(प्रविश्य)

अङ्गरक्षकः-एष द्विभाषसमेतः फिरङ्गी देवं द्रष्टुमिच्छति।

शिवराजः-शीघ्रमेनं प्रवेशय।

अङ्गरक्षकः-तथा।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

द्विभाषः-(फिरङ्गिणं निर्दिश्य) एष महाराजस्य सुप्रभातमावेदयति ।

शिवराजः-प्रीतोऽस्म्यस्य समुदाचारेण। क्रीतो मया सार्धलक्षेणायुधसंचय इति तमावेदय।

द्विभाषः-तथा।

(इति यथोक्तं कुरुते)

शिवराजः-अपि सुव्यवस्थितोऽयं व्यवहारः।

द्विभाषः-अथ किम्। एष पुनर्महाराजस्यानुग्रहमभिनन्द्य गमनायानुज्ञां याचते।

मणिकारः-(उपसृत्य) एतत्सविस्तरं परिसंख्यानम्।

(इति पत्रमर्पयति)

शिवराजः-(पत्रमादाय वाचयित्वा) द्विभाष आगामुकमप्यायुधसंचयं वयमेव क्रेष्याम इति वणिक्पतिमगवमय।

द्विभाषः-तथा।

(इति यथोक्तं कुरुते)

शिवराजः-अये मणिकार प्रापयैतावावेशिकमन्दिरम्। मद्वचनाच्चोच्यतां तत्राधिकृतोऽध्यक्षो यदयं वैदेशिकः सपरिवारमातिथ्येन संमाननीय इति।

मणिकारः- तथा ।

(इति निष्कान्तास्त्रयः)

शिवराजः-कः कोऽत्र भोः।

(प्रविश्य)

अङ्गरक्षकः-आज्ञापयतु देवः।

शिवराजः-मन्त्रगृहमार्गमादेशय।

अङ्गरक्षकः-इत इतो देवः।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

एतन्मन्त्रगृहद्वारं प्रविशतु देवः सानुगः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशन्ति मन्त्रगृहावस्थिता मन्त्रिणः)

शिवराजः-(प्रविश्य) मन्त्रिणः दिष्ट्या संपन्नोऽस्माकं मनोरथः।

मन्त्रिणः-(उत्थाय) वर्धतां देवोऽभीष्टसंपदा।

(इति शिवराजमनु सर्व उपविशन्ति)

शिवराजः-सचिव त्वं तावदविलम्बेन निर्माय नूतनं दुर्भेद्यप्राकारादिपरिवेष्टितं राजगडदुर्गमापादयास्य राजधानीयोग्यताम्। तावत्तत्र स्थिता वयं राजकार्याणि पश्येम।

सचिवः-यदाज्ञापयति देवः।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-वीर त्वमपि फिरङ्गिणः क्रीतैरायुधैः संनाह्य मावळेजनवाहिनीं कल्याणजयार्थमस्माभिर्नियुक्तमाबाजीवीरं संप्रतिपद्यस्व। सद्य एव

सुतीक्ष्णभल्लासिधनुःसमूर्जिता
विशालतूणीपरिणद्धपार्श्वाः।
स्वातन्त्र्यसंभावनया समेधिताः
प्रयान्तु मे वन्यपदातिसंघाः ॥११॥

नेताजीः-यद्देव आज्ञापयति।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-अमात्य, त्वयि विनिहितराज्यभारोऽहमपि तावत्सेनानायकेन सह कोंकणजयार्थं प्रतिष्ठे। तदवेक्षस्वाद्यप्रभृति सर्वाणि राजकार्याणि।

तानाजीः-यदाज्ञापयति देवः।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ समाप्तोऽयं **निधिसंप्राप्ति**नामा द्वितीयोऽङ्कः॥

सुतीक्ष्णेति । *** उपजातिवृत्तम् ।

इति श्रीछत्रपतिसाम्राज्यटीकायां सवाङ्गविद्योतन्यां निधिसंप्राप्तिनामा द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः ।

तृतीयोऽङ्कः।

(ततः प्रविशति राजगडदुर्गप्रासादावस्थितो मन्त्रिद्वितीयः शिवराजः)

शिवराजः-मन्त्रिन् सुव्यवस्थितेऽपि राज्यतन्त्रे कथमद्यापि निर्वृतिं न व्रजति मेऽन्तरात्मा।

रात्रिंदिवं रिपुगणान् शतशो निहत्य
नीतो वशं प्रसभमेष मया प्रदेशः।
नायं तथापि परिपन्थिवधाकुलो मे
तृप्तिं प्रयाति नितरां तृषितः कृपाणः ॥१॥

मन्त्री-देव न खल्वल्पीयसाऽर्थेन परितुष्यन्ति तेजस्विनः।

उद्भास्य शैलशिखरोच्छ्रितपादपाग्रं
तेजोनिधिः किमुदितो विरमेद्विवस्वान्।
अप्युद्गतो गगनमध्यपदं क्रमेण
धाम्ना निजेन निखिलं भुवनं चकास्ति ॥२॥

संप्रति खल्वस्मदुपक्रमसंरब्धो बीजापुरेशो महता सैन्येन सहसाऽस्मानभियोक्ष्यत इत्याशङ्कते मे हृदयम्।

शिवराजः-मयाऽप्येतदेव विमृश्यते।

(नेपथ्ये)

वैतालिकः-विजयतां देवः।

जनपदहितदक्षो नीतियोगप्रतिष्ठो
विदलितरिपुसंघः स्वाभिलाषे वितृष्णः।

द्वितीयाङ्कान्ते-'यावत्तत्र स्थित्वा राजकार्याणि पश्येम' -इति शिवराजेन सूचितस्य तृतीयाङ्कस्य पूर्वाङ्काविभागत इवावतीर्णत्वादङ्कावतारोऽत्रार्थोपक्षेपकः । तदुक्तं दर्पणे - 'अङ्कान्ते सूचितः पात्रैस्तदङ्कस्याविभागतः। यत्राङ्कोऽवतरत्येषोऽङ्कावतार इति स्मृतः ॥' इति।

रात्रिंदिवमिति । *** वसन्ततिलकावृत्तम् ।

उद्भास्येति । ***वसन्ततिलकावृत्तम् ।

जनपदेति । *** हे तपनकुलस्य सूर्यवंशस्य मणे । मालिनीवृत्तम् ।

शरणमुपगतानां दुर्गतानां शरण्य-
स्तपनकुलमणे त्वं राजसेऽमोघवीर्यः ॥३॥

शिवराजः-(आकर्ण्य) अहो नयप्रयोगाश्रयणेन सुखसाध्या भविष्यन्त्यरातय इति नास्त्यत्रौत्सुक्यकारणम्। तथापि सर्वात्मना बलोपचय आधीयतां यत्नः।

मन्त्री-पूर्वमेव मयादिष्टः सेनानायकः पदातिदलसंग्रहाय।

(प्रविश्य)

द्वारपालः-विजयतां देवः। एष कोंकणप्रान्तात् संप्राप्तो गोंवळकरसामन्तो द्वारि तिष्ठति।

शिवराजः-प्रवेशयैनम् ।

द्वारपालः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

सामन्तः-विजयतां महाराजः । सर्वत्र विजयशालिनो महाराजस्य प्रणयपुरःसरमुपायनीक्रियत एष भवानीखङ्गः ।

देवानां नवविजयध्वजो रणाग्रे
दैत्यानां प्रलयकृदेव धूमकेतुः ।
पापानां हृदयविदारणो महोग्रः
खङ्गोऽयं तव परिकल्पितो भवान्या ॥४॥

तत्स्वीकृत्यैनमनुगृहाण तव दासजनम् ।

शिवराजः-(सानन्दं स्वीकृत्य निरीक्ष्य च) भगवति परदेवते,

नैष प्रभाज्वलिततीक्ष्णकरालधारो
निस्त्रिंश एव कटिबन्धतटावलम्बी ।
किं त्वम्ब दुष्कृतवधार्थमनन्तमूर्तेः
खड्गात्मना परिणतोऽस्ति तवावतारः ॥५॥

देवानामिति । *** प्रहर्षिणीवृत्तम् । अत्र रूपकालङ्कारः ।

नैष इति । *** वसन्ततिलकावृत्तम् ।

यावज्जीवमेष भवतु मे प्राणसारः।

(इति शिरसाऽभिवन्द्य धारयति)

सामन्तः-महानेषोऽनुग्रहो महाराजस्य ।

(इति निष्क्रान्तः)

मन्त्री-देव, एतन्मण्डलाग्रमण्डितस्य भविष्यति तव सर्वत्राप्रतिहतप्रसरो विजयध्वज इति विभावये ।

(प्रविश्य)

द्वारपालः-एष आबाजीवीरो द्वारि संप्राप्तः ।

शिवराजः-शीघ्रमेनं प्रवेशय ।

द्वारपालः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति कल्याणप्रान्ताधिपस्नुषया सहित आबाजीः)

आबाजीः-वर्धतां देवः कल्याणविजयेन। देवाधीनाः सन्ति तत्र बन्दीकृतस्य तत्प्रान्ताधिपस्य प्राणाः ।

शिवराजः-सद्यस्तं कारागृहाद्विमुच्य यथार्होपचारैश्च संभाव्य विसर्जय ।

आबाजीः-यद्देव आज्ञापयति । अपि च महाराजायोपायनीकर्तुमानीतमेतदलोकसाधारणं स्त्रीरत्नम्। तत्स्वीकृत्यानुगृह्णात्विमं दासजनम् ।

शिवराजः-(सरोषम्) अरे किमिदं त्वयाऽनार्यमनुष्ठितम् ।

तपनकुलभवस्य धर्मवृत्ते-
रपि परदाररतिर्विभाव्यते किम् ।
विषममुपगतोऽपि राजहंसः
किमु बकवृत्तिमुपाश्रयेत्कदाचित् ॥६॥

(मन्त्रिणं प्रति) तदुद्घुष्यतां तारस्वरेणास्मद्धर्मराज्ये यच्छिवराजस्य तद्भृत्यानां

मण्डलाग्रेति। मण्डलाग्रः खड्गः तेन मण्डितस्य यद्वा मण्डलस्य सामन्तचक्रस्य अग्रेण प्रधानस्थानेन मण्डितस्य अलङ्कृतस्य। पताकास्थानमिदम्। तदुक्तं दर्पणे 'द्व्यर्थो वचनविन्यासः सुश्लिष्टः काव्ययोजितः। प्रधानार्थान्तराक्षेपी पताकास्थानकं परम् ॥' इति ।

च दुहितृनिर्विशेषाः परस्त्रिय इति ।

मन्त्री-यथाज्ञापयति महाराजः ।

(इति पत्रे निवेशयति)

आबाजीः-प्रसीदतु देवः । सांप्रतं राजकुलसाधारणोऽयमुपचार इति कृत्वा मयाऽत्र प्रवृत्तम् । तदनुकम्पनीयोऽयं दासजनः ।

शिवराजः-तव विक्रमेण परितुष्टोऽहमद्य त्वां कल्याणप्रान्ताधिपत्ये नियुनज्मि। तन्न्यायेन प्रजाः पालयंस्तत्रास्माकं धर्मचक्रं प्रवर्तय ।

आबाजीः-यथाज्ञापयति देवः ।

(इति प्रान्ताधिपस्नुषया सह निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

द्वारपालः-विजयतां देवः । सप्तशतं गान्धारसैनिका महाराजस्य विजययशोभिः समाकृष्टा बीजापुरेशमपहाय महाराजाश्रयमन्विष्यन्ति । श्रुत्वा देवः प्रमाणम् ।

शिवराजः-मन्त्रिन् कथमेते विश्वसनीयाः ।

प्रत्यर्थिनः परिजनेऽतितरां विनीते
स्त्रैणे मृषोक्तिपरमे विषयप्रसक्ते ।
धर्मध्वजे द्विषति हीनकुलोद्भवे च
विश्वस्य नाशमुपयाति पुरन्दरोऽपि ॥७॥

मन्त्रीः-महाराज मन्त्राधिकारनियोगपरोऽयं परामर्शः । सैनिकानां तु नास्ति कश्चन स्वतन्त्रोऽधिकारः । तन्नोचितोऽत्र प्रतिषेधः । अथ चैते परधर्मिण इति कृत्वाऽपि न युक्तः प्रतिषेधः । यतः

विभिन्नधर्मा नृपतिर्निजाः प्रजाः
समत्वमास्थाय सदैव पालयेत् ।
स्वधर्मनिर्बन्धपरस्तु हेलया
प्रजाविरोधात् प्रबलोऽपि हीयते ॥८॥

प्रत्यर्थिन इति । प्रत्यर्थिनो रिपोः परिजने भृत्यवर्गेऽतितरां विनीते नम्रे स्त्रैणे स्त्रीजिते मृषाऽनृतोक्तिर्वाक् परमा यस्य तस्मिन् विषयेषु प्रसक्ते इन्द्रियारामे इत्यर्थः धर्मध्वजे दाम्भिके द्विषति रिपौ हीनकुले उद्भवो जन्म यस्य तस्मिंश्च विश्वस्य पुरन्दर इन्द्रोऽपि नाशमुपयाति । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

शिवराजः-सत्यं समदृष्ट्यधीनैव साम्राज्यप्रतिष्ठा। (द्वारपालं प्रति) तदुच्यतां मद्वचनात्सेनापतिर्यथावदेतेषां नियोगाय।

द्वारपालः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-मन्त्रिन्, नास्ति पर्याप्तं केवलं पदातिदलं प्रबलारातिनिग्रहाय। तदस्माभिः शीघ्रं सादिदलमप्युपकल्पनीयम्।

मन्त्री-देव नेताजीवीराधिष्ठितं सादिदलमचिरेणैव भविष्यति रणावतारक्षमम्। तद्राजमाचीतो यदाऽसौ प्रत्यागच्छेत्तदाऽस्मिन्नेव कार्ये नियोजनीयः।

शिवराजः-सर्वथाऽभिनन्द्यते तवाध्यवसायः ।

(प्रविश्य)

द्वारपालः-विजयतां देवः । एष राजमाचीतः प्रत्यागतो नेताजीवीरो द्वारि तिष्ठति ।

शिवराजः-प्रवेशयैनम् ।

द्वारपालः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

नेताजीः-विजयतां देवः। कृषीवलच्छद्मनान्तःप्रविष्टेन गूढचरेण निशीथेऽधः प्रसारितां रज्जुमवलम्ब्य प्राकारमधिरूढैरस्मत्सैनिकगणैर्निहता राजमाच्युपरोधकारिणो यवनसैनिकाः ।

शिवराजः-वीर प्रशंसनीयं खलु तवैतत्साहसविक्रान्तम्। अपि परितोष्यते यथार्होपचारेण त्वया बन्दीकृतो यवनेशश्यालः।

नेताजीः-अथ किम्। को नु खलु महाराजशासनमतिक्रमितुं प्रभवति। देव तत्र निरुद्धाः सन्त्यन्येऽप्येतद्युद्धगृहीता यवनसैनिकाः।

शिवराजः-मन्त्रिन् आदिश राजमाच्यधिकृतं तान् विसर्जयितुम्।

मन्त्री-यदाज्ञापयति देवः ।

(इति पत्रे निवेशयति)

शिवराजः-वीर प्रत्यासन्न एवापरः संग्रामः। तत्संनाहय सादिनिवहान्।

नेताजीः-यद्देव आज्ञापयति।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

चरः-देवस्य स्वातन्त्र्यनिष्ठया संरब्धेन दुरात्मना बीजापुराधीशेन कारागारे निरुद्धास्तातपादाः।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-(सरोषम्) अरे दुर्मदान्ध, अपि सन्निष्ठया विहितायास्ते सपर्याया ईदृशः परिणामः। अथवा कृतोपकारेभ्य एव द्रुह्यन्ति दुरात्मानः।

विहाय कान्तासुतबन्धुवर्गान्
कुलप्रतिष्ठामथ जीवितस्पृहाम्।
हन्त्येकभक्त्याऽपि निषेवितोऽधमः
पर्याप्तकामः स्वयमेव सेवकम् ॥९॥

मन्त्री-सर्वत्रात्मनाश एवाधमशुश्रूषायाः पारितोषिकम्।

शिवराजः-मन्त्रिन् कथमपि रक्षणीयाः पितृचरणाः। यतः

राज्ञः प्रजायाः परिपालनं यथा
भृत्यस्य भर्तुर्हितसाधनं च।
कुलस्त्रियः पत्युरथानुवर्तनं
तथा सुतस्यास्ति गुरोरुपासनम् ॥१०॥

मन्त्री-देव, अत्र समामनन्ति नयशास्त्रकोविदा यत्

संधानं सत्यसन्धे नयगुणविहितं विग्रहो हीनसत्त्वे
यानं चान्तर्विपन्ने गिरिगहनगते चासनं दुर्गसंस्थे।

कथमपीति। अत्र नीतिर्नाम नाट्यालङ्कारः।

संधानमिति। सत्या संधा प्रतिज्ञा यस्य तस्मिन् नयस्य नीतिशास्त्रस्य गुणेषु संध्यादिगुणेषु विहितं संधानं संधिः हीनं सत्त्वं बलं यस्य तस्मिन् विग्रहः, अन्तःप्रकृतिषु विपन्ने विपदाभिभूते यानं, गिरौ गहने वने च गते दुर्गसंस्थे चासनं, व्यूहैरप्रधर्ष्येऽनाक्रम्ये द्वैधं, कुटिलो यो नयस्तस्मिन् रते शक्तीनां प्रभुमन्त्रोत्साहशक्तीनां योगेनावलिप्ते गर्विते प्रत्यर्थिनि रिपौ नः श्रेयसे प्रबलनरपतेः संश्रयः कार्यः। स्रग्धरावृत्तम्।

द्वैधं व्यूहाप्रधर्ष्ये कुटिलनयरते शक्तियोगावलिप्ते
प्रत्यर्थिन्याशु कार्यः प्रबलनरपतेः संश्रयः श्रेयसे नः ॥११॥

तदेतद्विपत्संतरणार्थं दिल्लीपतिरेव समाश्रयणीयः । यतः

सदाश्रयोऽयं विदुषां कलावतां
निजे परे चापि समानभावः ।
निरस्तपापः स्वयमप्रमत्तः
प्रजाः प्रजाः स्वा इव शास्त्यधीशः ॥१२॥

शिवराजः-ममाप्येतदेवाभिप्रेतम् । यतः

दिल्लीशोपाश्रयेणैव वशं नेयोऽयमुद्धतः ।
दुर्दान्तस्याधमस्यास्य नास्त्यन्या दमनक्रिया ॥१३॥

तत्प्रयुज्यतां कोऽपि कार्यक्षमो निसृष्टार्थो दूतोऽस्मदभीष्टं संपादयितुम् ।

मन्त्री-गच्छतु रघुनाथपन्त एतत्कार्यसंसिद्धये ।

शिवराजः-स्थान एवास्य नयविचक्षणस्य पण्डितवरस्य नियोगः । कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

द्वारपालः-आज्ञापयतु देवः ।

शिवराजः-पण्डितवरं द्रष्टुमिच्छामि।

द्वारपालः-यदाज्ञापयति देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-विलिख्यतां तावद्विज्ञापनपत्रम् ।

मन्त्री-तथा ।

(इति पत्रं लिखति)

शिवराजः-(लेख्यमादिशति)

श्रीमद्भारतराजकुलाधीश्वरसाम्राज्यश्रीनिकेतनसार्वभौममोगलेश-चरणरचिताञ्जलिः शिवराजः सप्रश्रयं प्रार्थयते यत्सार्वभौमस्य

भृत्यवर्गं प्रविविक्षुरयं जनो यथार्हनियोगेनानुग्राह्य इति । अपिच कृतघ्नेन बीजापुरेशेन विनाऽपराधं कारागृहे निरुद्धानां निजतातपादानां मुक्तिसंपादनेनानुग्रहान्तरमभिलषत्ययं सार्वभौमभृत्यः। वितरतु कृपापारावारे श्रीसार्वभौमेऽनन्तयशःसमृद्धिवैभवं विश्वनियन्तेत्याशास्ते च । इति ।

मन्त्री-देव लिखितं मया यथादिष्टम् ।

(प्रविश्य)

पण्डितवरः-विजयतां देवः ।

शिवराजः-आदायैतद्विज्ञापनपत्रं प्रतिष्ठस्व तावद्दिल्लीनगरम् । तत्र च सार्वभौममनुकूलं विधाय सर्वात्मना संपादयास्मत्तातपादानां विमुक्तिम् ।

(इति स्वनाममुद्राङ्कितं विधाय पत्रमर्पयति)

पण्डितवरः-(पत्रमादाय) यद्देव आज्ञापयति ।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

द्वारपालः-आज्ञापयतु देवः ।

शिवराजः-अन्तर्गृहमार्गमादेशय ।

द्वारपालः-इत इतो देवः ।

(उभौ परिक्रामतः)

एतदन्तर्गृहद्वारं प्रविशतु देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशत्यन्तर्गृहावस्थिता राजमाता राज्ञी च)

शिवराजः-(प्रविश्य) अम्ब, अभिवादये ।

राजमाता-वत्स चिरं जीव । अप्यस्ति कश्चिद्विशेषः ।

शिवराजः-कृतघ्नेन बीजापुरेशेन बन्दीकृतानां तातपादानां विमुक्तये कर्तव्यतयापतितो मोगलेशसंश्रयः ।

यथार्हनियोगेनेति । अत्राश्रयो नाम नाट्यालङ्कारः ।

राजमाता-सुतन्त्रितोऽयं मन्त्रनिर्णयः। भविष्यत्यनेन तवाभीष्टसिद्धिः। यतः

न सर्वदा विक्रमशालिनोऽप्यलं
भवन्त्यरातीन् सहसा प्रधर्षितुम्।
ऊर्जस्विनां साहसमस्ति विप्लुते
नयप्रयोगेऽगतिका गतिर्ध्रुवम् ॥१४॥

तत्प्रेषय पण्डितवरमेनमर्थं संपादयितुम्।

शिवराजः-अम्ब तथैव मया प्रकल्पितम्। एवं त्वयाऽनुमोदितस्य नितरां मोदते मेऽन्तरात्मा।

राजमाता-वत्स श्रुतं मया चारेभ्यो यत्प्राणान्तविपद आत्मानं रक्षितुं धर्मान्तरमाश्रितो बजाजीवीरः पुनः स्वधर्मं प्रवेष्टुमिच्छति। अस्त्यत्र प्रतिकूलोऽस्मद्बन्धुवर्गः। परंतु साम्राज्यसंस्थापनप्रवृत्तेन त्वया कर्तव्यो वीरसंग्रहः। अतो यथाविधि परिशोधितस्यास्यात्मजाय स्वकन्यां प्रदाय संपादयास्य चिरसौहृदम्।

शिवराजः-शिरसि क्रियते तवादेशः।

राजमाता-वत्स युज्यस्व भूयोभूयोमङ्गलेन। अथ महेश्वराराधनाय साधयामि देवगृहम्।

(इति निष्क्रान्ता)

राज्ञी-आर्यपुत्र, अद्य खलु

लोकप्रकाशनमराततिमोऽपहारि
संतर्पणं नयनमानसयोर्वपुस्ते।
एतन्नवोपचितयौवनराज्यलक्ष्म्या
तेजोद्वयस्य युगपत्सुषमां दधाति ॥१५॥

शिवराजः-देवि त्वमेवासि मम सकलमङ्गलानामेकायतनम्। यत्त्वं

लोकेति। *** तेजोद्वयस्य सूर्याचन्द्रमसोर्युगपत्समकालमेव *** वसन्ततिलकावृत्तम्। अत्र निदर्शनालङ्कारः।

प्रोत्साहनेन समराङ्गणतत्परस्य
प्रत्यागतस्य च पराक्रमणानुयोगैः ।
उद्वेजितस्य नयमार्गविकल्पनैश्च
श्रान्तस्य नर्मवचसा तनुषे सुखं मे ॥१६॥

राज्ञी-आर्यपुत्र धर्म एवैष सहधर्मचारिणीनां क्षत्राङ्गनानाम् । निसर्गत एव
तव व्रते मे हृदयं प्रतिष्ठितं
मनश्च मे त्वन्मनसैकतां गतम् ।
त्वयि प्रसन्ने भवति प्रसन्नं
समाकुलं चाकुलिते त्वयि प्रिय ॥१७॥

शिवराजः-(स्वगतम्) अहो नु खलु धन्योऽस्मि । (प्रकाशम्) तव सुधास्यन्दिवचोभिराप्यायितोऽहं पुनः पुनर्नवतामुपेत्यारातीनभिभवितुमुत्सहे ।

राज्ञी-संप्रत्यधर्मप्रायेषु राजकुलेषु धर्मवृत्तेस्तव सुखोपगमैव विजयश्रीः ।

शिवराजः- (शतघ्नीस्वनमाकर्ण्य) अहो जातः खलु सेनानिरीक्षणसमयः । यावत्साधयामि ।

राज्ञी-अहमपि तावच्छिवाराधनाय देवगृहमुपैमि ।

(इति निष्क्रान्तौ)

॥ समाप्तोऽयं **राज्यव्यवस्थिति**नामा तृतीयोऽङ्कः ॥

प्रोत्साहनेनेति । *** वसन्ततिलकावृत्तम् ।

इति श्रीछत्रपतिसाम्राज्यटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां
राज्यव्यवस्थितिनामा तृतीयोऽङ्कः समाप्तः ।

चतुर्थोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशतो राजपुरुषौ)

प्रथमः-भद्र किमेवं प्रक्रान्तेऽपि महोत्सवे नियोगशून्य इवात्र परिभ्रमसि ।

द्वितीयः-अये किंनिमित्तोऽयं महोत्सवः ।

प्रथमः-अहो किं न जानास्यद्य खलु भवानीप्रतिष्ठायाः परिसमाप्तिदिनमिति।

द्वितीयः-भद्र राजकार्यार्थं देशान्तरं प्रस्थितोऽहमद्यैवात्र संप्राप्तः ।

प्रथमः-दिष्ट्यैतत्प्रतिष्ठामहोत्सवार्थं समुपस्थितस्य श्रीरामदासस्वामिनः सान्निध्येन पवित्रीकृत एष प्रतापगडदुर्गः। भविताऽद्य देवस्यानेन महात्मना समागमः। अपि नामास्मिंस्तपोनिधौ भक्तिप्रवणो भवेदस्मद्देवः। यतः स एवास्ति समर्थो देवस्य विघ्नशतान्यपि विदारयितुम् ।

द्वितीयः-अप्यस्ति कश्चित्प्रतिकूलप्रसङ्गावकाशो येनैवं ब्रवीषि ।

प्रथमः- अथ किम् । कारागृहाद्विनिर्मुक्तस्य शाहजीमहाराजस्य पुनः कर्णाटाधिकारपदावाप्त्यनन्तरं बीजापुरेशस्य पुरतो देवं बन्दीकर्तुं प्रतिजज्ञेऽसूयाविष्टो धूर्तः शामराजः । एतत्प्रतिज्ञासिद्धये च जावळीप्रान्ताधिपसाहाय्यमपेक्षमाणः स तमेवाश्रित्यावर्तत । अत्र च निवसता शामराजहतकेन सह्याद्रिवनं पर्यटतो देवस्य वधार्थं नियुक्तान् मारात्मकान् किरातान्निहत्य रक्षितो देवस्तत्राकस्मादुपस्थितेन नेताजीवीरेण।

द्वितीयः-एवं मिथोविद्वेषकलुषितेष्वस्मत्क्षत्रवीरेषु कुतः स्वातन्त्र्याधिगमो भारतीयानाम् ।

प्रथमः-ततश्च सुखं प्रत्यागतेन देवेन संदिष्टं तस्य क्षत्राधमस्य जावळीप्रान्ताधिपस्य यद्

विक्रीय देशकुलधर्मयशोऽभिमानं

म्लेच्छाधिपाय न मनागपि लज्जसे त्वम् ।

विक्रीयेति । *** वसन्ततिलकावृत्तम् । अक्ष दृष्टान्तालङ्कारः ।

आक्रम्य लुब्धकगणैरपि पाशबद्धः
किंवा श्ववृत्तिमभिनन्दति सिंहशावः ॥१॥

इति। परंतु प्रत्यासन्नमरणेन तेन सर्वथा प्रत्याक्षिप्तं देवस्य मन्त्रितम्। ततश्च समिद्धमन्युना देवेनासौ क्षत्रकुलापसदः क्षिप्रमेव यमालयं प्रेषितः।

द्वितीयः- धन्यं हि नयपाटवं देवस्य। सद्य एव वध्यो विषोल्बणः कृष्णसर्पः।

प्रथमः-अथ रोगाक्रान्तं मोगलसम्राजमुपश्रुत्य दिल्लीनगरं प्रयाते तद्युवराजे जावळीप्रान्ताधिपवधसंजातामर्षेण बीजापुरेशेन देवं निग्रहीतुमाज्ञप्तः स्वसेनानायकः। तदचिरेण भविष्यति पुनरपि युद्धारम्भः।

द्वितीयः-अप्यस्ति विदितमेतद्देवस्य।

प्रथमः-चारचक्षुषो देवस्य नास्ति किमप्यगोचरम्। (पुरतो विलोक्य) एष परिसमाप्य प्रतिष्ठाकार्यं प्रस्थितो देवो राजमन्दिरम्।

द्वितीयः-भद्र, अहं तावद्देशान्तरोदन्तमावेदयितुमुपैमि मन्त्रिसदनम्।

प्रथमः-अहमपि स्वनियोगपरिपालनाय प्राप्नोमि राजमन्दिरम्।

(इति निष्क्रान्तौ)

विष्कम्भकः।

(ततः प्रविशति श्रीरामदासेन सह शिवराजः।)

शिवराजः-(सप्रश्रयम्) दिष्ट्याद्य कृतार्थतां गमितोऽस्मि चिरप्रार्थितेन भगवत्प्रसादाधिगमेन।

(इति पुष्पस्रजं कण्ठे समर्प्य पादयोः पतति)

श्रीरामदासः-भारतैकवीर, उत्तिष्ठ। धर्मराज्यसंस्थापनार्थं शङ्करांशेनावतीर्णस्य तव भवतु सर्वत्राप्रतिहतो विजयः।

शिवराजः-(उत्थाय) प्रतिगृहीताशीः। (सनिर्वेदं) भगवन्, अथ मया यावज्जीवं किमेवमेव हिंसाप्रधानो धर्मोऽनुष्ठेयः।

श्रीरामदासः-व्यवस्थितवर्णाश्रमेऽस्मिन् भारते वर्षे दुष्कृतां हिंसनं साधूनां च परित्राणमेव क्षत्रियस्य परो धर्मः। तन्नयमार्गमव लम्ब्योत्पथगामिनो नृपाधमांश्चोन्मूल्य

तद्युवराज इति। तद्युवराजे दक्षिणापथाधिकारपदनियुक्ते मोगलयुवराजे इत्यर्थः।

प्रवर्तय तव धर्मशासनम्। न चैवं प्रवर्तमानस्य तव श्रेयःप्रतिबन्धः । यतः

लोकसंग्रहपरैर्जितात्मभिः
कर्मयोगनिरतैर्नृपोत्तमैः ।
पाप्मनां प्रमथने प्रकल्पितो
धर्मतन्त्रमपि बाधते नयः ॥२॥

परंतु

धर्मप्रवृत्ताः परिपन्थिनस्त्वया
साम्नैव राजन् स्ववशं विधेयाः ।
न धर्मगुप्ते हि नयप्रयोगाः
कदाचिदप्यर्थपरा भवन्ति ॥३॥

एवं धर्मनयप्रतिष्ठितेन च त्वया नानाधर्माः प्रजाः समबुद्ध्यैव पालनीयाः । यतः ।

वृत्तं यथा धर्मभयेन रक्ष्यते
नृभिस्तथा नैव नरेन्द्रशासनात् ।
धर्मान् सदाचारपरानतो नृपः
प्रजाहितज्ञो नियमेन पालयेत् ॥४॥

एवं प्रवर्तमानस्य तव सर्वथाऽनुकूला भविष्यति जगन्नियन्त्री परदेवता ।

शिवराजः-भगवन् तवानुग्रहेणाद्य निवृत्तं मे मोहावरणम् नवीकृतश्च साम्राज्यसंस्थापनोत्साहः ।

श्रीरामदासः-वत्स तव साहाय्यार्थं प्रतिमठं मया विनीयन्ते राष्ट्रभावभाविताः शतशो युवगणाः । तदिमे

व्यायामयोगोपचिताङ्गसत्त्वा
विद्याकलादण्डनयप्रतिष्ठिताः ।
राष्ट्रैकभक्ता उपधाविशोधिता
भवन्तु ते भाविरणे सहायाः ॥५॥

लोकेति । *** रथोद्धतावृत्तम् । अत्रोपदिष्टाख्यं लक्षणम् ।

व्यायामेति । *** धर्मार्थकामभयैः परीक्षणमुपधा-ताभिः विशोधिताः । *** उपजातिवृत्तम्।

शिवराजः-अहो परमार्थतो भगवतैवारब्धे राष्ट्रोद्धरणोद्यमेऽहं तु निमित्तमात्रमेव। यत्सत्यं ब्रह्मसमेधितमेव क्षत्रमृध्नोति ।

श्रीरामदासः-वत्स यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च समीची चरतस्तत्रैव साम्राज्यश्रीर्विलसति । अतः

ये क्षमा स्वतपसा दुरात्मनां
निग्रहेऽपि च सतामनुग्रहे ।
ब्रह्मवर्चसिन आत्मयाजिन-
स्तान्सभाजय सदा स्वगुप्तये ॥६॥

अपिच साम्राज्यसमृद्धये त्वया प्रयत्नेनानुरञ्जनीया निषादपञ्चमाश्चत्वारो वर्णाः। यतः

यथाऽत्र लोकव्यवहारसिद्धये
भवेत्समर्थोऽविकलेन्द्रियः पुमान् ।
तथा नृपः पञ्चजनोपसंग्रहात् ।
साम्राज्यसौभाग्यफलाय कल्पते ॥७॥

शिवराजः-भगवतो महिम्ना वशीकृतोऽयं जनोऽतःप्रभृति शिष्यदृष्ट्याऽनुकम्पनीयः ।

श्रीरामदासः-वत्स न केवलं शिष्य इति त्वमसि मम प्रेमास्पदम् । अपितु त्वमसि मे द्वितीयं हृदयम् । त्वदधीनैवास्ति मे साध्यसिद्धिः । तन्मया सततं सावधानेनोदीक्ष्यते त्वद्विजयध्वजप्रसरः । संप्रत्यपि त्वां निर्विण्णमुपश्रुत्य संप्राप्तोऽस्म्यहं तव प्रोत्साहनार्थमेतद्दुर्गराजम् । अथ त्वां स्वकर्मण्यभिप्रवृत्तं वीक्ष्य प्रतिष्ठेऽहं धर्मप्रवचनाय दुर्गान्तरम् ।

शिवराजः-भगवताऽनुग्राह्योऽयं जनो भूयो दर्शनेन ।

श्रीरामदासः-भारतैकवीर, संपादयतु तवाभीष्टं भगवती परदेवता ।

(इति निष्क्रान्तः)

[**ये क्षमा इति । ब्रह्मवर्चसिन इति ।** 'ब्रह्महस्तिभ्यां वर्च्चसः' (पा. ५.४.७८) इति सूत्रेण 'वर्च' इति शब्दस्य अच्-प्रत्ययान्तत्वे सिद्धे 'अत इनिठनौ' (५.२.११५) इति सूत्रेण पदं सिध्यति ।-सम्पादकः]

शिवराजः-कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

द्वारपालः-आज्ञापयतु देवः ।

शिवराजः-मन्त्रगृहमार्गमादेशय ।

द्वारपालः-इत इतो देवः ।

(उभौ परिक्रामतः)

एतन्मन्त्रगृहद्वारं प्रविशतु देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

शिवराजः-स्वागतं मन्त्रिवराणाम् ।

मन्त्रिणः-(उत्थाय) विजयतां महाराजः ।

(इति शिवराजमनूपविशन्ति)

(प्रविश्य)

द्वारपालः-देवं द्रष्टुकामः कोऽपि यवनतापसो द्वारि तिष्ठति ।

शिवराजः-प्रवेशयैनम् ।

द्वारपालः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

चरः-विजयतां देवः । कथमपि तं सह्यमूषकं गृहीत्वा सत्वरमानयामीति बीजापुरेशसभायां प्रतिज्ञाय मार्गे च भवानीप्रतिमां खण्डशः कृत्वा द्वादशसहस्रसैनिकदलेन सह संप्राप्तोऽत्र पापात्मा बीजापुरसेनानायकः ।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-(आकर्ण्य सरोषम्) अरे जाल्म

अविदिततपनान्वयप्रतापः

किमिति वृथा त्वमु गल्भसे मदान्ध ।

अविदितेति । *** पुष्पिताग्रावृत्तम् । अत्र गर्वो नाम नाट्यालङ्कारः ।

परधनपरिपुष्टमञ्जसा त्वां
महिषबलिं परिकल्पये भवान्याः ॥८॥

नेताजीः-(सरोषम्) सद्य एव मां तस्याततायिनो निग्रहार्थमादिशतु देवः । अद्यैवाहं

कामक्रोधातिरेकव्यसनविदलितं दुर्विनीतं मदान्धं
त्वत्कोपाग्निप्रदग्धं परिणतविभवं चायुषोऽन्तं गतं तम् ।
हत्वा निःशेषतस्तद्बलमतिविपुलं तर्पयित्वा कृपाणं
जीवग्राहं गृहीत्वा निगडितचरणं तेऽन्तिकं प्रापयामि ॥९॥

शिवराजः-(विचिन्त्य) वीर नात्र साहसप्रतिपत्तिरुचिता । तत्त्वयाऽधिष्ठिताः

प्रच्छन्नं परिपन्थिनां परिचयं कुर्वन्त्वनल्पं स्पशा
अध्यक्षाः स्वपदातिसादिनिवहान्संनाहयन्तूद्यताः ।
दुर्गाणामवने भवन्त्ववहिता दुर्गाधिपा निश्चलाः
सद्यो रोपयितुं प्रतापमुदितः कालो द्विषामन्तकः ॥१०॥

नेताजीः-यदाज्ञापयति देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

द्वारपालः-देव अरातिनिसृष्टो दूतो द्वारि तिष्ठति ।

शिवराजः-प्रवेशयैनम् ।

द्वारपालः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

कृष्णाजीः-विजयतां महाराजः ।

सद्य एव मामिति । अत्रोदाहरणाख्यं संध्यङ्गम् ।

कामक्रोधेति । जीवग्राहं गृहीत्वा जीवन्तं गृहीत्वेत्यर्थः । अत्रोत्साहः स्थायिभावो निजभर्तृपरिपन्थ्यालम्बनं तर्जनमनुभाव आक्षेपो गर्वश्च संचारिणौ । एवमत्र युद्धवीरो रसः । स्रग्धरावृत्तम् ।

प्रच्छन्नमिति । *** शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । अत्र गर्भसन्ध्यारम्भः । 'फलप्रधानोपायस्य प्रागुद्भिन्नस्य किंचन । गर्भो यत्र समुद्भेदो ह्रासान्वेषणवान्मुहुः ॥' इत्युक्तत्वात् ।

अरातिनिसृष्टो दूतः इति । कृष्णाजीनामा विप्रः ।

शिवराजः-स्वागतं विप्रवर्यस्य ।

कृष्णाजीः-अप्यनामयं महाराजस्य ।

शिवराजः-अथ किम् ।

कृष्णाजीः-देव उभयतः सैनिकानां विनाशं परिजिहीर्षुरावेदयत्यस्मत्सेनापतिर्यन्महाराजेन स्वकुलपरंपरागतवृत्तिस्वीकरणेन परित्यज्य बीजापुरेशस्य विरोधमङ्गीकर्तव्यो भृत्यधर्म इति ।

शिवराजः-नास्त्यस्माकं बीजापुरेशेन सह कोऽपि विरोधः किंतु दुर्वृत्तेभ्यस्तदधिकृतेभ्यः प्रजायाः पालनार्थमेवायमस्मदुपक्रमः ।

कृष्णाजीः-तन्महाराजेन स्वायत्तीकृतस्य प्रदेशस्याधिपत्ये तावद् भविष्यति महाराजस्यैव नियोगः । तद्यथा बीजापुरेशशासनमनुरुध्य शाहजीमहाराजः कर्णाटप्रदेशं पालयति तथैव महाराजेन सह्यप्रदेशः पालनीयः । एतदर्थं च महाराजेन यथावकाशं द्रष्टव्योऽस्मत्सेनापतिः ।

शिवराजः-अत्र नास्माकं विप्रतिपत्तिः । कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

द्वारपालः-आज्ञापयतु देवः ।

शिवराजः-प्रापयैनं विप्रवर्यमावेशिकमन्दिरम् । उच्यतां च मद्वचनात्तत्राधिकृतो यदेष द्विजोत्तमो राजोपचारैः संभावनीय इति ।

द्वारपालः-तथा ।

(इति दूतेन सह निष्क्रान्तः)

शिवराजः-मन्त्रिणः, अनेन किमपि हृदये कृत्वाऽन्यदेव मन्त्रितमिति लक्ष्यते। यतः

नयप्रयुक्तैर्मधुरैर्वचोभिः
प्रतारणार्थं ध्रुवमुद्यतस्य ।
कालुष्यमन्तः स्थितमस्य केवलं
व्यनक्ति विच्छायमुखच्छविः स्वयम् ।।११।।

मन्त्री-एवमेतत् । यतः

नेत्रप्रसादः स्वयमाननद्युतिः
स्वाभाविकी चैव वचःप्रवृत्तिः ।
अल्पोपचारो गतमप्यविक्लवं
विवृण्वतेऽन्तर्हृदयस्थमार्जवम् ॥१२॥

तत्कथमपि ज्ञातव्यमस्य मनोगतम् ।

शिवराजः-पूर्वं तावद्यवनसेनापतये विसृष्टोऽस्मद्दूतस्तमावेदयतु यद्

प्रमादतस्त्वादृतसाहसः प्रभु-
र्महद्विरोधादनुतप्यमानः ।
निरीक्ष्य नेत्रप्रतिघाति ते महो
धैर्यच्युतः प्रार्थयते तवाश्रयम् ॥१३॥

अनेनोत्सिच्यमानः स मदान्धोऽस्मन्नयपाशधृतो भविष्यति ।

मन्त्री-सद्य एव प्रेषयामि पन्तोजीगोपीनाथमेतदर्थसंसिद्धये ।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-अहमपि तावत्प्रत्यर्थिदूतं विविक्त उपगृह्णामि । (इति मन्त्रगृहान्निर्गत्य परिक्रामति । परितो विलोक्य) अहो

निशेयमाक्रान्ततमिस्रभीषणा
पापात्मनां पापचिकीर्षिते हिता ।
स्वधर्मदक्षे नृपतौ तु जाग्रति
स्वपन्ति सर्वा अकुतोभयाः प्रजाः ॥१४॥

(पुरतो विलोक्य) एतदावेशिकमन्दिरम् । यावत्प्रविशामि ।

(ततः प्रविशति सुवर्णमञ्चावस्थितोऽरातिदूतः)

दूतः-(ससंभ्रममुत्थाय) अहो महाराजः । कोऽयं मय्यसाधारणोऽनुग्रहः ।

शिवराजः-(महार्हं रत्नमुपायनीकृत्य) धर्म एवैष क्षत्रियाणां यद्विप्रोपासनम् । (इति मञ्चान्तरमुपविशति)

प्रमादत इति । *** उपजातिवृत्तम् । अत्राभूताहरणं नाम संध्यङ्गम् ।

महार्हरत्नमिति । अत्र संग्रहाख्यं संध्यङ्गम् ।

दूतः-(उपविश्य) देव त्वादृशा धर्मज्ञा एवार्हन्ति लोकतन्त्राधिकारम् ।

शिवराजः-विप्रवर्य, सर्वत्र ब्रह्मैधितमेव क्षत्रं समृध्यते । बृहस्पतिपुरोगमा देवा विप्रपुरोगमाश्च राजन्या एव युज्यन्ते विजयश्रियेति पुराणप्रसिद्धिः ।

दूतः-महाराज संप्रति तु क्षत्रापचारपरिपीडितानां विप्राणां यवनेशोपाश्रयादृते नास्त्यन्यदवलम्बनम् ।

शिवराजः-तथ्यमेवाभिहितं विप्रवर्येण । अत एवैतान्नृपापसदानुन्मूलयितुं मया शस्त्रमुद्धृतम् ।

दूतः-सर्वथाऽभिनन्द्य एव तव धर्म्यो व्यवसायः । परंतु प्रथममेव बलिना यवनेशेन विग्रहमारभमाणस्य तव महती नयच्युतिः ।

शिवराजः-संभाव्यमेतत् । तथापि न केवलं यवनसहाय एव प्रभवति प्रशासितुं निजराष्ट्रं यवनेश्वरः । सन्ति तत्राप्यधिकृताः स्वधर्मपरमा धर्मवीरा ये पुनः समुपस्थित उपप्लवे ममोपकरिष्यन्तीत्यवधार्यैव मयादृत एव उपक्रमः ।

दूतः-परंतु स्वधर्मनिष्ठानामपि भर्तुरनिष्टापादनेन त्वपरिहार्य एव कृतघ्नतादोषः।

शिवराजः-विप्रवर्य, कोऽयं व्यामोहो भवादृशानां वेदधर्मतत्त्वविदुषाम् । 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' - इति तु साक्षाद्भगवतैव तारस्वरेणोद्घोषितम् । यदि स्वधर्मनिष्ठानां धर्मार्थमात्मनाशोऽपि श्रेयांस्तदा कियान् भर्तुर्विप्रकारः । पुराऽपि धर्मार्थं

वज्रस्य निर्माणविधौ सुरार्थितां
स्वयं महर्षिस्तनुमप्यहासीत् ।
शिरः कुठारेण च जामदग्न्य-
श्चिच्छेद मातुर्गुरुणा नियुक्तः ॥१५॥

दूतः-देव नात्र प्रवर्तते मे प्रतिवचनम् ।

शिवराजः-अये द्विजोत्तम

वज्रस्येति । *** स्वदेहमपि महर्षिः दधीचिनामा स्वयमहासीत् त्यक्तवान् । *** जामदग्न्यः परशुरामः गुरुणा पित्रा नियुक्तः आज्ञप्तः कुठारेण मातुः शिरः चिच्छेद । उपजातिवृत्तम् । अत्र निदर्शनाख्यं लक्षणम् ।

भवन्ति विप्रा यदि धर्ममूर्तयो
विरोधिनो धर्मपरस्य भूभृतः ।
तदा प्ररोहैः सह धर्मपादपः
समूलमुच्छेदमवाप्नुयाद् ध्रुवम् ॥१६॥

दूतः-(विचिन्त्य) कीदृशं साहाय्यमपेक्षते महाराजः ।

शिवराजः-केवलं तत्त्वतो ज्ञातुमिच्छामि सेनापतेश्चिकीर्षितम् ।

दूतः-(स्वगतम्) किं कर्तव्यो मया रहस्यभेदः । उत घातयितव्यो धर्मावतारः। अस्तु । धर्मावतारस्यैव रक्षणेन रक्षितो भविष्यति धर्मो नान्यथा । (प्रकाशम्) देव न किमप्यस्ति तवावाच्यम् । तच्छृणु । कथमपि त्वां विश्वास्यात्मनः प्रतिज्ञां निर्वाहयितुमुत्कण्ठतेऽस्मत्सेनापतिः ।

शिवराजः-अहो नु खलूज्जीवितोऽस्मि । द्विजोत्तम न कदापि स्मृतिपथमतीतो भविष्यति तवायमनुग्रहः । परंत्ववशिष्यते किंचित्कर्तव्यान्तरम् ।

दूतः-निःशङ्कमाख्यातु धर्मवीरः ।

शिवराजः-विप्रवर्य, 'अतीव भयाकुलः शिवराजो महता सैन्येन परिवृतं त्वामुपाश्रयितुं न धृष्णोति । अतो दुर्गपरिसरप्रतिष्ठापितोपकार्यामुपेत्य त्वयैकाकिना स हस्तगतः कर्तव्यः । अन्यथा तस्मिन् कुत्रापि पलायिते तव प्रतिज्ञाहानिप्रसङ्गः ।' -इति तमनुनीय संपादयावयोरेकान्तसमागमम् । अतः परं यद्भावि तद्भवतु ।

दूतः-देव अत्र विस्रब्धो भव । त्वया पुनरात्मदूतमुखेनैतदेव तस्य संदेष्टव्यम्।

शिवराजः-तथा ।

दूतः-सद्य एव तावत् प्रतिष्ठे देवस्याभीष्टसंपादनाय ।

शिवराजः-अहमपि मन्त्रगृहमुपेत्य प्रतिपालयामि चरमाध्यवसायम् ।

(इति निर्गत्य परिक्रामति)

(स्वगतम्) दिष्ट्या सुसंपन्न एष पूर्वरङ्गः ।

भवन्तीति । अत्रानुनयाख्यं लक्षणम् ।

कथमपीति । अत्र क्षिप्तिर्नाम संध्यङ्गम् ।

क्षेत्रेऽपि सीरोत्कषणावकल्पिते
उप्त्वा सुबीजानि समृद्धभूमौ ।
समुद्गतेष्वेव नवाङ्कुरेषु
क्षेत्री समुत्पश्यति शस्यसंपदम् ॥१७॥

अनेनाक्षिप्तेऽपि भाविविजये कथं निर्वृतिं नाधिरोहति मेऽन्तरात्मा । यावदन्तःपुरमुपेत्याम्बया सह संमन्त्रये । (पुनः परिक्रम्य) अहो सा तु मामेव प्रतिपालयन्त्यद्याप्यवतिष्ठते ।

(इत्यन्तःपुरं प्रविशति)

(ततः प्रविशति राजमाता राज्ञी च)

राजमाता-वत्स, अप्यनुकूलितः प्रत्यर्थिदूतः ।

शिवराजः-अथ किम् । परंतु कदाचिद्दुर्दैवतोऽत्र विपरीतमापद्येत तदानीं त्वयाऽधिष्ठितेनोमाजीराजेन प्रवर्तनीयः स्वराज्यसंस्थापनोद्योग इत्येषा ममाभ्यर्थना ।

राजमाता-वत्स, देवतानुग्रहशालिनस्ते नास्त्यपायशङ्कावसरः । तद्

यवनसादिपदातिसमुद्धतं
रिपुदलं परिमृद्य रणाङ्गणे ।
विजयदुन्दुभिनिःस्वननन्दितः
पुनरुपेत्य विनोदय मातरम् ॥१८॥

वत्स रक्षतु त्वां समन्ततः समराधिष्ठात्री परदेवता ।

शिवराजः-शिरसाऽभिनन्द्यन्ते तवाशिषः ।

राजमाता-परास्ताः सन्तु ते विद्विषः ।

राज्ञी-विजयश्रीविलसितस्य भवतु तवाचिरेण मङ्गलागमनम् ।

शिवराजः-कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

कञ्चुकी-आज्ञापयतु देवः ।

शिवराजः-मन्त्रगृहमार्गमादेशय ।

क्षेत्रेऽपीति । *** उपजातिवृत्तम् ।

यवनसादीति । अत्राशीर्नाम नाट्यालङ्कारः ।

कञ्चुकी-इत इतो देवः ।

(उभौ परिक्रामतः)

एतन्मन्त्रगृहद्वारं प्रविशतु देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशन्ति मन्त्रगृहावस्थिता मन्त्रिणो दूतश्च)

शिवराजः-(प्रविश्य) अप्युपस्थितोऽस्मद्दूतः ।

मन्त्री-एष देवं प्रतिपालयंस्तिष्ठति ।

शिवराजः-(दूतं प्रति) किमध्यवसितं यवनसेनापतिना ।

दूतः-जातमभीष्टं देवस्य । अद्य प्रातरेवायमभिकाङ्क्षति देवस्य समागमावसरम्।

शिवराजः-भद्र सद्य एव निवृत्य तमावेदय 'दुर्गोपत्यकायामुपकल्पितामुपकार्यामुपेत्य यथासमयं त्वया दृष्टव्यः शिवराजः' इति।

दूतः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-सचिव त्वं तावच्छीघ्रमुपत्यकायां हिरण्यरत्नमण्डितामुपकार्यामुपकल्पय।

सचिवः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-सेनापते त्वं तावच्छैलोत्सङ्गपादपान्तरितपदातिनिवहो मार्ग एव मां प्रतिपालय ।

नेताजीः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

मन्त्री-देव सायुधवर्मधरेण त्वया द्रष्टव्यः कुटिलः परिपन्थी ।

शिवराजः-प्रतिपद्येऽहं मन्त्रिवचनम् ।

(इति वर्म शिरस्त्राणं वृश्चिकास्त्रं व्याघ्रनखांश्च धारयति)

मन्त्री-अत्र भवतु तानाजीवीरस्तव सहायः ।

तानाजीः-पूर्वमेवादिष्टोऽस्म्यम्बया धूर्तयवनसमागमे तव पार्श्वचरो भवितुम्।

शिवराजः-जीवितसंशयेऽस्मिन्व्यतिकरे त्वमेवार्हसि मम पार्श्वस्थानम्। (ऊर्ध्वं विलोक्य) अहो प्रभातकल्पा हि रजनी। यावत्साधयामः।

(इति सपरिवारः तुरगमारुह्य परिक्रामति)

(परितो विलोक्य) अमात्य क्षणमात्रेणैव संप्राप्ता वयं शैलावरोहसंक्रमम्। एषोऽस्मदागमनं प्रतीक्षमाणस्तिष्ठति सपरिजनो नेताजीः।

(ततः प्रविशति सपरिजनो नेताजीः)

नेताजीः-(दूरं विलोक्य) अहो, उपस्थितो देवः।

प्रजवतुरगकल्पितासनोऽयं
कवचधरः करवालकुन्तनद्धः।
अरुणितनयनो रुषा महोग्रः
सरभसमेत्यभितो द्विषां कृतान्तः ॥१९॥

(शिवराजमुपसृत्य) विजयतां देवः। अस्ति सर्वं सुव्यवस्थितम्।

शिवराजः-(परितो विलोक्य) वीर पश्य

एतद्विरूढतरुगुल्मलतावितान-
मुत्सङ्गवर्ति गहनं गहनान्तरालम्।
प्रच्छन्नसत्त्वमभितः पवनावधूत-
मुल्लोलवीचिजलधेः समतां विधत्ते ॥२०॥

नेताजीः-देव अत्रैव निलीयन्तेऽस्मत्सैनिकनिवहाः।

शिवराजः-त्वं तावच्छृङ्गस्वनेनास्मत्संकेतं गृहीत्वा द्रुतमभियुङ्क्ष्वारातिसैन्यम्।

नेताजीः-यद्देव आज्ञापयति।

शिवराजः-वयं तावत्पुरतो व्रजामः।

(इति सपरिवारो निष्क्रान्तः)

नेताजीः-पदातिसेनापते, अवगमय सैनिकान् संकेतक्रमम्।

पार्श्वचर इति। अत्र साहाय्यं नाम नाट्यालङ्कारः।

एतद्विरूढेति। *** वसन्ततिलकावृत्तम्। अत्र उपमाऽलङ्कारः।

एसाजीः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

नेताजीः-गुल्माध्यक्ष, सज्जीकुरु वैतालिकगणान् प्रयाणपटहध्वननाय ।

गुल्माध्यक्षः-यदार्य आज्ञापयति ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

एसाजीः-आर्य गृहीतः संकेतक्रमः सैनिकगणैः ।

नेताजीः-साधु ।

(वैतालिकैः सह प्रविश्य)

गुल्माध्यक्षः-आर्य, उपस्थिता यथादेशमेते वैतालिकाः ।

नेताजीः-(तारस्वरेण) भवत सर्वे सावधानाः ।

(शृङ्गध्वनिमाकर्ण्य ससंभ्रमम्) प्रवर्तन्तां वो रणातोद्यानि । शीघ्रमभिसरत सर्वे सेनानिवहाः ।

(इति सपरिजनो निष्क्रामति)

वैतालिकाः-(पटहध्वनिनोद्गायन्ति । नेपथ्ये पादाघातध्वनिः)

(भूपालीरागेण दादरातालेन गीयते)

भट्टा नदताट्टमेव
हर हर हर महादेव ॥
प्रकटयत कटप्रताप-
मरिकुलघटितोपताप-
हृष्टा नदताट्टमेव० ॥१॥
प्रबलराज्यमदविकार-
कुटिलपरकृतापकार-
रुष्टा नदताट्टमेव० ॥२॥

अथ रणगीतं भट्टा इति । *** अत्र छेकानुप्रासः शब्दालङ्कारः ।

निशितशरकृपाणपात-
साधितरिपुकटकघात-
तुष्टा नदताट्टमेव० ॥३॥
विजयपटहपटुनिनाद-
पातितपरिपन्थिमाद-
जुष्टा नदताट्टमेव० ॥४॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ समाप्तोऽयं **दूतभेद**नामा चतुर्थोऽङ्कः ॥

इति श्रीछत्रपतिसाम्राज्यटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां
दूतभेदनामा चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः ।

पञ्चमोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशतो गूढचरौ)

प्रथमः-नूनं वपुःप्रकर्षावलिप्तस्य यवनमातङ्गस्य वधेन समुपार्जितं लोकोत्तरं यशो देवेन ।

द्वितीयः-अर्जितं त्वेतत्प्राणसंशयेन ।

प्रथमः-अहो कथं नामैतत् ।

द्वितीयः-आलिङ्गनमिषेणासौ जाल्मो देवं कक्षान्तरे संपीड्य यावदसिप्रहारेणास्य शिरो भेत्तुमुदयुङ्क्त तावदेव देवेन व्याघ्रनखैर्विपाटितमस्य बृहत्तुन्दम्। देवस्य शिरस्त्राणेन च विफलीकृतोऽस्य निस्त्रिंशप्रहारः । अत्रान्तरे साहाय्यार्थमाक्रोशतस्तस्य पूर्वकायो विच्छिन्नश्चण्डविक्रमैकरसेन धर्मावतारेण देवेन । तदानीमेव देवं प्रहर्तुमुद्यतस्तस्याङ्गरक्षको यमसदनं प्रेषितस्तानाजीवीरेण । ततश्च संकेतानुरोधेनाक्रम्य परास्तं बीजापुरेशसैन्यमस्मत्सेनापतिना नेताजीवीरेण।

प्रथमः-उप्तमनेन खलु साम्राज्यबीजं महाराजेन ।

द्वितीयः-अथ किम् । ततःप्रभृति युद्धे गृहीतमुक्ता यवनसैनिका अपि विहाय यवनेशं महाराजाश्रयमन्विष्यन्ति ।

प्रथमः-भवन्ति सर्वेऽपि न्यायप्रवृत्तस्य पक्षपातिनः ।

द्वितीयः-अनन्तरं च विजित्य पन्हाळाप्रभृतीन् यवनदुर्गान् जुन्नरप्रभृतींश्च मोगलदुर्गान् प्रवर्तितं तत्र धर्मचक्रं महाराजेन । ततश्च भावियवनाक्रमणमपेक्षमाणो देवो नानादुर्गसंरक्षणार्थं मन्त्रिणो नियुज्य स्वयं पन्हाळादुर्गमध्यास्त । अचिरेणैवावरुद्धोऽयं दुर्गराजः पञ्चविंशतिसहस्रदलसमन्वितेन यवनसेनापतिना । ततो महता नयप्रयोगेण प्रतार्य तं यवनसेनापतिमतीतायां तमस्विन्यां निशीथ एव निर्भिद्यावरोधकगणमल्पपरिजनः प्रस्थितो देवो विशालगडदुर्गम् ।

प्रथमः-अहं तावत्सुगुप्तेन वर्त्मना तत्रैवोपेत्य श्रावयामि देवं मोगलेशोदन्तजातम् ।

द्वितीयः-अहमपि प्रविश्य यवनदलमुपलभेय तत्सेनापतेश्चिकीर्षितम् ।

(इति निष्क्रान्तौ)

विष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशति विशालगडदुर्गोपत्यकावस्थितः सपरिजनः शिवराजः)

बाजीः-देव, दिष्ट्या संप्राप्ता वयं विशालगडदुर्गपरिसरम् । पश्य

विशालवप्रोन्नतगण्डभित्ति-
दुराक्रमो हस्तमिताग्रमार्गः ।
दुर्गोत्तमोऽयं परिणद्धपार्श्वो
महेन्द्रमातङ्गनिभो विभाति ॥१॥

तत्सत्वरमेनमधिरोहतु भारतेन्द्रः ।

शिवराजः-(परितो विलोक्य) वीर

आसीन्नभो यद्विशदं समन्ता-
दाच्छादितं किं घनमण्डलेन ।

(विचिन्त्य ससंभ्रमम्)

एतद् ध्रुवं मामनुधावतां द्विषां
पादोद्धतै रेणुभिरस्ति धूसरम् ॥२॥

तदत्र यत्प्राप्तकालं तदस्माभिरविलम्बेनानुष्ठेयम् ।

बाजीः-देव नास्ति तवात्रौत्सुक्यकारणम् । यतः

दासस्तवायं करवालपाणिः
संबाधवर्त्मन्यकुतोभयः स्थितः ।
अल्पानुगैः शत्रुदलं निपातयन्
निरोत्स्यति द्राक् परिपन्थिसंचरम् ॥३॥

(दूरं विलोक्य ससंभ्रमम्) देव त्वरय त्वरय । संप्राप्तं यवनदलम् । अधिरुह्य

विशालेति । विशालौ वप्रौ एव उन्नतगण्डभित्ती *** । उपजातिवृत्तम् ।

दासस्तवेति । अत्र संक्षेपाख्यं लक्षणम् ।

त्वरयेति । अत्र विद्रवाख्यं संध्यङ्गम् ।

च दुर्गमावेदय मां पञ्चभिः शतघ्नीस्वनैस्तव तत्र सुखोपस्थितिम्। यावदहमेतानत्रैव प्रतिरुणध्मि ।

शिवराजः-वीर त्वामशरणमेवमुत्सृज्य कथमुत्सहे पदमपि पुरतः प्रक्रमितुम्।

बाजीः-देव नायमवसरो युक्तायुक्तविचारस्य ।

त्वदन्नपानादिविवर्धितोऽयं
भस्मीभवेच्चेदवने तवैव ।
तदास्य चर्मास्थिविनिर्मितस्य
देहस्य मन्ये कृतकृत्यतां पराम् ॥४॥

शिवराजः-धन्योऽसि मे भृत्यैकवीर । रक्षतु त्वां परदेवता ।

अङ्गरक्षः-इत इतो देवः

(उभौ सत्वरं परिक्रामतः)

शिवराजः-(स्वगतम्) यत्सत्यम्

राष्ट्रैकभक्तिप्रवणैः प्रगल्भैः
सत्त्वोच्छ्रितैरेव रणप्रवीरैः ।
उपासितः सद्य उपैति भूमिपः
स्वातन्त्र्यदेव्याः प्रणयस्य पात्रताम् ॥५॥

अङ्गरक्षः-एतद्दुर्गपालाधिष्ठितं विशालगडदुर्गस्य सिंहद्वारम् ।

(ततः प्रविशति सिंहद्वारावस्थितो दुर्गपालः)

दुर्गपालः-स्वागतं देवस्य।

शिवराजः-प्रथमं तावत्सूचयास्मदुपस्थितिं पञ्चभिः शतघ्नीविस्फूर्जितैः ।

दुर्गपालः-तथा ।

(इति यथादिष्टं कुरुते)

शिवराजः-(वामबाहुस्पन्दनं सूचयित्वा) अरे कोऽयं वैकृतागमः ।

तृणाय मत्वा निजजीवितं कृतं
प्राणान्तकष्टे मम येन रक्षणम् ।

वृकावृतस्येव गजस्य तस्य मे
भद्रे मनः संशयमेव गाहते ॥६॥

(प्रविश्य)

सैनिकः-(ससंभ्रमम्) देव हतो बाजीप्रभुः ।

शिवराजः-(निःश्वस्य) हा हताः स्मः । (सरोषम्) रे पाप शिद्दिहतक, कोऽयमपचारः ।

एकाकिनं समरवीरमिमं समेतै-
व्यापाद्य सैनिकगणैः क्व नु विक्रमस्ते ।

प्रिय भृत्यैकवीर,

आत्मार्पणेन तव पालयतो निजेशं
शुभ्रं यशस्तु परितो विततं त्रिलोक्याम् ॥७॥

अरे विस्तरेण श्रोतुमिच्छामि ।

सैनिकः-देवस्य प्रस्थानादनन्तरं समन्ततोऽभिपततोऽरातिनिवहान् खण्डशः कृत्वा पञ्चविंशतिक्षतनिःसृतरक्तरञ्जितगात्रेण प्रवीरेण रक्षितो दुर्गारोह-मार्गः । तदानीमसौ

आकृष्टभीषणकृपाणकरालपाणि-
श्छिन्नोत्तमाङ्गरिपुसैन्यकबन्धकीर्णम् ।
मार्गं निरुध्य सहसा समरप्रवीर-
श्चण्डप्रकोपहुतभुग्ज्वलितो विरेजे ॥८॥

शिवराजः-(स्वगतम्) अहो क्षत्रवीर एवं लोकोत्तरविक्रमेण त्वयाद्य रक्षितं धर्मराज्यम् ।

सैनिकः-एवं पराहते रिपुदले पापेन शिद्दिहतकेन शतघ्नीगोलकैर्विद्धः स देवस्य सुखोपस्थितिसूचकशतघ्नीस्वन एव दत्तावधानः स्वामिचिन्तापरो भूमौ निपपात।

शिवराजः-(सरोषम्) आः पाप कूटाभियोगनिस्त्रपक्षुद्र, अचिरेणैव त्वामशेषदुरितफलभागिनं करिष्यति शिवराजः ।

आकृष्टेति । *** वसन्ततिलकावृत्तम् ।

सैनिकः-ततश्च समाकर्ण्य संकेतितं शतघ्नीस्वनं -'अहो संपन्नः स्वामिनियोगः। भगवति देहि मे शरणम्' -इति सहसोदीर्य स प्राणानजहात् ।

शिवराजः-(निःश्वस्य) क्षत्रैकवीर, विरला हि त्वादृशाः स्वामिभक्ताः ।

प्रारब्धकर्मवशगाः क्रमशो विकारान्
सर्वेऽनुभूय ननु कालवशं प्रयान्ति ।
नूनं स एव निजदेशनरेशभक्तो
धन्योऽस्ति यस्य निधनं ज्वलितं यशोभिः ॥९॥

अये दुर्गपाल भवतु राजोपचारेण मम वीरस्यान्त्यक्रिया । अद्यैवाहं तस्य राजभक्तस्य सप्तपुत्रान् ममाङ्गरक्षकपदे नियुञ्जे ।

(प्रविश्य)

चरः-विजयतां देवः । संप्रति देवं दुर्जयं मत्वा परावृत्तः ससैन्यः शिद्दिहतकः।

शिवराजः-भद्र त्वं तावद्यवनेशमुपेत्यावेक्षस्व तस्य भाविचिकीर्षितम् ।

चरः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

गूढचरः-विजयतां देवः ।

शिवराजः-कथं प्रचलति दिल्लीशतन्त्रम् ।

गूढचरः-देव महानस्ति तत्र विपर्यासः ।

न्यायानुवर्तिनमसौ स्वगुरुं निगृह्य
राज्याधिरोहणमदास्तविवेकतत्त्वः ।
आशङ्क्य विश्वसिति नैव निजे परे वा
संबाधते प्रकृतिमात्तमहोग्रदण्डः ॥१०॥

संप्रति तदादेशानुरोधेनोद्यतो दक्षिणापथाधिपश्चाकणदुर्गोपरोधाय।

शिवराजः-पुनरपि ज्ञायतां तस्य प्रवृत्तिः ।

प्रारब्धेति । *** क्रमशो विकारान् - जायते अस्ति वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते नश्यति च - इति अनुभूय कालवशं प्रयान्ति म्रियन्ते इत्यर्थः *** । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

गूढचरः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-दुर्गपाल, प्रवर्त्यतामस्मच्छासनमधिकृतेषु यदुपस्थिते प्राणसंकटे जनपदं विहाय तैर्दुर्गाः समाश्रयणीया महता प्रयत्नेन च ते रक्षणीया इति । तथा चादिश्यतां मन्त्री यत्त्वया नौसाधनेन स्वायत्तीकर्तव्यो जंजीराद्वीप इति । तथैव सेनापतिनाप्यक्रमणीया अरक्षिता मोगलप्रदेशा इति । अल्पीयसा कालेनोपैष्यामो वयं सिंहगडदुर्गं तत्तत्रैव प्रेषणीयानि निवेदनपत्राणीति ।

दुर्गपालः-यदाज्ञापयति देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-मम वीराग्रसरेण परास्तमपि पुनरस्मान् परिबाधेत यवनसैन्यम् ।

अङ्गरक्षः-देव संनिहितो वर्षासमयः । तदुपस्थितमपि यवनसैन्यं स्वयमेव परावर्तिष्यते ।

शिवराजः-(परितो विलोक्य) एवमेतद् । यत एते

लुलितपथिकनेत्रे पूरयित्वा रजोभि-
वर्सनमपहरन्तो लुण्ठकाश्चक्रवाताः ।
जनपदपुरमार्गे संभ्रमन्तो यथेच्छं
वियदभि घनभीता उत्प्लवन्ते समन्तात् ॥११॥

(ऊर्ध्वं विलोक्य) अहो गगनमध्यमारुरुक्षति भगवानहर्पतिः । यावत्साधयामः सभागृहं राजकार्याण्यवेक्षितुम् ।

(इति सपरिजनो निष्क्रान्तः)

॥ समाप्तोऽय**मात्मसमर्पण**नामा पञ्चमोऽङ्कः ॥

लुलितेति । *** मालिनीवृत्तम् ।

इति श्रीछत्रपतिसाम्राज्यटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्या-
मात्मसमर्पणनामा पञ्चमोऽङ्कः समाप्तः ।

षष्ठोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशन्ति सिंहगडदुर्गप्रासादावस्थिता मन्त्रिणः)

नेताजीः-(सहर्षम्) अभिनन्द्यते प्रधानमन्त्रिपदमधिरूढ आर्यमिश्रः ।

मन्त्री-वीर महानेषोऽनुग्रहः कृतवेदिनो महाराजस्य । परंतु

भोगप्रसक्तस्य महत्पदाप्ति-
यथात्मतोषाय न मे तथेयम् ।
देवेन साक्षात् परिचारकर्मणि
नियुक्त इत्येव मम प्रसादः ॥१॥

नेताजीः-पुण्यवतामेव खलु महत्सपर्यासौभाग्यम् ।

मन्त्री-अपि गृहीता अरक्षिता मोगलप्रदेशाः ।

नेताजीः-अथ किम् । ततश्च संगृहीतो लक्षत्रयपरिमाणो राजांशोऽद्यैव मया कोशाध्यक्षाय समर्पितः ।

मन्त्री-दिष्ट्या प्रतिदिनमेधते महाराजस्य कोशदण्डजः प्रभावः ।

एसाजीः-तथापि नास्ति देवस्य विश्रामावसरः । एकतस्तातादेशमनुरुध्य बीजापुरेशेन संदधानस्य पुनरन्यतः समुपस्थितो मोगलेशेन सह विग्रहः ।

मन्त्री-वीर लोकसंग्रहार्थमाविर्भूतानामीश्वराणां स्वभावसिद्धः प्रवृत्तिप्रकर्षः। पश्य

नित्यं प्रकाशयति लोकमिमं विवस्वा-
नाप्याययत्युपचितः सुधया मृगाङ्कः ।
सप्तग्रहास्त्वविरतं परितो भ्रमन्ति
जानाति नैव विरतिं महतां प्रवृत्तिः ॥२॥

(नेपथ्ये)

इत इतो देवः ।

प्रधानमन्त्रीति । मोरोपन्तपिंगळेनामा ।

(आकर्ण्य) अहो, अत्रैवोपसर्पति राजकार्यव्याकुलो देवः ।

(ततः प्रविशति शिवराजः)

मन्त्रिणः-(उत्थाय) स्वागतं देवस्य ।

(सर्वे शिवराजमनूपविशन्ति)

शिवराजः-मन्त्रिणः पुनरपि प्रत्यासन्नो विग्रहः ।

विरोधे विश्रान्ते प्रबलयवनेशस्य परितो
नवोऽयं संप्राप्तस्तदधिकबलैर्विग्रहविधिः ।
पतन्त्येते नित्यं किमिति तिमिरान्धा रिपुगणाः
पतङ्गत्वं प्राप्ताः समरसमुदर्चिर्हुतवहे ॥३॥

मन्त्री-देव समादृतोऽस्त्यचिरेण मदोद्धतेन मोगलेशेन परंपरागतराज्यशासनव्यतिक्रमः । अनेन पुनरकाण्डोपनतो भविष्यति मोगलसाम्राज्यविध्वंसः । यतः

सत्त्वोद्रेकाल्लसन्तोऽप्युदितनयगुणा न्यायमार्गप्रवृत्ता
यान्त्युत्कर्षं नरेन्द्राः प्रकृतिहितपरा मण्डलं प्रीणयन्तः ।
अन्ये त्वेतद्विमोहाद् व्यसनपरवशा विद्विषन्तो मदान्धाः
प्रत्यासन्नावसानाः प्रकृतिविमृदिता आशु नाशं व्रजन्ति ॥४॥

शिवराजः-सत्यं प्रकृतिनिबन्धनैव राष्ट्रसमृद्धिः ।

(प्रविश्य)

द्वारपालः-विजयतां देवः । दिल्लीनगरात् संप्राप्तः कोऽपि यवनतापसो द्वारि तिष्ठति ।

शिवराजः-प्रवेशयैनम् ।

द्वारपालः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

विरोध इति । *** अयं नवो विग्रहविधिः संप्राप्तः । तिमिरान्धा मोहावृत्ता *** । शिखरिणीवृत्तम्।

सत्त्वोद्रेकादिति । ***मण्डलं सामन्तचक्रम् । स्रग्धरावृत्तम् ।

(प्रविश्य)

यवनतापसः-विजयतां महाराजः ।

शिवराजः-अस्ति काचित् सविशेषा प्रवृत्तिर्मोगलेशस्य ।

यवनतापसः-देव विपर्यस्तं सर्वं मोगलेशतन्त्रम् ।

न मन्यते मन्त्रिकृतार्थनिर्णयं
क्षत्रेश्वराणां कुरुतेऽवधीरणाम् ।
विद्वेष्टि सामन्तगणं त्वकारणं
स्वच्छन्दचारेण चरत्यधीश्वरः ॥५॥

अतो राज्यलोभाकृष्टेनानेन समन्तात् प्रवर्तितो रणोद्यमः । अत्रान्तरे तस्य श्रवणपथमुपगतो बीजापुरसेनापतिवधोदन्तः । तदेतत्

श्रुत्वा तव प्रसभमाक्रमणं विपक्षे
त्रस्तो व्युदस्यति स भोगविलासलौल्यम् ।
आक्रोशति स्वजनमुद्विजते हतौजा
आशङ्कतेऽभिपतनं तव विक्लवश्च ॥६॥

अतस्तेनादिष्टो दक्षिणापथाधिपो यत्त्वया कथमपि निगृह्यात्रानेतव्यः स सह्यमूषक इति । तदाज्ञानुरोधेनापरिमितबलसमेतः स पुनानगरमधिष्ठायास्मदाक्रमणमुपकल्पयते । संप्रति च सपरिवारः स नर्तकीभिरुपासितो महाराजस्य प्रासाद एव निवसति ।

शिवराजः-अन्यतो युद्धप्रवृत्तेष्वस्मास्वनेन धूर्तेन प्रधर्षिताऽस्मद्राजधानी । इदानीमयं कामुकः

देवाग्निविप्रार्चनमन्त्रपूतं
पूर्वं यदासीन्मम राजमन्दिरम् ।
करेणुकाभिर्वनराजगह्वरं
करीव तन्मे मलिनीकरोति ॥७॥

तदद्य तं प्रदर्शयिष्यामि मम नयपाटवम् ।

मन्त्री-देव सम्यक् प्रयुक्ता अप्यस्मिन् कोशबलसमृद्धे कुण्ठीभविष्यन्ति

सामादयश्चत्वार उपायाः । तत्पञ्चमोपायमन्तरेण नास्ति किमप्यत्र प्रतिविधानम् । यतः

एकान्तेनैवाप्रधर्ष्यं बलाढ्यं
दुःसंधानं चान्तिके वर्तमानम् ।
यत्नेनैनं विद्विषन्तं निगृह्य
स्वात्मानं वै रक्षयेन्नीतिदक्षः ॥८॥

अपिच सेनान्यधीनैव सर्वा समरप्रवृत्तिः । यतः

यानासने व्यूहविधानमाक्रमं
परावरोधं समरावतारम् ।
युद्धे प्रवृत्तिं विरतिं ततः पुन-
र्नेता स्ववीर्यानुगुणं चिकीर्षति ॥९॥

तन्नेतृवधेन विरतो भविष्यति रणोद्यमः परिरक्षिताश्च भविष्यन्त्युभयतः सैनिकानां प्राणाः ।

शिवराजः-तदद्यैवानुयात्रिकच्छद्मना प्रविश्य पुनानगरमासादयिष्ये मोगलसेनानायकम् ।

भीष्मद्रोणादयः पूर्वे सेनान्यः पाण्डुनन्दनैः ।
छलेनैव हता युद्धे श्रीपतेरनुशासनात् ॥१०॥

(चरं प्रति) भद्र उच्यतां मद्वचनाद्यवनसेनानियुक्तो महाराष्ट्रियो गुल्माध्यक्षो यत्त्वयाऽद्यैव विवाहयात्रार्थं संपादनीयं मोगलसेनापतेरनुज्ञापत्रम् । तत्रच्छद्मवेषधरा वयं भविष्यामस्तेऽनुयात्रिका इति ।

यवनतापसः-यदाज्ञापयति देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-अस्मिन् साहसोपक्रमे केवलं पञ्चविंशतिसैनिकसमे-तावमात्यपदातिनायकौ भवतां मम पार्श्वानुवर्तिनौ ।

उभौ:-देव सज्जौ स्वः ।

शिवराजः-सेनापते त्वं तावत्संनाहय शतघ्नीविभागम् ।

नेताजीः-यदाज्ञापयति देवः ।

मन्त्री-अत्रावशिष्यते देवस्य प्रत्यागमनप्रत्यूहनिवारणाय कापि विशिष्टा प्रयुक्तिः। तद् देवस्य परावृत्तिसमये गृहीतसंकेताः कतिपयसैनिकाः प्रज्वालयन्तु कात्रजवर्त्मनि समुन्नतपादपविटपाग्रेषु महोक्षशृङ्गेषु च निबद्धांस्तैलकर्पटान् । अनेन भ्रान्ता मोगलसैनिकास्तत्रैवानुधावेयुः ।

शिवराजः-अहो सुविभावितोऽयं छलप्रबन्धः । एवं भविष्यति सर्वेषां पुनरत्र सुखोपस्थितिः । तद्भवतां प्रयाणाभिमुखौ मे प्रियसहायौ । यावदहमम्बामामन्त्र्य प्रस्थानप्रवणो भवेयम् ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ समाप्तोऽयं **छलप्रबन्ध**नामा षष्ठोऽङ्कः ॥

कात्रजवर्त्मनीति । कात्रजनामा शैलारोहः ।

इति श्रीछत्रपतिसाम्राज्यटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां छलप्रबन्धनामा षष्ठोऽङ्कः समाप्तः ।

सप्तमोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशतो मोगलसेनामुखाध्यक्षौ)

प्रथमः-भद्र सेनाधिपतौ कोऽयमसाधारणः सार्वभौमस्य पक्षपातो येनासौ स्वाम्यधिकारानपि स्वयं स्वातन्त्र्येणोपभुङ्क्ते ।

द्वितीयाः-अये किं न जानासि प्राग्वृत्तम् ।

प्रथमः-स्वामिनियोगानुरोधेनाद्यैवाहं गान्धारेभ्योऽत्र संप्राप्तः ।

द्वितीयः-तच्छृणु सावधानः । पूर्वं दक्षिणापथाधिपत्ये स्थापितस्य सार्वभौममातुलस्य प्रासादं गाढान्धकारावृतायां रजन्यां प्रच्छन्नं प्रविश्य शिवराजेनोच्छिन्नास्तस्य भयद्रुतस्य कराङ्गुल्यः । अत्रान्तरे चाकर्ण्य तदाक्रोशं साहाय्यार्थमुपागतस्तदात्मजः शिवराजपार्श्वचरेण सैनिकैन यमालयं प्रेषितः । ततः सरभसं विनिवृत्तं शिवराजमनुद्रुतं मोगलसैन्यं कात्रजवर्त्मनि दीपप्रकाशमवलोक्य तत्रैव प्रयातम् । तत्र च शिवराजमदृष्ट्वा भग्नाशं परावृत्तम् । एतच्छलप्रबन्धप्रवृद्धमन्युना दक्षिणापथाधिपेन प्रत्यूषे समवरुद्धः सिंहगडदुर्गः । तदानीं दुर्गाधिरूढेन शिवराजेन शतघ्नीप्रहारैः परास्तं तदवरोधकबलम् । निशम्यैतत् खिन्नः सार्वभौमः स्वमातुलं वङ्गाधिपत्ये नियुज्य समरविजयिनं जयसिंहमहाराजं स्वाम्यधिकारेण संयोज्य शिवराजं सत्वरं निग्रहीतुमत्र प्रेषयामास । संप्रति चास्मन्महाराजनयवशंवदेन शिवराजेन प्रेषितो रघुनाथपन्तो महाराजेन सह मन्त्रयमाणस्तिष्ठति । शिवराजश्च स्वयं संधिनिर्णयार्थमित एवाभिवर्तते ।

प्रथमः-नास्ति किमप्यसाध्यं सर्वत्र विजयशालिनः सार्वभौमनिष्ठस्य जयसिंहमहाराजस्य । (ऊर्ध्वं विलोक्य) अहो परिणतप्रायो हि दिवसः । यावत्साधयामः स्वनियोगपरिपालनाय ।

(इति निष्क्रान्तौ)

विष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशति जयसिंहसेनानिवेशमभि प्रस्थितः सपरिजनः शिवराजः)

जगन्नाथपन्तः-(परितो विलोक्य) देव पश्य,

वक्रा इमे तरुलतास्तबकैः सुगुप्ता
निम्नोन्नता विकटशाद्वलशैलमार्गाः ।
आयाससाध्यकुटिलाक्रमपाटवे नः
शिक्षाविशेषमसमं वितरन्ति साक्षात् ॥१॥

शिवराजः-सत्यं शैलोद्देशसंक्रमणपाटवेऽतिवर्तन्ते मोगलसैनिकानस्मत्सैनिकगणाः । येनाल्पबला अपि वयं प्रबलपरिपन्थिनां पुरतो धर्मराज्यसंस्थापनयशोभागिनः संवृत्ताः ।

जगन्नाथपन्तः-एवमेतत् । अपिच

उच्चावचाचलभुवो गिरिगह्वराणि
नानालतातरुवराञ्चितकाननानि ।
उत्तुङ्गशैलशिखरस्रुतनिर्झराणि
दुर्गात्मना तव परस्य च संस्थितानि ॥२॥

शिवराजः-एतैर्दुर्गप्रवरैरेवाद्यावधि रक्षितमस्मत्स्वातन्त्र्यम् । परंतु कालमहिम्ना संप्रति तानेवाहुतीकर्तुं वयं प्रवृत्ताः । तथाप्यनुकूले दैवे पुनस्त एव भविष्यन्त्यस्मत्स्वातन्त्र्यसहायाः ।

जगन्नाथपन्तः-तत्र कः संदेहः । सर्वत्रैव सान्तरायोऽस्ति प्रकृष्टकलाधिगमः। परंतु कर्तव्यनिष्ठाया अविच्युतानां भवन्ति सर्वेऽपि परिणामसुखोदया उपक्रमाः ।

शिवराजः-भद्र, अथ कियद्दूरं वर्तते मोगलसेनानिवेशः ।

जगन्नाथपन्तः-देव पश्यैतेऽस्मत्तुरंगमाः

वक्रा इति । *** वसन्ततिलकावृत्तम् ।

उच्चावचेति । *** एतानि सर्वाणि तव दुर्गात्मना दुर्गरूपेण परस्य च दुर्गात्मना अन्तरायरूपेण स्थितानि । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

तानेवाहुतीकर्तुमिति । अत्र विमर्शसन्ध्यारम्भः । तल्लक्षणं दर्पणे 'यत्र मुख्यफलोपाय उद्भिन्नो गर्भतोऽधिकः । शापाद्यैः सान्तरायश्च स विमर्श इति स्मृतः ॥' इति ।

संक्रम्य गुप्तान् विषमाद्रिमार्गा-
नुत्तीर्य विस्तीर्णजलप्रवाहान् ।
प्रवातवेगेन समुत्पतन्तः
प्राप्ताः क्षणेनोच्छ्रितशैलवप्रम् ॥३॥

शिवराजः-उपागता वयं तावत् पुरन्दरपरिसरप्रदेशम्। (दूरं विलोक्य सविस्मयम्) अहो किं नामैतत् । पश्य

आच्छाद्येवोष्णरश्मिं निजघनततिभिर्ध्वान्तमापादयद्भि-
र्हृन्मर्मोद्भेदिनादैः स्तनितपटहजैर्गर्वमाघोषयद्भिः ।
धारासंपातभग्नप्रतिभटविटपिव्याकुलोपत्यकान्त
आक्रान्तो म्लेच्छसैन्यैर्जलधरनिवहैर्दुर्गराजः समन्तात् ॥४॥

जगन्नाथपन्तः-देव, अवरुद्ध इव लक्ष्यते पुरन्दरदुर्गो मोगलसैनिकैः ।

शिवराजः-अरे किमिदं द्वैधप्रवणत्वं यवनसेनापतेः । यदेकतः संधानतन्त्रमुपन्यस्यान्यतोऽसौ विग्रहमनुजानाति ।

जगन्नाथपन्तः-देव कथं नु संभाव्यत एतत्क्षत्रप्रवीरस्य जयसिंहस्य । किंत्ववधीरितसेनापतिनिदेशस्य मोगलपदातिनायकस्य स्यादेतदनार्यचेष्टितम् । यतः

राज्ञां प्रिया बहुमता व्यसने सहाया
विस्रम्भभूमय इमे परिपार्श्वगाश्च ।
संतर्ज्य शासनमपि स्वपतेर्मदान्धाः ।
क्षुद्रा अरण्यवृषवद्विचरन्त्यतन्त्राः ॥५॥

शिवराजः-(अश्ववेगं निरुध्य) एष कोऽपि क्षत्रियसादी सवेगमित एवाभिवर्तते।

(ततः प्रविशति क्षत्रियसादी)

आच्छाद्येति । निजघनततिभिरुष्णरश्मिं सूर्यं पक्षे दुर्गपालं मुरारबाजीवीरमाच्छाद्येव ध्वान्तमन्धकारमापादयद्भिः कुर्वद्भिः स्तनितानि एव पटहाः तेभ्यः जातः पक्षे स्तनितानि इव पटहाः तेभ्यः जातैः हृदः हृदयस्य मर्माणि भिन्दन्ति तादृशैः नादैः गर्वमाघोषयद्भिः धारासंपातैः आसारैः पक्षे असिधारासंपातैः भग्नाः ये प्रतिभटाः एव विटपिनः पक्षे प्रतिभटाः इव विटपिन वृक्षाः तैः व्याकुलः व्यग्रः उपत्यकान्तः उपत्यकाप्रदेशः यस्य स दुर्गराजः पुरन्दरदुर्गः म्लेच्छसैन्यरूपैः जलधरनिवहैः पक्षे जलधरनिवहरूपैः म्लेच्छसैन्यैः समन्तात् आक्रान्तः । स्रग्धरावृत्तम् ।

सादी-(ससंभ्रमम्) देव, महदत्याहितम्। मोगलपदातिनायकेनोपजापितोऽपि स्वामिचरणयोरात्मनः परां निष्ठां प्रकटयन् शतशो मोगलसैनिकान्निहत्य वीरगतिं प्रपन्नः पुरन्दरदुर्गपालः ।

शिवराजः-हा कष्टम् । उपक्रान्तमिव लक्ष्यते दुर्दैवविचेष्टितम् ।

सादी-तस्य चालोकसाधारणविक्रमविस्मितेन मोगलनायकेन तदानीं सहसैवोदीरितं - 'विश्वपतिरेवैतादृशान्वीरभटानुत्पादयितुं प्रभवति'-इति ।

शिवराजः-अहो पराभिनन्दितविक्रमस्य तस्य निश्चितोऽनन्तलोकजयः । अये गच्छ त्वं पुनरपि पुरन्दरदुर्गम् ।

सादी-यथाज्ञापयति देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-भद्र नास्त्यत्रावकाशो विलम्बस्य ।

(इति सर्वेऽश्वान्नोदयन्ति)

(ततः प्रविशत्यपटीक्षेपेणाश्वारूढ उदयसिंहः)

उदयसिंहः-सह्येश्वर, तिष्ठ तावन्मुहर्तम् ।

शिवराजः-(अश्वं निगृह्य) अहो उदयसिंहः । अप्यनामयं महाराजस्य ।

उदयसिंहः-अथ किम् । अपि च संदिष्टमस्ति देवेन यद् - मदादेशानुवर्तननिष्ठापुरःसरं यदि तवागमनं स्यात्तदा सुखेनागन्तव्यम्। अन्यथा त्वित एव विनिवर्तनीयम्-इति ।

शिवराजः-सर्वथा मान्य एवास्माकं क्षत्रकुलनायकस्यादेशः तत्सत्वरमुपेमो महाराजस्य शिबिरम् ।

(सर्वेऽश्वान्नोदयन्ति)

उदयसिंहः-सह्येश्वर, प्रत्यासन्नोऽस्मत्सेनानिवेशः । तदश्वेभ्योऽवरुह्य प्रविशामः।

(इति सर्वेऽवरोहन्ति)

(ततः प्रविशत्युपकार्यावस्थितः सपरिवारो जयसिंहो रघुनाथपन्तश्च)

रघुनाथपन्तः-(दूरं विलोक्य) एष उपस्थितोऽस्मत्स्वामी शिवराजः । यावत्तं प्रत्युद्गच्छामि ।

(इत्युपसर्प्य) स्वागतं देवस्य । (इत्यभिनन्दति)
प्रविशतु देवः सपरिवारो महाराजोपकार्याम् ।
(इति सपरिवारं शिवराजं प्रवेशयति)

जयसिंहः-(अभ्युत्थाय) स्वागतं सह्येश्वरस्य ।
(इति हस्तयोर्गृहीत्वा) ममैवार्धासनमधिष्ठातुमर्हति सह्येश्वरः ।
(इति स्वपार्श्वे शिवराजमुपवेशयति)

शिवराजः-महानेषोऽनुग्रहः क्षत्रकुलमण्डनस्य ।

जयसिंहः-अप्यनामयं क्षत्रप्रवीरस्य ।

शिवराजः-राजन् संधानप्रवणेऽपि मयि कथं क्षत्रपरिमर्दान्न विरमत्येष पदातिनायकः।

जयसिंहः-सार्वभौमस्य बहुमानेनावलिप्तोऽयं त्वया स्वयमेवोपेत्य सान्त्वयितव्यः । एष प्रवीरतरो मम पितृव्यः सुभानसिंहो भविष्यति तव सहायः । तन्मा भूल्लेशतोऽप्यत्र तवानिष्टशङ्कावकाशः। संप्रति प्रेषयाम्यहमुदयसिंहं युद्धविष्टम्भाय।

शिवराजः-राजन्, त्वद्वात्सल्यपरिगृहीतोऽहं सर्वथा प्रतिपद्ये तव हितोपदेशम्।

जयसिंहः-पूर्वं तावद्विधीयतां स्वनाममुद्राङ्कितमेतत्संधिपत्रम् ।
(इत्यर्पयति)

शिवराजः-(वाचयति)

श्रीमद्भारतराजकुलाधीश्वरसार्वभौममोगलेशचरणरचिताञ्जलिः शिवराजः,

१. स्वकीयांस्त्रयोविंशतिदुर्गांश्चत्वारिंशल्लक्षांशवहांश्च जनपदान् सार्वभौमस्य स्वाधीनानापादयति । स्वयं चावशिष्टान् द्वादशदुर्गांश्चतुर्लक्षांशवहांश्च जनपदान् सार्वभौमशासन-मनुरुध्यानुशास्ति।
२. स्वकुमारं च सार्वभौमसेनायां पञ्चसहस्रसादिनामधिकारपदे स्थापयति।
३. स्वयं च सार्वभौमशुश्रूषायां सर्वदा सादरो वर्तते ।
४. स्वयं च संनिहितराज्ययोश्चतुर्थांशसंग्रहाधिकारं

सार्वभौमाज्ञयोपभुनक्ति।

इति । (स्वनाममुद्राङ्कितं विधाय) उररीक्रियते मयैतत्संधिपत्रम् ।

(इत्यर्पयति)

जयसिंहः-सह्येश्वर परं प्रीणयसि मां तव सौजन्यातिशयेन । उदयसिंह, उच्यतां मद्वचनात्पदातिनायको यद्युद्धव्यवसायतस्त्वं सद्यो विरमेति ।

उदयसिंहः-यथाज्ञापयति देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

प्रतीहारः-विजयतां देवः । एष सार्वभौमस्य संदेशहरः कोऽपि दूतो द्वारि तिष्ठति ।

जयसिंहः-प्रवेशयैनम् ।

प्रतीहारः-यदाज्ञापयति देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

दूतः-विजयतां महाराजः ।

जयसिंहः-अप्यनामयं सार्वभौमस्य ।

दूतः-अथ किम् । प्रेषितमेतद्राजशासनं महार्हवस्त्राभूषणपुरःसरं सार्वभौमेण शरणमुपागते शिवराजे वितरितुम् ।

(इति राजशासनादीन्यर्पयति)

जयसिंहः-(सविस्मयं स्वगतम्) अहो भवितव्यता । (वाचयित्वा) सह्येश्वर दिष्ट्याऽनवलोकितमप्यभिनन्द्यते सन्धिपत्रं सार्वभौमेण बहुमन्यसे च त्वं महार्होपचारैः।

शिवराजः-राजनीतिदक्षे महाराजे मन्त्रिसेनापतिपदाधिरूढे सहैवोपक्रमेणार्थसिद्धिः सार्वभौमस्य ।

जयसिंहः-कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

प्रतीहारः-आज्ञापयतु देवः ।

जयसिंहः-आराधयन्तु संगीतेन सह्येश्वरं नर्तक्यो यावदहमेनं संभावयामि महार्होपचारैः ।

प्रतीहारः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

जयसिंहः-वत्स शिवराज उत्तिष्ठ ।

(इति वस्त्रादीनि परिधापयति)

(प्रविश्य)

नर्तक्यः-विजयतां महाराजः ।

(इति संगीतमारभन्ते)

(बिहागरागेण तेवरातालेन गीयते)

सुमसुकुमार नयनविहार ॥
हृदयाधार यौवनसार ।
प्रणयापारपारावार ॥ सुम० ॥१॥
जलदश्याम धर सुखधाम ।
कुसुमललामचम्पकदाम ॥ सुम० ॥२॥
अयि भुवनेश मानववेश ।
रमय रमेश मां रसिकेश ॥ सुम० ॥३॥

जयसिंहः-अनया चम्पकमालया सुबद्धं भवतु ते हृदयं मोगलसाम्राज्येन ।

(इति मालामर्पयति)

शिवराजः-राजन् भवादृशैर्भारतवीराग्रसरैः क्षुण्ण एव पन्था अस्माकं परमं शरणम् ।

जयसिंहः-अल्पीयसा कालेन नूनं भविष्यति तव सार्वभौमसमागमसौभाग्यम्। तत्र च करिष्यति ममात्मजो रामसिंहस्तव साहाय्यम् । तदानीं तवालोकसाधारणविक्रमपरितुष्टो मोगलेशो नियोजयिष्यति त्वां दक्षिणापथाधिपत्ये।

शिवराजः-महाराजस्य वचसि वर्तमानस्य ममोत्तरोत्तरमुत्कर्ष एव ।

सुमसुकुमारेति। *** कृष्णं प्रति राधायाः प्रार्थनारूपमिदं गेयपदम्। अत्रान्त्यानुप्रासः शब्दालङ्कारः।

जयसिंहः-क्षत्रप्रवीर, त्वादृशानां विक्रमशालिनां साहाय्येन समीहते सार्वभौमः साम्राज्यप्रभावं समेधयितुम् ।

शिवराजः-भवादृशैः क्षत्रेश्वरैः समृद्धे साम्राज्ये का गणना मम साहाय्यस्य। किंतु महाराजस्य प्रसादात् सार्वभौमसपर्याप्रसङ्गोदयेनात्मानमहं कृतिनं मन्ये ।

जयसिंहः-(ऊर्ध्वं विलोक्य) अहो, उपक्रान्तो निशीथसमयः । कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

प्रतीहारः-आज्ञापयतु देवः ।

जयसिंहः-अन्तर्गृहमार्गमादेशय । (शिवराजं प्रति) एहि सह्येश्वर ।

प्रतीहारः-इत इतो देवः ।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

शिवराजः-(स्वगतम्) अहो कथमद्यापि साशङ्कमेव वर्तते मे मनो मोगलाधीश्वरे। यद्

आजन्मनो जनमिमं द्विषताऽधमेन
साम्राज्यवैभवमदोद्धतमानसेन।
स्वातन्त्र्यमन्यनृपतेरसहिष्णुना मे
संमाननं किमु कृतं प्रविलोभनार्थम् ॥६॥

प्रतीहारः-एतदन्तर्गृहद्वारं प्रविशतु देवः सह्येश्वरश्च ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य सुवर्णमञ्चावधिरुह्य)

जयसिंहः-क्षत्रवीर तव सामोपचारप्रवणतयाऽतीव संतुष्टोऽस्मि ।

शिवराजः-राजन्, अस्थानेऽपि शङ्काकुलं मे मनो मां मुखरयति यत्कथमलोकसाधारणविक्रमाः साक्षाद्विजयमूर्तयो भवादृशा अपि सानन्दमङ्गीकुर्वन्ति मोगलेशानुगत्वम् ।

जयसिंहः-वत्स कालचक्रपरवशा हि सर्वे प्राणिनः । संप्रति हीनगुणानां

आजन्मन इति । *** वसन्ततिलकावृत्तम् ।

क्षत्राधिपानां गुणोत्कर्षेणारूढप्रतापस्य मोगलान्वयस्य सपर्यामन्तरेण न विद्यतेऽन्यदालम्बनम्। तद्यावदेते न भवन्त्यन्तराया अस्मद्धर्मानुष्ठानेषु तावत्संमाननीयाः। तथापि सांप्रतं सम्राट्पदमारूढेन मोगलेशेन परधर्मविद्वेषपरेणोप्तमेव साम्राज्यविध्वंसबीजम्! अहो बत यद्भावि तत्केन निवार्यते । पूर्वसम्राडनुग्रह-परंपरावशीकृतैरस्माभिस्तु कृतज्ञतयाऽनुष्ठीयते भृत्यधर्मः ।

शिवराजः-राजन्, अन्यथा खलु मे प्रत्ययः । यतः

स्वामिनं तु निजधर्मविच्युतं
सेवकः परिहरन्न दोषभाक् ।
अग्रजं हि परदारलोलुपं
व्यावृणग् गुणनिधिर्विभीषणः ॥७॥

जयसिंहः-अहो क्षत्रवीर, एवं धर्मतत्त्वख्यापनेन व्यामोहयसीव मे मनीषाम्। तथाप्यस्माकं तु पूर्वैरुपहत एव वर्त्मनि नैसर्गिकः पक्षपातः । (ऊर्ध्वं विलोक्य) अहो निशीथकल्पा हि रजनी । यावद्रात्रिकृत्यानि परिसमाप्य शयनमारोहावः ।

(इति निष्क्रान्तौ)

॥ समाप्तोऽयं **मोगलेशानुसंधान**नामा सप्तमोऽङ्कः ॥

स्वामिनमिति । निजधर्मविच्युतं स्वामिनं तु परिहरन् त्यजन् सेवकः दोषभाक् न भवति । हि यस्मात् गुणनिधिः विभीषणः परदारेषु लोलुपमतिशयेन लुब्धं अग्रजं रावणं व्यावृणक् अजहात्। रथोद्धतावृत्तम्। अर्थान्तरन्यासोऽलंकारः ।

इति श्रीछत्रपतिसाम्राज्यटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां
मोगलेशानुसंधाननामा सप्तमोऽङ्कः समाप्तः ।

अष्टमोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति निजोपवनप्रासादावस्थितः रामसिंहः)

रामसिंहः-(स्वगतम्) अहो नानानयप्रयोगपटुनाऽपि शिवराजेन पितृनयवशंवदेनाभिनन्दितं मोगलेशानुसन्धानम् । तन्निदेशवर्तिना चानेनापहाय स्वमानमाराध्य च मोगलपदातिनायकं तस्मै समर्पिताः पुरन्दरप्रभृतयो दुर्गप्रवराः । स्थापितश्च निजयुवराजो मोगलसेनायामधिकारपदे । इतः पित्रैव दत्ताभयोऽसौ मन्त्रिविनिहितराज्यभरः सार्वभौमसमागमार्थमत्र संप्राप्तः संप्रति केवलमौत्सुक्येन कालं यापयति। इतश्च निजमातुलान्याक्रन्दाक्षिप्तहृदयो मोगलेशः पूर्ववत्तस्मिन् सविशेषभावो न लक्ष्यते । निजाज्ञयैव मोगलयुवराजवद्वर्त्मनि प्रतिनिवेशं संभावितस्यास्य तु सामन्तसाधारणोपचारपराऽत्र सत्क्रिया केवलं संधुक्षयिष्यति निर्वाणभूयिष्ठं पूर्वं वैरानलम्। अहो धिगिमामनवस्थितिं लोकपालानाम् । यत्-

पार्श्वस्थानुचरोपजापमुषिता न्यक्कुर्वते सुव्रतान्
दुर्वृत्तानपि चाटुवादविजिताः श्लिष्यन्ति प्रेम्णाधमान् ।
मिथ्योत्सेकहता द्विषन्ति च हितान् संतर्जयन्त्यूर्जितान्
दोलाचञ्चलचित्तवृत्तय इमे त्वाराधनीयाः कथम् ॥१॥

(पुरतो विलोक्य) एष परिसमाप्य प्रसाधनविधिमुपस्थितः सह्येश्वरः ।

(प्रविश्य)

शिवराजः-दिष्ट्याद्य भविष्यति चिरप्रार्थितः सार्वभौमसमागमः ।

रामसिंहः-अथ किम् । परंत्वपरिचिताः सन्त्येते मोगलेश्वरा आर्यसमुदाचारस्य। तन्महाराजेनोपेक्षणीयस्तेषामाचारातिक्रमः ।

पितृनयेति । पितुः जयसिंहस्य नयः तस्य वशंवदेन अधीनेन ।

पार्श्वस्थेति । पार्श्वस्थानामनुचराणामुपजापेन तत्कृतभेदनेत्यर्थः मुषिताः अपहृताः इमे नराधिपाः सुव्रतान् न्यक्कुर्वते तिरस्कुर्वन्ति चाटुवादैः मिथ्यास्तुतिभिः विजिताः वशीकृताः दुर्वृतानधमानपि प्रेम्णा श्लिष्यन्ति तेषु विश्वसन्तीत्यर्थः । मिथ्या उत्सेकेन गर्वेण हृता हितान् द्विषन्ति ऊर्जितान् बलिनश्च संतर्जयन्ति अवगणयन्ति। दोलावत् चञ्चला चित्तवृत्तिः येषां ते इमे तु कथमाराधनीयाः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

शिवराजः-कुमार, सम्यक् परिचितोऽस्मि यवनसमुदाचारस्य ।

(प्रविश्य)

द्वारपालः-विजयतां कुमारः । जातः खलु सार्वभौमसभोपासनसमयः ।

रामसिंहः-साधयामस्तावत् । भद्र आदेशय सार्वभौमप्रासादमार्गम् ।

द्वारपालः-इत इतो देवौ ।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

शिवराजः-(पुरं निर्वण्य) अहो

ललिततरुवितानैर्मण्डिता राजमार्गैः

स्फटिकविमलभासैः सौधवासैः समृद्धा ।

यवनजवनयानैः संकुलेयं विशाला

विविधविपणिपण्या राजते राजधानी ॥२॥

रामसिंहः-महाराज किं बहुना । साक्षाद् विलासभूमिरेषा विलासिनां मोगलराजकुलेश्वराणाम् ।

द्वारपालः-एते संप्राप्ता वयं सार्वभौमसभामण्डपद्वारम् । तत्प्रविशतां देवौ।

(इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति सभामध्यवर्ती मयूरासनस्थः सार्वभौमः)

वीणिनौ-(वीणावाद्येन गायतः)

(कर्णाटरागेण झम्पातालेन गीयते)

लताकुञ्जलीना ॥

तृणाङ्के शयाना स्वबाहूपधाना ।

स्वयं वीतमाना प्रिये सावधाना ।

शुचा विह्वला ते नवीना निलीना ॥ लता० ॥१॥

पदं ते लपन्ती वियोगे तपन्ती ।

मुखं स्नापयन्ती तनुं ग्लापयन्ती ।

रुजा क्षीयते कान्तहीना निलीना ॥ लता० ॥२॥

ललितेति । *** मालिनीवृत्तम् ।

लतेति । राधाप्रयुक्ताया दूत्याः कृष्णं प्रतीयमुक्तिः । *** अत्रान्त्यानुप्रासः शब्दालङ्कारः ।

अवस्थानमन्ते प्रियाया वरं ते ।
विलम्बेऽशुभं तेऽनुतापो दुरन्ते ।
क्षणं याचते नाथ दीना निलीना ॥ लता० ॥३॥

शिवराजः-(रामसिंहेन सह प्रविश्य संगीतमाकर्ण्य स्वगतम्) अहो मद्वियोगेन दुरवस्थामनुभवति मम महाराष्ट्रभूमिरिति सूचितमनेन गेयपदेन।

रामसिंहः-(शिवराजेन सह सार्वभौममुपसृत्य) विजयतां सार्वभौमः । एष सार्वभौमादेशानुवर्ती समुपस्थितः शिवराजः ।

शिवराजः-(त्रिः प्रणम्य) अनुगृह्णातु सार्वभौमः उपहारपरिग्रहेण ।

(इति रत्नान्युपहरति)

मोगलेशः-(रामसिहं प्रति) जसवन्तसिंहपार्श्वे एनमुपवेशय ।

रामसिंहः-यदाज्ञापयति सार्वभौमः ।

(इति यथादिष्टं कुरुते)

शिवराजः-(अपवार्य) कुमार कोऽयं जसवन्तसिंहः ।

रामसिंहः-(अपवार्य) एष तु जोधपुराधीशः सार्वभौमस्य परमविश्वासभाजनम्।

शिवराजः-(अपवार्य सरोषम्) आः किमहं मत्सरिणा मोगलेशेनैवमपमानार्थमत्र निमन्त्रितः । सन्ति जोधपुरेशातिशायिनस्तु ममापरसामन्ताः । अरे कोऽयमधिक्षेपः ।

रामसिंहः-(अपवार्य) प्रसीदतु महाराजः ।

मोगलेशः-(अपवार्य) अरे किमसौ जल्पति ।

रामसिंहः-(अपवार्य) अपरिचितजनसंमर्दः केवलं नर्दत्ययं घर्मपीडितो वनशार्दूलः ।

मोगलेशः-तत्प्रापयैनं स्वनिवेशम् ।

रामसिंहः-तथा ।

(इति शिवराजेन सह सभामण्डपाद्बहिर्निर्गत्य परिक्रामति)

शिवराजः-(साक्षेपम्) कुमार
निमन्त्रितस्यावमतिर्ममेयं
किं सार्वभौमेश्वरतानुरूपा ।

क्षुद्रोऽथवा प्राप्य महत्पदं निजं
निसर्गसिद्धं न जहाति लाघवम् ॥३॥

रामसिंहः-महाराज कस्यापि धूर्तस्येदं विचेष्टितमिति तर्कये । एते संप्राप्ता वयमस्मन्मन्दिरम् । यावत्प्रविशामः ।

(ततः प्रविशन्ति मन्दिरावस्थिताः शिवराजं प्रतिपालयन्तो भृत्याः)

भृत्याः-(उत्थाय) स्वागतं देवस्य ।

शिवराजः-(रामसिंहेन सह प्रविश्य) दुर्दैवतो विफलीभूतोऽस्माकं मनोरथः ।

(इति सर्वैः सहोपविशति)

रामसिंहः-महाराज सद्य एव सिद्धिपथमारोक्ष्यति तव मनोरथः ।

शिवराजः-(साकूतम्) कुमार दुरवगाह्यो हि दुरात्मनां नयप्रचारः । तद्बहुमानेन प्रतार्य वशीकृता ऋजुधियः क्षत्रेश्वरा अनेन धूर्तेन क्षत्रकुलविनाशायैव प्रयुज्यन्त इति प्रतीयते । सिद्धे कार्ये त्वेतेषां सार्वभौमनिष्ठानां भावि सपर्याफलं शङ्कास्पदमेव ।

रामसिंहः-महाराज मिथ्यैवैष ते वितर्कः । अचिरेण प्रकृतिमापन्नः सार्वभौमः सभाजयिष्यति त्वां यथार्होपचारविभवैः । अयमहं सार्वभौममुपेत्य पुनरपि त्वत्समागमार्थं प्रयते ।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-अहो बत महत् कष्टम् । यद्

नानाविलासविभवैर्वशतामुपेता
राजन्यबन्धव इमे विकृतात्मभावाः ।
त्यक्त्वा निजं सपदि देशकुलाभिमानं
नष्टाः स्वयं स्वजनमाशु विनाशयन्ति ॥४॥

रघुनाथपन्तः-देव यत्सत्यम्

क्व तुच्छभोगापहृतात्ममानाः
स्वधर्ममूढा उदरंभरीश्वराः ।

कस्यापीति । अत्र छादनं नाम सन्ध्यङ्गम् ।

नानेति । *** वसन्ततिलकावृत्तम् ।

क्व तुच्छेति । अत्र विषमालङ्कारः ।

क्व राष्ट्रसंस्थापननिश्चितव्रतो
धर्माश्रितो जीवितनिःस्पृहो भवान् ॥५॥

हिरोजीः-(परितो विलोक्य ससंभ्रमम्) हा धिक् । महदत्याहितम् ।

शिवराजः-(पुरतो विलोक्य) हा बन्दीकृताः स्मो विश्वासघातिना मोगलेशहतकेन। (समन्ताद्विलोक्य) अहो समन्ततोऽवरुद्धमस्मन्मन्दिरं मोगलसैनिकैः। (निःश्वस्य) नूनं यवनदासस्य जयसिंहस्य वचसि वर्तमानेन मया स्वयमेव निमन्त्रितं प्राणसंकटम् ।

अस्मिन्निसर्गकुटिले वितथप्रतिज्ञे
विश्वासमागतवतो नयविच्युतिर्मे ।
मिथ्यावलेपविवशो वरमन्त्रहीनः
सत्त्वोच्छ्रितोऽप्यरिवशं सहसा प्रयाति ॥६॥

रघुनाथपन्तः-देव सत्यं विप्रलब्धा वयं जयसिंहेन । यत्-

स्वच्छन्दगामी गिरिगह्वरालयो
रूढप्रतापैरपि दुष्प्रधर्ष्यः ।
वनेश्वरोऽनेन महाप्रलोभनै-
रापादितो व्याधशराग्रलक्ष्यताम् ॥७॥

(प्रविश्यापटीक्षेपेण)

मोगलनायकः-राजन् कुटिलराजपुरुषेभ्यस्त्वां रक्षितुं समागमान्तरावधि प्रतिषिद्धस्ते स्वतन्त्रसंचारः सार्वभौमेण ।

शिवराजः-अनुग्रह एष सार्वभौमस्य। तस्यैव भूयोदर्शनार्थं मया व्यवसीयते।

मोगलनायकः-राजन् साधयामि तवानामयं निवेदयितुं सार्वभौमाय ।

(इति निष्क्रान्तः)

रघुनाथपन्तः-नार्हति देव इदानीमात्मानमवसादयितुम् । यतः

यवनदासस्येति । अत्र विरोधनं नाम सन्ध्यङ्गम् । तदुक्तं दर्पणे 'कार्यात्ययोपगमनं विरोधनमिति स्मृतम् ।'

अस्मिन्निति । अत्र पश्चात्तापो नाम नाट्यालङ्कारः ।

स्वच्छन्देति । *** अनेन जयसिंहेन । उपजातिवृत्तम् ।

कथं प्रपन्नोऽस्मि नितान्तदुर्गति-
मकाण्ड इत्येष वृथा वितर्कः ।
आसाद्य काष्ठं जलधौ विपन्नः
प्रकल्पयेत्संतरणस्य साधनम् ॥८॥

तच्छीघ्रमेव चिन्त्यतां कोऽपि दुर्गसंतरणोपायः ।

शिवराजः-सम्यगवधारितमोगलेशस्वभावेन मया प्रागेवोपकल्पित प्रयाणप्रबन्धः। तच्छृणुत सर्वे सावधानाः। प्रथमं तावदस्मदागमनोत्सवोपायनमिषेण स्कन्धेनोह्यन्तां मिष्टपदार्थपरिपूर्णा बृहत्करण्डाः प्रतिपरिचितक्षत्रकुलमन्दिरम् । समवलोकितेषु च केषुचित्करण्डेषु नष्टाशङ्का भविष्यन्ति मोगलाधिकृताः। अनन्तरं च निलीयैकस्मिन् करण्डे साधयिष्यामि सात्मजस्य मम निर्गमम् । भवद्भिश्च सर्वैर्नानामिषैर्निर्गत्यावां प्रयागमार्गान्तराले प्रतिपालनीयौ । एष हिरोजीरात्मानं रोगाक्रान्तशिवराजं ख्यापयन् सानुचरो भ्रामयिष्यत्यवरोधकगणमाप्रदोषागमम् । ततस्तेनाऽपि सानुचरेण संकेतस्थानमभ्युपगन्तव्यम् । ततश्च नानाछद्मवेषधरा वयं सुखेन प्राप्स्यामोऽस्मत्सह्यप्रदेशम् । इति ।

रघुनाथपन्तः-देव सम्यगुपकल्पितोऽयं प्रयाणप्रबन्धः। तदपेक्षितार्थक्रयाय प्रतिष्ठतामापणमस्मद्द्रव्यपालः।

द्रव्यपालः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

रघुनाथपन्तः-अहं तावत्साधयामि रामसिंहमन्दिरम् ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

मोगलनायकः-राजन् निवेदितं तवानामयं सार्वभौमाय ।

शिवराजः-संप्रति तु प्रबलोदरशूलपीडितस्य नास्ति मे स्वास्थ्यलेशः । सुखप्रसुप्तस्य तु कदाचिद्भविष्यति मे वेदनानिग्रहः ।

मोगलनायकः-अप्युपस्थापयामि राजवैद्यम् ।

शिवराजः-आनिशीथं सुखशयनेन यदि न निरोत्स्यते मे वेदनाप्रकर्षस्तदानीमेव

भविष्यति राजवैद्येन प्रयोजनम् ।

मोगलनायकः-साधु ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

द्रव्यपालः-देव क्रीता एते मिष्टान्नपूर्णाः पञ्चविंशतिः करण्डाः ।

शिवराजः-अये क्रमेणास्मदनुचराधिष्ठितान् मन्दं वाहयैतान् ।

द्रव्यपालः-तथा ।

(इति यथोक्तं कुरुते)

हिरोजीः-(पुरतो विलोक्य) देव परीक्ष्य पञ्च करण्डान् विरतो मोगलनायकः। तदनयोः करण्डयोर्निलीनौ भवतां देवः कुमारश्च ।

उभौः-तथा ।

(इति निलीयेते)

हिरोजीः-(क्रमेण करण्डान् वाहयित्वा पुरतो विलोक्य) दिष्ट्या कुमारेण सह निर्विघ्नं निष्क्रान्तो देवः । यावदहं छद्मवेषधरो भूत्वा शयनमारोहामि ।

(इति तथा कुरुते)

(प्रविश्य)

मोगलनायकः-अपि लक्ष्यते वेदनापकर्षः ।

अनुचरः-आर्य इदानीमेव सुखं प्रवृत्ता बलवदुदरशूलपीडितस्य देवस्य निद्रा। तन्नार्हत्यार्यो वचनमात्रेणापि निद्राभङ्गं विधातुम् । स्वयमेवाहमार्याय निवेदयिष्यामि सुप्तोत्थितस्य तस्य कुशलवृत्तान्तम् ।

मोगलनायकः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

हिरोजीः-एतावता कालेन समुल्लङ्घितः स्यान्नगरसीमान्तो देवेन । तदावामपि तावत्प्रतिष्ठावहे ।

(इतिच्छद्मवेषं परित्यज्य सानुचरो निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

मोगलनायकः-(स्वगतम्) अहो कथमयमेकाकी गाढं स्वपिति । क्व गता अस्यानुचराः । (प्रकाशम्) कः कोऽत्र भोः । (पुनस्तारस्वरेण) कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

वृद्धसैनिकः-आज्ञापयत्वार्यः ।

मोगलनायकः-अरे पश्य किमेष विगतचेतन इव लक्ष्यते शयनगतः शिवराजः। न च दृश्यते कोऽप्यस्यानुचरः ।

सैनिकः-(शयनमुपसृत्य वस्त्राण्युद्धृत्य ससंभ्रमम्) आर्य क्व शिवराजः । एतानि त्वस्य वसनान्येव ।

मोगलनायकः-(ससंभ्रमसाध्वसं तारस्वरेण) हा हताः स्मः ।

(नेपथ्ये)

आर्य मा भैषीः । संनिहिता स्म उद्धृतकृपाणाः ।

(प्रविश्य)

सैनिकाः-(खड्गान्युद्यम्य) आर्य दर्शय । क्व सन्ति ते प्राणद्रुहः ।

मोगलनायकः-(सरोषम्) रे जाल्माः, भवन्त एव मे प्राणद्रुहः । क्वास्ति शिवराजः।

सैनिकाः-आर्य भवेदत्रकुत्रापि प्रच्छन्नः ।

(इति समन्तादन्विष्यन्ति)

मोगलनायकः-(ससंभ्रमम्) अरे निपुणमवेक्षध्वम् ।

सैनिकाः-आर्य न लभ्यतेऽसौ कितवः ।

प्रथमः-असौ दानवस्तु स्वमायया तिरोहितो भवेत् ।

द्वितीयः-अरे कदाचिद्वियन्मार्गेणोद्गतः स्यात् ।

तृतीयः-मूढ भूगर्भमार्गेणैव संभवत्यस्य पलायनम् ।

मोगलनायकः-(सरोषम्) अरे अनभिजाताः । नायं वितर्कासरः । कुतोऽपि निगृह्यानयन्तु तं सार्वभौमबन्दिनं मत्समक्षम् ।

(सर्वे पुनरपि मृगयन्ते)

वृद्धसैनिकः-(नायकमुपसृत्य) आर्य वृथाऽयं कोलाहलः। स धूर्तः कथमपि प्रच्छन्नं पलायित इति तु सिद्धम्। तदविलम्बेनैव सार्वभौमं गृहीतार्थं कुर्मः।

मोगलनायकः-तथा।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ समाप्तोऽयं **प्रयाणप्रबन्ध**नामाऽष्टमोऽङ्कः ॥

इति श्रीछत्रपतिसाम्राज्यटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां
प्रयाणबन्धनामाऽष्टमोऽङ्कः समाप्तः।

नवमोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशत्यन्तर्गृहावस्थिता राजमाता)

राजमाता-(स्वगतम्) श्रुतं मया चारेभ्यो यत्प्रतार्य मोगलाधिकृतान् देशाद्देशान्तरं पर्यटन् संप्राप्तो वत्सः करवीरक्षेत्रम् । तदचिरेणात्र भविष्यति तस्य सुखागमनम् । अत आज्ञप्तो मया प्रधानमन्त्री सह्यदुर्गलङ्घनाय । येनोपस्थिते वत्से शीघ्रं संपादितो भवेत्साम्राज्याभिषेकमहोत्सवः ।

(प्रविश्य)

कञ्चुकी-एष राजकार्यव्याकुलः प्रधानमन्त्री द्वारि तिष्ठति ।

राजमाता-प्रवेशयैनम् ।

कञ्चुकी-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

प्रधानमन्त्री-अम्ब त्वदादेशानुरोधेन मयात्मसात्कृताः पञ्चषाः सह्यदुर्गाः ।

राजमाता-मन्त्रिवर्य, अभिनन्दाभि तव युद्धपाटवम् । अथोपलब्धा काप्यभिनवा प्रवृत्तिर्वत्सस्य ।

प्रधानमन्त्री-अद्यावधि तु नास्ति श्रुतिगोचरा कापि देवस्याभिनवा प्रवृत्तिः। संप्रति सभागृहमुपेत्य जानामि देशान्तरप्रतिपत्तिम् ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

कञ्चुकी-एतेऽत्रभवतीं द्रष्टुकामा यतयो द्वारि तिष्ठन्ति ।

राजमाता-प्रवेशयैतान् ।

कञ्चुकी-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

मयात्मसात्कृता इति । अत्र निर्वहणसंध्यारम्भः । तदुक्तं दर्पणे 'बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम् । एकार्थमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत् ॥' इति ।

(प्रविश्य)

यतयः-वर्धतां प्रार्थितफलाधिगमेन राजमाता ।

राजमाता-(सप्रश्रयम्) प्रतिगृहीताशीः । दिष्ट्याद्य पवित्रीकृतोऽयमुद्देशो भगवतां सान्निध्येन । (वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा स्वगतम्) अपि नाम लभेय मम वत्सस्य प्रवृत्तिम् ।

प्रधानयतिः-अम्ब तीर्थयात्राप्रसङ्गेनानीतं मयाऽभिषेकार्थमेतद्गङ्गोदकम् ।

राजमाता-(प्रधानयतिं निर्वर्ण्य सविस्मयं स्वगतम्) अहो केनचिदंशेन संवदत्यस्य मुखच्छविर्मम वत्सस्य मुखच्छविना ।

प्रधानयतिः-तद्गृहाणैतद् ।

(इत्युपसृत्य कलशमर्पयति)

राजमाता-महानेषोऽनुग्रहः । (इति गृह्णाति) अपि ज्ञायते कापि मम वत्सस्य प्रवृत्तिः ।

प्रधानयतिः-अम्ब नातिदूरं वर्तते तवात्मजः । (इति यतिवेषमपनीय) एष सुखप्रत्यागतः शिवराजोऽभिवादयते ।

(इति पादयोः पतति)

राजमाताः-(सविस्मयम्) अहो वत्सः शिवराजः । न खलु मयाऽभिज्ञातोऽसि। (सानन्दाश्रु हस्तयोर्गृहीत्वा) वत्स उत्तिष्ठ । दिष्ट्याद्योज्जीवितास्मि ।

मुक्तस्य दुष्टयवनाधिपपाशबन्धात्
प्रत्यागतस्य पुरतो मम संस्थितस्य ।
एतत्तवाननमुपोढनवप्रसादं
मां तर्पयत्यतितरां तरुणेन्दुकान्तम् ॥१॥

वत्स पूर्वमेव मयादिष्टेन मन्त्रिणा स्वायत्तीकृताश्चाकणप्रभृतयः सह्यदुर्गाः । तद्दण्डनीतिमेव समाश्रित्य विजित्य च महाराष्ट्रप्रदेशं संपादय तव साम्राज्याभिषेकमङ्गलम्।

सविस्मयमिति । अत्र यतिवेशधरः शिवराज आलम्बनं विस्मयश्च स्थायिभावः । एवमत्राद्भुतो रसः। तदुक्तं दर्पणे - 'कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम्' इति ।

शिवराजः-अम्ब त्वदादेशानुरोधेनाविलम्बेनैव निर्वर्तयिष्येऽभिषेकमङ्गलम्। अतः परं च स्वातन्त्र्येणैव प्रवर्तिष्यते मम राज्यतन्त्रम् । कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

कञ्चुकी-आज्ञापयतु देवः ।

शिवराजः-मन्त्रगृहमार्गमादेशय ।

कञ्चुकी-इत इतो देवः ।

(उभौ परिक्रामतः)

एतन्मन्त्रगृहद्वारं प्रविशतु देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशन्ति मन्त्रगृहावस्थिता मन्त्रिणः)

मन्त्रिणः-(उत्थाय) स्वागतं देवस्य ।

शिवराजः-भवान्यनुग्रहेण खलु रक्षितोऽस्मि ।

मन्त्रिणः-देव, अद्य खल्वस्माकं महाराष्ट्रस्य च सुप्रभातम् ।

(नेपथ्ये)

वैतालिकः-विजयतां देवः ।

कुटिलयवनपाशान्नीतियोगापसृप्तो
द्युमणिरिव समन्ताद्राहुणा ग्रस्तमुक्तः ।
चिरविरहविपन्नान् रञ्जयन् सह्यदुर्गा-
नुपचितनवतेजा राजसे राजसूर्य ॥२॥

(अष्टोत्तरशतशतघ्नीस्वनोपक्रमः)

शिवराजः-मन्त्रिणः परमं प्रीणयति मां भवतां सह्यजनानां च राजनिष्ठा ।

(प्रविश्य)

प्रतीहारः-विजयतां देवः । कोऽपि वैदेशिको द्वारि संप्राप्तः ।

शिवराजः-प्रवेशयैनम् ।

प्रतीहारः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

कुटिलेति । *** मालिनीवृत्तम् ।

(प्रविश्य)

वैदेशिकः-विजयतां देवः । कृतघ्नेन मोगलेशेन त्वमसि शिवराजस्य पक्षपातीति निर्भर्त्स्य स्वाधिकारात्प्रभ्रंशितो महाप्रतापो जयसिंहः । ततश्च मोगलराजधानीं विनिवृत्तोऽसौ दुर्मनायमानो मार्ग एव- 'आसादितं मया कृतघ्नसपर्यायाः मर्मविदारणं फलम् । यद्

आजन्मनः परिचरन् यमनन्यभक्तिः
स्वज्ञातिजानपि भटाननयं विनाशम् ।
सोऽयं वलीपलितविक्लवदेहयष्टेः
संतर्जनेन मम हा हृदयं भिनत्ति ॥३॥

हा विश्वनाथ देहि मे शरणम् ।' - इत्याक्रुश्य प्राणानजहात् । तदनन्तरं च सार्वभौमाज्ञया तत्पदमारूढो मोगलयुवराजसहायो जसवन्तसिंहः ।

शिवराजः-(निःश्वस्य) विक्रमशालिनामपि नयमार्गविच्युतानामपरिहार्य एवेदृशो दुर्विपाकः ।

प्रधानमन्त्रीः-देव नूनं शोचनीयामवस्थामापादितोऽयं प्रवीरो मोगलेशहतकेन।

शिवराजः-संप्रति खलु गान्धाराणां नियमने व्यापृतोऽस्ति मोगलेशः । तदस्माभिर्महार्हरत्नोपायनैः समाराध्य दक्षिणापथाधिपं सद्य एवात्मसात्कर्तव्या महाराष्ट्रभूः।

प्रधानमन्त्री-देवस्योपस्थितेः पूर्वमेव मया स्वायत्तीकृताश्चाकणप्रभृतयः सह्यदुर्गाः । अवशिष्टानां दुर्गाणां कल्याणप्रान्तस्य चाक्रमणाय प्रस्थापिता मया सेनानिवहाः। परंतूदयभाणपालितः सिंहगडदुर्गः कथमाक्रमणीय इत्यतीवोत्कण्ठितोऽस्मि।

शिवराजः-(विचिन्त्य) न कोऽप्यमात्यमन्तरेणैतत् कार्यं साधयितुं क्षमोऽस्ति। संप्रति तु स्वात्मजस्योद्वाहकर्मणि व्यग्रोऽसौ नार्हति प्रयाणानुशासनम् ।

(ततः प्रविशत्यपटीक्षेपेण तानाजीः)

शिवराजः-(सविस्मयम्) अहो अमात्यः । अपि संपन्नं मङ्गलकार्यम् ।

तानाजीः-देवस्यानुग्रहेणैतत्सुसंपन्नमेव । यतः स्वयमेवाम्बा निर्वाहयिष्यति विवाहोत्सवम् । तया चादिष्टोऽहमद्यैव प्रतिष्ठे सिंहगडदुर्गविजयाय । तदत्र भवतु

वीतौत्सुक्यो देवः ।

शिवराजः-अहो धन्योऽसि मम प्रधानवीर । अद्य खलु

तृणाय मत्वात्मजकौतुकक्रियां
राष्ट्रैकभक्त्योद्वहता धुरं रणे ।
एकान्ततो मातृनिदेशवर्तिना
संपादितं दाशरथेर्यशस्त्वया ॥४॥

इदानीं तु हस्तगत एव मम सिंहगडदुर्गः । यतः

एको महेशस्त्रिपुरस्य भेत्ता
हरिर्यथा दैत्यकुलस्य हन्ता ।
तथा त्वमेवासि ममाग्रवीर
न चेतरो दुर्गवरस्य जेता ॥१॥

तानाजीः-देव प्रभूणामेव प्रभावेण सर्वत्र नियोज्यानां साध्यसिद्धिः । तद्-

आक्रम्य दुर्भेद्यमरातिसैन्यं
सद्यो विजेष्ये सहसाग्रदुर्गम् ।
सेनाधिपत्ये हरिणा नियुक्तो
न किं कुमारो हतवान् सुरारीन् ॥६॥

शिवराजः-तत्प्रतिष्ठतां मे प्रधानवीरो दुर्गविजयाय ।

तानाजीः-यदाज्ञापयति देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

द्वारपालः-विजयतां देवः । मोगलेशमुद्राङ्कितपत्रहस्तो दूतो द्वारि तिष्ठति।

शिवराजः-प्रवेशयैनम् ।

द्वारपालः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

एको महेश इति । अत्र सिद्धिर्नाम लक्षणम् ।

(प्रविश्य)

दूतः-विजयतां महाराजः । दक्षिणापथाधिपेन प्रणयाभिनन्दनपुरःसरं प्रेषितमेतत्सार्वभौमशासनपत्रम् ।

(इति पत्रमर्पयति)

शिवराजः-(आदाय) मन्त्रिन् उद्घाट्य वाचयैतत् ।

(इत्यर्पयति)

मन्त्री-तथा ।

(इति वाचयति)

निजराजनगरात् केनाऽपि साम्राज्यविद्वेषिणोपजापकेनापसारितस्यापि साम्राज्यसपर्यानुरक्तस्यानेकसाहसविक्रमशालिनो महम्मदीयधर्मरक्षकस्य शिवराजस्य सर्वानपराधान् मर्षयित्वा तं च राजपदेन संयोज्य तस्मै संनिहितराज्ययोश्चतुर्थांशसंग्रहाधिकारं वितरति सार्वभौमः । इति ।

शिवराजः-मन्त्रिन्, अपूर्वः खल्वयमनुग्रहः सार्वभौमस्य दक्षिणापथाधिपस्य च । दूत त्वं तावन्निवेदय दक्षिणापथाधिपाय यदचिरेण प्रतापरावद्वितीयो मम वीरात्मज उपैष्यति तवान्तिकमिति ।

दूतः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-मन्त्रिन् नायं बहुमानः किंतु प्राणसंशयान्ता प्रतारणा । यतः

कृतापकारेषु परेषु दुर्मति-
स्त्वकाण्डमाविष्कुरुते य आदरम् ।
संमानदाम्ना स निबध्य तान् पशून्
वधस्थलीं शौनिकवन्निनीषति ॥७॥

मन्त्री-देव, इदानीमन्यतो व्यापृतेनानेन युद्धविरामार्थं पुरस्कृतोऽयं सामोपचारः। परंत्वेतेन तव करतलोपस्थापितेव साम्राज्यसिद्धिः । यतः

दिल्लीश्वरानुमतराजपदं पुनस्ते
स्वातन्त्र्यमेव परितः प्रकटीकरोति ।

सोऽयं तवांशहरणे प्रथितोऽधिकार-
स्त्वां मण्डलेशपदमर्पयति प्रशस्तम् ॥८॥

शिवराजः-अहो सम्यग्गृहीतं त्वया सार्वभौमशासनतत्त्वम् । तथापि नायमवसरोऽस्माभिरुपेक्षणीयः । तद् द्वैधमाश्रित्य सद्य एव साधनीयमस्मदभीष्टम् ।

मन्त्री-सर्वथाऽभिनन्द्यते देवस्याध्यवसायः ।

शिवराजः-तत्प्रतिष्ठतां कुमारेण सह प्रतापरावो दक्षिणापथाधिपराजधानीम्। तत्र च निवसताऽनेन कर्तव्यः समन्ततोऽस्मच्चतुर्थांशसंग्रहः ।

प्रतापरावः-यदाज्ञापयति देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः-मन्त्रिन् गान्धारविजयानन्तरमेवाभियोक्ष्यतेऽस्मान् धूर्तो मोगलेश्वरः। तत् क्षिप्रमेव संनाहितबलैरस्माभिश्चतुर्थांशसंग्रहमिषेणाक्रम्य स्वायत्तीकर्तव्यः समग्रो महाराष्ट्रप्रदेशः । भवन्त्वद्यैव प्रयाणाभिमुखास्त्वदधिष्ठिता मे रणप्रवीराः । यावदहमपि करोपसंग्रहार्थं प्रतिष्ठे गुर्जरप्रदेशम् । प्रत्यागतेष्वस्मासु प्रवर्तिष्यते साम्राज्याभिषेकमहोत्सवः । तत्संभ्रियन्तां संभाराः पुरोहितपुरोगमैः कर्मसचिवैः।

मन्त्री-यथाज्ञापयति देवः ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ समाप्तोऽयं **दुर्गविजय**नामा नवमोऽङ्कः ॥

तत्संभ्रियन्तामिति । अत्र प्ररोचनाख्यं संध्यङ्गम् ।

इति श्रीछत्रपतिसाम्राज्यटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां
दुर्गविजयनामा नवमोऽङ्कः समाप्तः ।

दशमोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशतो राजपुरुषौ)

प्रथमः-अहो बतासत्यसन्धस्य मोगलेशस्य कुटिलपाशबन्धविनिर्मुक्तेन महाराजेन पुनरपि लीलायुद्धैः स्वायत्तीकृता महाराष्ट्रभूः ।

द्वितीयः-भद्र तथापि सिंहगडदुर्गजयेन नासीद्देवस्य परमः परितोषः ।

प्रथमः-अये कथं विजयेऽप्यपरितोष इत्युच्यते ।

द्वितीयः-तद्दुर्गजयाय प्रेषितस्य तानाजीवीरस्य प्राणान्तसंकटेनोद्वेजितो देवः।

प्रथमः-कुतो विजेतुरपि प्राणसंकटम् ।

द्वितीयः-भद्र, गाढान्धकारावृते निशीथे गोधामवलम्ब्य तद्दुर्गप्राकारमासाद्यैकेन मावळेवीरेणाधः प्रसारिताभी रज्जुभिरयं प्रवीरोऽध्यारोहयन्निजं सैनिकगणम् । अथ प्रवृत्ते घोरसंग्रामे परस्परं नियुध्यमानावुदयभाणतानाजीवीरौ वीरगतिं समापद्येताम् ।

प्रथमः-अहो स्वाम्यर्थं प्राणानुत्सृजताऽनेन खलु कृतकृत्यतां नीतं क्षात्रं जन्म ।

द्वितीयः-अत्रान्तरे च तेनैव मार्गेणाध्यारूढेन सूर्याजीवीरेण परास्य रिपुदलं स्वविजयख्यापनाय प्रज्वालितो महानलः । तत्क्षणं तेन संजातहर्षेणापि देवेन यदा परेद्युर्निजबालसुहृदस्तानाजीवीरस्य प्राणव्ययोदन्त आकर्णितस्तदानीमेव विषण्णवदनेन सहसोदीरितं 'हा कष्टमेकः सिंहः प्रतिपन्नः । अपरस्तु विपन्नः ।' इति ।

प्रथमः-अहो, अनेकवीरव्ययसाध्या हि साम्राज्यसिद्धिः ।

द्वितीयः-अथ किम् । ततः प्रभृति तु सर्वत्राप्रतिहतप्रसरोऽभूद्विजयध्वजो देवस्य । आबाजीवीरेण स्वायत्तीकृतः कल्याणप्रदेशः । प्रधानमन्त्रिणा च माहुलीदुर्गः। प्रतापरावेण च साल्हेरदुर्गः । एवं समन्ततो विजयरमाश्चितस्य देवस्य साम्राज्यमहोत्सवमभिनन्दितुं संप्रति समुपस्थितेन सामन्तमण्डलेन समाकुलोऽयं दुर्गराजः परमां श्रियमादधाति ।

प्रथमः-देवतानुग्रहमन्तरेण नैव संभवत्येतादृशं सौभाग्यम् ।

द्वितीयः-अपिच संप्राप्ता अत्र साक्षाद्वेदमूर्तयः काशीनिवासिनो गागाभटप्रभृतयो विप्रवर्या देवस्य साम्राज्याभिषेकं संपादयितुम् ।

प्रथमः-एवं समुपार्जिता महाराजेन सकलभारतव्यापिनी यशःसमृद्धिः ।

द्वितीयः-भद्र जातः खलु सभाप्रवेशसमयः । यावत्तत्रोपेवः ।

(इति परिक्रामतः)

प्रथमः-(परितो विलोक्य) नूनमदृष्टपूर्वामेव सुषमां बिभर्ति दुर्गराजः ।

ध्वजवसनपताकामण्डिता राजमार्गाः
कुसुममुकुलमालारञ्जिताः कुट्टिमाश्च ।
नवविरचितरागालेख्यचित्रास्तराणि
दधति परमशोभां धूपितान्यङ्गनानि ॥१॥

द्वितीयः-एवमेतद् । एते संप्राप्ता वयमभिषेकमण्डपपरिसरम् । पश्यात्र

मुक्ताहिरण्मयपटारचितोपकार्या
वासोगृहाणि विपुला गजवाजिशालाः ।
कोशालयाश्च वसनाभरणान्नकोष्ठाः
प्रख्यापयन्त्यनुपमामधिराजलक्ष्मीम् ॥२॥

प्रथमः-अप्रतिमः खल्वयं साम्राज्याभिषेकमहोत्सवोपक्रमः । यतः

मुक्ताविद्रुमतोरणाङ्कितपुरोद्वाराणि तूर्यस्वनै-
श्चीत्कारैः करिणां मृदङ्गनिनदैरातन्वते मङ्गलम् ।
काञ्चीनूपुरकिङ्किणीक्वणितकै रम्यैर्यशोगीतिकां
गायन्ति प्रमदा महोत्सवमुदा मोदाश्रुपूर्णाननाः ॥३॥

द्वितीयः-न खल्वयं केवलं महोत्सवः किंतु महाराष्ट्रियाणां स्वातन्त्र्यसूर्योदयोऽपि। (सभामण्डपं प्रविश्य) भद्र पश्यैष निर्वर्तितसाम्राज्याभिषेक-मङ्गलो देवो मातरमभिवादयते ।

ध्वजेति । *** मालिनीवृत्तम् ।

मुक्ताविद्रुमेति । *** शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

चण्डांशुप्रखरातपारुणरुचिर्दूरात्परांस्तापय-
न्नासीद्यस्तपनद्युतिः परिपतन् देशान्तरं देशतः ।
ज्योत्स्नासंमतमानदानपरमः पीयूषरत्नाकरः
सोऽयं चाद्रमसीं दधाति सुषमामाह्लादयन् स्वाः प्रजाः ॥४॥

तत्तावद्वयमप्यासनपरिग्रहं कुर्मः ।

(इति निष्क्रान्तौ)

विष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः शिवराजः)

शिवराजः- अम्ब एष संपादितसाम्राज्याभिषेकमङ्गलो महिषीद्वितीयः शिवराजोऽभिवादयते ।

(इति महिष्या सह पादयोः पतति)

राजमाता-(सानन्दाश्रु) वत्स चिरं जीव । वत्से चिरं सकलसौभाग्यभाजनं भूयाः । दिष्ट्याद्य खलु मया प्रत्यक्षीक्रियते पूर्वानुभूतं स्वप्नदर्शनम् । यतः

संस्थाप्य विक्रमजितं भुवि धर्मराज्यं
वत्स त्वया कुलयशः प्रथितं त्रिलोक्याम् ।
यच्चापि दुर्लभमनन्ततपश्चयेन
तद्वै प्रवीरजननीपदमर्पितं मे ॥५॥

उभौ-(सप्रश्रयम्) प्रतिगृहीताशीः ।

शिवराजः-अम्ब प्रतिपदं त्वदनुशासनानुवर्तिनैव मया समासादितोऽयं लोकोत्तरोत्कर्षः ।

(इति छत्रचामरधरैरुपसेवितो रत्नसिंहासनमुपसृत्य महिष्या सहारोहति)

सभ्याः-(उत्थाय) विजयतां छत्रपतिमहाराजः । विजयतां सम्राज्ञी ।

(इति सुवर्णकुसुमानि विकिरन्ति)

(प्रधानाधिकारिणः सामन्तप्रतिनिधयश्च मणिमुक्तास्वर्णकुसुमस्रजः अर्पयन्ति)

(नेपथ्ये)

वैतालिकौ-विजयतां महिषीद्वितीयश्छत्रपतिमहाराजः साम्राज्याभिषेकमङ्गलेन।

चण्डेति । ***शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

द्विजवरसचिवेन्द्रैर्मन्त्रतोयाभिषिक्तो
विजयपदवितानैर्दिव्यकन्याऽभिगीतः ।
रुचिरमणिकिरीटी रत्नसिंहासनस्थः
विबुधपतिरिव त्वं राजसे भारतेन्द्र ॥६॥

(अष्टोत्तरशतशतघ्नीस्वनोप्रक्रमः)

वीणिनौ-(वीणावाद्येन गायतः)

(मालकोशरागेण त्रितालेन गीयते)

कृपालो छत्रपते महाराज ॥
भारतवर्षनरेशकुलपते
नयसमुपार्जितदिगन्तकीर्ते
रमापते महाराज । कृपालो० ॥१॥
स्वातन्त्र्यसुरापगावतारण-
सुखसंपादितराष्ट्रोद्धारण
धर्मपते महाराज । कृपालो० ॥२॥
मायापहृतनिखिलभूभार-
स्त्वमसि कृपानिधिशिवावतारः
विबुधपते महाराज। कृपालो० ॥३॥
अरिगणचक्रतिमिरहरमिहिर-
स्त्वं विलससि महसा रणवीर-
स्त्विषां पते महाराज । कृपालो० ॥४॥
निजजनपदपुरजनाभिनन्दित
देवद्विजवरकिन्नरवन्दित
विश्वपते महाराज । कृपालो० ॥५॥

द्विजवरेति । द्विजवराः पुरोहितप्रमुखाः विप्राः सचिवेन्द्राः अमात्यप्रमुखाः क्षत्रियाः तैः मन्त्रतोयैःअभिमन्त्रितजलैः अभिषिक्तः विजयस्य पदानां गेयपदानां वितानैः स्वरविस्तारैः दिव्यकन्याभिः अभिगीतः रुचिरः मणिकिरीटः अस्यास्तीति धृतरुचिरमणिकिरीटः इत्यर्थः रत्नसिंहासनस्थः त्वं विबुधपतिः इव इन्द्र इव हे भारतेन्द्र राजसे । मालिनीवृत्तम् ।

कृपालो इति । *** हे विश्वपते । अत्रान्त्यानुप्रासः शब्दालङ्कारः ।

गागाभटः-दिष्ट्याऽद्य वर्धते महाराजश्चिरप्रार्थितेन साम्राज्यश्रीविलसितेन।

बाहुप्रतापसमुपात्तदिगन्तकीर्तिः
सामन्तमौलिमणिरञ्जितपादपीठः ।
राजन्यमन्त्रिसचिवैः समुपासितस्त्वं
साम्राज्यवैभवयुतोऽतितरां विभासि ॥७॥

शिवराजः-भगवन् परदेवताप्रसादेन श्रीगुरुरामदासचरणानुग्रहेण चाद्य समासादितं मया साम्राज्यैश्वर्यम् । तत्-

चिरं कषायध्वजमण्डितानि
राष्ट्रे सभामण्डपमन्दिराणि ।
साम्राज्यदेवस्य गुरोः समन्तात्
प्रख्यापयन्त्वप्रतिमं प्रभावम् ॥८॥

प्रधानमंत्री-(प्रतिनिधिमण्डलं निर्दिश्य) एते कुत्बशाहीशप्रभृतिसामन्तप्रतिनिधयो हस्त्यश्वरत्नहिरण्योपायनैर्देवस्य साम्राज्याभिषेकमहोत्सवमभिनन्दन्ति ।

शिवराजः-मन्त्रिन् सामन्तसाहाय्येनाद्य मयाऽनुभूयत एतन्मङ्गलम् । तत्सत्कृत्य तोषयैतान् महार्हवस्त्राभूषणादिभिः ।

प्रधानमन्त्री-तथा ।

(इति यथादिष्टं कुरुते)

शिवराजः-अथ च संभावयतु कोशाध्यक्षो लक्षमुद्राभिराचार्यं चतुर्विंशतिसहस्रमुद्राभिः पुरोहितं प्रत्येकं पञ्चसहस्रमुद्राभिश्चर्त्विजं महार्हवस्त्राभूषणैश्च सर्वान् द्विजोत्तमान् ।

कोशाध्यक्षः- तथा ।

(इति यथादिष्टं कुरुते)

गागाभटः-भारतेन्द्र तव महार्हसंभावनया परितुष्टानामस्माकमेतदेवास्ति परममाशास्यम् । यत्तवायं

परदेवतेति । अत्रानन्दाख्यं संध्यङ्गम् ।

अथ च संभावयत्विति । अत्र भाषणाख्यं संध्यङ्गम् ।

स्वातन्त्र्यभावज्वलिताहवाग्नौ
द्विषद्धविर्भिर्जनताप्रतर्पणैः ।
निर्वाहितो मन्त्रिपुरोहितादिभिः
साम्राज्ययज्ञो नितरां समृद्ध्यताम् ॥९॥

शिवराजः-अथ सभाजय मम साम्राज्याधिकारपदमण्डनानष्टौ प्रधानमन्त्रिणो महार्हरत्नवसनाभूषणैः ।

कोशाध्यक्षः-तथा ।

(इति यथादिष्टं कुरुते)

प्रधानमन्त्री-दिष्ट्येदानीं सम्राट्पदमधिरूढं महाराजमभिनन्द्याशास्त एष भृत्यवर्गो यत्

प्रबलकुटिलविद्विषां विभेत्ता
प्रतिदिनमेष तवैधतां प्रभावः ।
तपनकुलमणेः सपर्ययेदं
भवतु सदा सफलं च जीवितं नः ॥१०॥

शिवराजः-अथ बहुमानेन संमानयस्व मे विजययशोभागिनो वीराग्रसरान्।

हुत्वा देहं निजं ये समरहुतवहे प्रस्थिताः पुण्यलोकां-
स्तेषां वीरोत्तमानां समुदितयशसामन्वये ये प्रसूताः ।
मत्युत्कर्षप्रतापप्रमथितरिपवो ये पुनर्नीतिदक्षाः
सर्वे ते राष्ट्रभक्ता नृपकुलविभवैर्माननीया यथार्हम् ॥११॥

कोशाध्यक्षः-तथा ।

(इति राजशासनान्यर्पयति)

शिवराजः-मन्त्रिन् संभावय विदुषो विप्रवर्यान् नियतवार्षिककवृत्तिवितरणेन। मा सीदत्वस्मिन् मम धर्मराज्ये कोऽपि स्नातको द्विजोत्तमः । यतस्तदधीन एव सद्विद्याप्रचारः ।

स्वातन्त्र्येति । *** उपजातिवृत्तम् ।
हुत्वेति । *** स्रग्धरावृत्तम् ।

मन्त्री-तथा ।

(इति विप्रेभ्यो राजशासनान्यर्पयति)

शिवराजः-सचिवाः, येषां नानाधर्माणां लोकानां संग्रहार्थमनेकवीरबलिभिर्मया समुपार्जितमेतद्धर्मराज्यं तान् सर्वानपि वसनान्नपानादिभिः सत्कृत्यानुरञ्जयत । यतस्तदनुरागपरवशा ह्यस्माकं साम्राज्यसंपदः ।

सचिवाः-तथा ।

(इति निष्क्रान्ताः)

(प्रविश्य)

प्रतिहारः-विजयतां देवः । दिष्ट्या संप्राप्ता अत्र श्रीचरणाः ।

शिवराजः-शीघ्रं प्रवेशय भगवन्तं महानुभावम् ।

प्रतिहारः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति श्रीरामदासः)

शिवराजः-(सर्वैः सहोत्थाय) एष श्रीचरणप्रसादसमुपार्जितसाम्राज्यवैभवः शिवराजोऽभिवादयते ।

(इति पादयोः पतति)

श्रीरामदासः-वत्स, उत्तिष्ठ । मम वचसि सर्वथा वर्तमानस्य तव सकलमप्यभीष्टं मया तपःप्रभावात्संपादितम् । अथ किं ते भूय उपकरवाणि ।

शिवराजः-भगवदनुग्रहेण न मे किमपि भद्रमवशिष्यते । तथापीदमस्तु भरतवाक्यम् । यदस्मिन् मम भारतवर्षे

अथ किं ते भूय इति । अत्र काव्यसंहाराख्यं संध्यङ्गम् ।
तथापीदमस्त्विति । अत्र प्रशस्त्याख्यं संध्यङ्गम् ।

मोदन्तां नितरां स्वकर्मनिरताः पर्याप्तकामाः प्रजा
एधन्तां नयविक्रमाङ्कयशसो लोकप्रियाः पार्थिवाः ।
सस्यानां च समृद्धये जलमुचः सिञ्चन्तु काले रसां
सप्ताङ्गप्रकृतिप्रकर्षरुचिरं राष्ट्रं चिरं वर्धताम् ॥१२॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ समाप्तोऽयं **साम्राज्याभिषेक**नामा दशमोऽङ्कः ॥

॥ समाप्तमिदं छत्रपतिसाम्राज्यं नाम नाटकम् ॥

मोदन्तामिति । *** सप्त अङ्गानि स्वाम्यमात्यादीनि यस्याः तस्याः प्रकृतेः प्रकर्षेण रुचिरं दीप्तं राष्ट्रं चिरं वर्धताम् । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

सर्वेषां नाटकाङ्गानां दिङ्मात्रमिह दर्शितम् ।
विशेषः शास्त्रतस्तूह्यः काव्यपीयूषलालसैः ।

इति श्रीछत्रपतिसाम्राज्यटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां
साम्राज्याभिषेकनामा दशमोऽङ्कः समाप्तः ।

पद्यसूची

पद्यानां छन्दःसूची

अनुष्टुप् -	१/२८, ३/१३, ६/१०
उपजाति -	१/३, १/४, १/५, १/६, १/८, १/९, १/१०, १/११, १/१३, १/१४, १/१६, १/१७, १/१९, १/२१, १/२२, १/२३, १/२६, २/२, २/३, २/४, २/५, २/७, २/९, २/१०, २/११, ३/८, ३/९, ३/१०, ३/१२, ३/१४, ३/१७, ४/३, ४/४, ४/५, ४/७, ४/११, ४/१२, ४/१३, ४/१४, ४/१५, ४/१६, ४/१७, ५/१, ५/२, ५/३, ५/४, ५/५, ५/६, ६/१, ६/५, ६/७, ६/९, ७/३, ८/३, ८/५, ८/७, ८/८, ९/४, ९/५, ९/६, ९/७, १०/८, १०/९
गीति -	१/२
द्रुतविलम्बित -	४/१८
पुष्पिताग्रा -	२/१, ३/६, ४/८, ४/१९, १०/१०
प्रहर्षिणी -	३/४
मन्दाक्रान्ता -	१/१२, १/२५
मालिनी -	३/३, ५/११, ८/२, ९/२, १०/१, १०/६
रथोद्धता -	१/२०, २/६, २/८, ४/२, ४/६, ७/७
वसन्ततिलका -	३/१, ३/२, ३/५, ३/७, ३/१५, ३/१६, ४/१, ४/२०, ५/७, ५/८, ५/९, ५/१०, ६/२, ६/६, ७/१, ७/२, ७/५, ७/६, ८/४, ८/६, ९/१, ९/३, ९/८, १०/२, १०/५, १०/७
शार्दूलविक्रीडित -	१/१, १/७, १/१५, १/२४, १/२७, ४/१०, ८/१, १०/३, १०/४, १०/१२
शालिनी -	६/८
शिखरिणी -	६/३
स्रग्धरा -	३/११, ४/९, ६/४, ७/४, १०/११
स्वागता -	१/१८

गीतानां तालिका

क्रम	स्थान	ध्रुवपदम्	राग	ताल
१.	प्रस्तावना	रसमति रसयति रसा विशाला ॥	मल्लार	त्रिताल
२.	२/७ पश्चात्	तारय तव सुतमम्ब भवानि ॥	कर्णाट (दरबारीकानडा)	त्रिताल
३.	चतुर्थाङ्कान्ते	भट्टा नदताट्टमेव - हर हर हर महादेव ॥	भूपाली (भूप)	दादरा
४.	७/६ पूर्वम्	सुमसुकुमार नयनविहार ॥	बिहाग	तेवरा
५.	८/२ पश्चात्	लताकुञ्जलीना ॥	कर्णाट (कौशिककानडा)	झम्पा
६.	१०/६-७ मध्ये	कृपालो छत्रपते महाराज ॥	मालकोश (कोष्टकान्तर्निर्विष्टरागानुसारेण स्वरसंयोगाः दत्ताः परिशिष्टे)	त्रिताल

गीतानां स्वरसंयोगः ।

गेयपद्यानां स्वरसंयोगः ।

१. राग गौण्डमल्लार, ताल-त्रिताल, (पृ. ९२)

स्थायी

२ ० ३ x
रे ग रे म । ग रे सा सा । रे ग रे ग । म प म ग ।
र स म ति । र स य ति । र सा ऽ वि । शा ऽ ला ऽ ।

२ ० ३ x
रे ग रे म । ग रे सा सा । रे ग रे ग । म प म ग ॥
वि व ल ति । च प ल प । यो ऽ ध र । मा ऽ ला ऽ ॥

अन्तरा

२ ० ३ x
रे ग रे प । प - प - । म प ध सां । ध प म ग ।
भ व ति स । प दि ज न । ता ऽ प वि । ल य नं ऽ ।

२ ० ३ x
रे ग रे म । ग रे सा सा । रे ग रे ग । म प म ग ॥
मृ ऽ ग्य ति । मृ ग प ति । रु प रि नि । ल य नं ऽ ॥

२. राग दरबारी कानडा, ताल-त्रिताल. (पृ. १०७)

स्थायी

३ x २
गं ग रे सा । नि सा रे म प । ग - रे सा । रे - सा सा ॥
त व सु त । म ऽ म्ब भ । वा ऽ ऽ नि । ता ऽ र य ।

अन्तरा

० ३ x २
म म म प । प ध - प ध । सां - - - । ध - नि सां ।

प्र ब ल य । व न ऽ रि पु । ग लि त बि । भा ऽ ऽ वं ।

° ३ x २
म म प प । ध - नि सां । नि प म प । ग - रे सा
प्र ल य प । यो ऽ नि धि । वि लु लि त । ना ऽ वं ऽ ।

° ३ x २
ग ग रे सा । नि सा रे म प । ग - रे सा । रे - सा सा ॥

पा ऽ ल य । प र म मृ । डा ऽ ऽ नि । ता ऽ र य ॥

३. राग भूप, ताल-दादरा. (पृ० १३६)

स्थायी

x ° x °
ध - सां । - ध प । ग ग प । ग रे सा ।
भ ऽ ट्टा । ऽ न द । ता ऽ ट्ट । मे ऽ व ।

x ° x °
ग रे ग । रे प प । ग ग रे । सां - सा ॥
ह र ह । र ह र । म हा ऽ । दे ऽ व ॥

अन्तरा

x ° x °
ग ग ग । प प प । प ध प । सां - सां ।
प्र क ट । य त क । ट ऽ प्र । ता ऽ प ।

x ° x °
ध सां ध । सां रें रें । सां रें सां । ध - प ।
म रि कु । ल घ टि । तो ऽ प । ता ऽ प ।

x ° x °
गं - गं । गं रें रें । सा रें सा । ध - प ।
हृ ऽ ष्टा । ऽ न द । ता ऽ ट्ट । मे ऽ व ।

x ° x °
ग रे ग । रे प प । ग ग रे । सा - सा ॥
ह र ह । र ह र । म हा ऽ । दे ऽ व ॥

४. राग बिहाग, ताल-तेवरा. (पृ० १५५)

स्थायी

२ ३ x
ग म । प म । ग रे सा ।
सु म । सु कु । मा ऽ र ।

२ ३ x
ग म । प सां । नि - प ॥
न य । न वि । हा ऽ र ॥

अन्तरा

२ ३ x
ग म । प नि । सां - सां ।
हृ द । या ऽ । धा ऽ र ।

२ ३ x
नि - । नि ध । सां नि - ।
यौ ऽ । व न । सा ऽ र ।

२ ३ x
गं रें । गं मं । गं रें सां ।
प्र ण । या ऽ । वा ऽ र ।

२ ३ x
ध प । ग म । ग रे सा ॥
पा ऽ । रा ऽ । पा ऽ र ॥

५. राग कौशिककानडा, ताल-झंपा. (पृ० १५९)

स्थायी

० ३ x २
नि । ध - । म - प । नि नि । सां -
ल । ता ऽ । कुं ऽ ज । ली - । ना ऽ

अन्तरा

० ३ x २ ०
म । म - । ध - नि । सां - । नि सां - । नि सां ।
तृ । णा - । क्के ऽ श । या ऽ । ना ऽ स्व । बा ऽ ।

३ x २ ० ३
रे - सां । नि सां । नि ध - । ध - । मध नि ध ।
हू ऽ प । धा ऽ । ना ऽ स्व । यं ऽ । वी ऽ त ।

x २ ० ३ x २
म प । ग रे सा । रे - । ग - - । रे सां । रे - सा ।
मा ऽ । ना ऽ प्रि । ये ऽ । सा ऽ व । धा ऽ । ना ऽ शु ।

० ३ x २ ० ३
सां - । सां - रें । नि - । म - प । नि नि । सां - सां ।
चा ऽ । वि ऽ ह्व । ला ऽ । ते ऽ न । वी ऽ । ना ऽ नि ।

x २
नि - । सां - नि ।
ली ऽ । ना ऽ ल ।

६. राग मालकोश, ताल-त्रिताल, (पृ० १७७)

स्थायी

० ३ x २
ग - सा - । नि सा नि सा । म - ग म । ग म ग सा ।
छ ऽ त्र प । ते ऽ म हा । रा ऽ ज कृ । पा ऽ लो ऽ ॥

अन्तरा

० ३ x २
ग - म म । ध - नि नि । सां - सां सां । सां सां सां सां ।
भा ऽ र त । व ऽ र्ष न । रे ऽ श कु । ल प ते ऽ ।

० ३ x २
नि नि नि नि । ध - म - । म ध - नि । सां नि ध म ।
न य स मु । पा ऽ र्जि त । दि ग ऽ न्त । की ऽ र्ते ऽ ।

० ३ x २
ध नि सां मं । गं - सां - । नि ध - म । ग म ग सा ॥
र मा ऽ प । ते ऽ ऽ ऽ । म हा ऽ ऽ । रा ऽ ऽ ज ॥

प्रतापविजयम् ।

अङ्कानुक्रमः

अथ

प्रतापविजयम् ।

प्रथमोऽङ्कः ।

उत्साहाश्रितबालकेलिसदने वृन्दावने नन्दनो
योऽत्यर्थं कुटिलश्च कालयवनावस्कन्दजे संभ्रमे ।
मोहाक्रान्तजयस्य यो विनयने ज्ञानप्रभाभास्वरः
पायाद्वः स महाद्भुतो यदुपतेर्नानाप्रचारो नयः ॥१॥

नान्द्यन्ते

सूत्रधारः-(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये अलमतिपरिश्रमेण । इतस्तावदागम्पताम् ।

ईशानापकृतेरनङ्ग इति यः ख्यातस्त्रिलोक्यां पुन-
र्जातो यस्य सुतत्वमेत्य स नवः सर्वाङ्गसौन्दर्यभाक् ।
श्रीशं विश्वजितं तमिष्टवरदं नत्वा पदे श्रीधरो
व्याख्यां वाक्यविशारदो वितनुते सर्वाङ्गविद्योतनीम् ।

अथ नाटकादौ विघ्नोपशान्तयेऽवश्यकर्तव्यतयोपदिष्टां 'आशीर्नमस्क्रियारूपः श्लोकः काव्यार्थसूचकः। नान्दीति कथ्यते' इत्यादिलक्षणलक्षितामाशीरूपां 'सूत्रधारः पठेन्नान्दीं मध्यमस्वरमाश्रितः । नान्दीपदैर्द्वादशभिरष्टाभिर्वाप्यलङ्कृताम् ॥' इति श्रीमदभिनवगुप्तपादाचार्यमतानुसारेण चतुरस्रतालानुगतां चतुष्पदां नान्दीं सूत्रधारः पठति-**उत्साहाश्रितेति** । ***

अथ 'श्लोकः काव्यार्थसूचकः' इत्युक्तत्वादस्य तत्सूचकत्वं निरूप्यते । अत्र यदुपतिपदेन विष्णोरंशेनावतीर्णः प्रतापसिंहः वृन्दावनपदेन शैलवनविहारः बालयवनावस्कन्दजे संभ्रमे इत्यनेन प्रजाभिः सह शैलदुर्गाश्रयः यवनैः शैलावरोधश्च विनयनपदेन युवराजानुशासनं मोहाक्रान्तजयस्य इत्यनेन युवराजस्य प्रणयप्रबन्धः नानाप्रचारो नयः इत्यनेन च कुटिलनयालम्बनं सूच्यते । उत्साहपदेन उत्साहस्थायिनो वीररसस्याङ्गित्वं बालकेलिसदनं इत्यनेन शृङ्गारस्य संभ्रमपदेन रौद्रस्य अद्भुतपदेन च अद्भुतादीनां रसानां अङ्गत्वं सूच्यते । अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

नान्द्यन्त इति-अत्र पत्रावलीसंज्ञा नान्दी-'यस्यां बीजस्य विन्यासो ह्यभिधेयस्य वस्तुनः । श्लेषेण वा समासोक्त्या नान्दी पत्रावलीति सा ॥'

सूत्रधार इति-सूत्रं प्रयोगानुष्ठानं धारयतीति सूत्रधारः स्थापकनामा नटः ।

(प्रविश्य)

नटी-इयमस्मि । आज्ञापयत्वार्यपुत्रः ।

सूत्रधारः-अद्य खलु नटपुरवास्तव्यमूलशङ्करविरचितेन प्रतापविजयाख्येनाभिनवेन नाटकेन सभाजनीयैषा विद्वत्परिषत् । तत्प्रस्तूयतां तावन्मधुरस्वरतालबद्धा काऽपि रमणीया गीतिरस्याश्चेतःप्रसादनाय । संप्रति खलु

चण्डातपपरितप्तो
निजपदमपहाय सेवते लोकः ।
नवमल्लिकाकमलिनी
सरःस्रवामण्डितान्युपवनानि ॥२॥

नटी-यदाज्ञापयत्यार्यपुत्रः ।

(इति गायति)

(भीमपलासरागेण त्रितालेन गीयते ।)

सुखयति मधुररसा सरसी ॥
सारसहंसविहंगममिथुनं ।
विहरति मृदु रहसि ॥ सुख०॥१॥
क्रीडति युवतिजनस्तनुवसनः ।
विमलशिशिरपयसि ॥ सुख०॥२॥
उपवनकुसुममनोहरसौरभ- ।
मदमुदितो मनसि ॥ सुख० ॥३॥

प्रतापविजयेति-प्रतापस्य मेवाडाधीश्वरप्रतापसिंहस्य विजयः यस्मिन् तत् प्रतापविजयं सा आख्या यस्य तेन नाटकेन ।

नाटकेनेति-तल्लक्षणमुक्तं दर्पणे 'नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसन्धिसमन्वितम् । विलासर्ध्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः । सुखदुःखसमुद्भूतनानारसनिरन्तरम् पञ्चाधिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः प्रख्यातवंशो राजर्षिधीरोदात्तः प्रतापवान् । दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः ॥ एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा । अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ॥ चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरुषाः । गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम् ॥' इति ।

सुखयतीति-*** सायंतनोपवनविहारवर्णनम्।

[अस्मिन्नाटके टीकाकारैः रागलक्षणानि टीकायां यथास्थानं न दत्तानि, किन्तु ग्रन्थान्ते गेयपद्यानां रागस्वरसंयोगस्थाने दत्तानि । - सम्पादकः]

गायति रसिकजनो धृतवीणः
संमिलितः सदसि ।। सुख० ।।४।।

सूत्रधारः-आर्ये सुष्ठु गीतम् । संप्रत्यवसानाभिमुख एवायं ग्रीष्मसमयः । तदचिरेण प्रतापः परिपन्थिमण्डलानीव पाकशासनो मेघमण्डलानि निर्भिद्य नवरसैः प्रजा रञ्जयिष्यति ।

नटी-आर्यपुत्र कोऽयं प्रतापः ।

सूत्रधारः-किमपरिचितोऽस्ति तव सूर्यवंशमुक्तामणिः स्वातन्त्र्यैकरसो महाराजः प्रतापसिंहः । आर्ये पश्यैनं स्वमण्डलपरिवृतं राजकेसरिणम् ।

सहस्रकिरणद्युतिर्ज्वलनचण्डदृष्टिः स्वयं
गिरीन्द्रसदृशच्छवी रिपुदलाभ्रमालाशनिः ।
धरापतिरयं निजैः सचिवमन्त्रिभिः सेवितः
स्थितोऽप्रतिमविक्रमः विजयमन्त्रयोगोन्मुखः ।।३।।

प्रस्तावना

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो महाराजः प्रतापसिंहः)

मन्त्री-मायाविनो मोगलेशस्य सेनापतिर्मानसिंहः क्षत्रेश्वराणां राष्ट्राण्यवमृद्य नयप्रयोगैरस्मान्वशीकर्तुमत्र संप्राप्तः । तत्क्षिप्रमेवोपकल्पनीयमुपपन्नं प्रतिविधानम् ।

प्रतापसिंहः-(सावेगम्) यत्सत्यमेतेषां क्षत्रापसदानां दुर्वृत्तैरेवानुभवन्तीमां दुरवस्थामस्मद्भारतभूमयः ।

निष्कारणं हतधियः स्वजनैर्विरोधं
कृत्वाऽधमानपि परान् समुपासते ये ।
कल्पद्रुमं सकलकामदुघं विमोहा-
दुन्मूल्य ते विषतरुं स्वकुले वपन्ति ।।४।।

एवं स्वजनद्रोहकलुषितैः सर्वैरपि भारतनृपालैः प्रमाणीकृत्य तुरुष्क-शासनमुप्तमेव क्षत्रकुलविध्वंसबीजम् । तथाऽपि

सहस्रकिरणेति-*** अत्र पृथ्वीवृत्तम् ।

निष्कारणमिति-*** परान् रिपून् यवनानित्यर्थः । *** अत्र वसन्ततिलकावृत्तम् ।

तुरुष्केति-तुरुष्कस्य तुरुष्कजातीयस्य सार्वभौमस्य अकबरस्य शासनं आधिपत्यम् ।

त्रिभुवनविततोज्ज्वलप्रतापे
दशवदनारियशःप्रभाप्रदीप्ते ।
विमलदिनकरान्वये प्रसूतो
न हि सहते परशासनं प्रतापः ॥५॥

तदस्माभिः कथमपि रक्षणीयं परंपरागतं मेवाडस्वातन्त्र्यम् ।

अमात्यः-अथ किम् । अपि चामितकोशबलसमृद्धोऽयं नयमार्गविचक्षणः पूर्वं क्षत्राधिपैः सह मैत्रीं विधायानन्तरं तान् दासनिर्विशेषतामापादयति । तदनेन सख्यमपि संशयावहम् । यतः

साम्ना विधाय नृपतीन् स्वनयानुकूलान्
योऽयं क्रमेण कुरुतेऽपहतप्रभावान् ।
स्वच्छन्दचारिमदमत्तमतङ्गजानां
यूथानि दाम्यति गजग्रहलीलया सः ॥६॥

मन्त्री-एवमेत् । तथापि सांप्रतं त्वस्माभिः सभाजनीयोऽयमतिथिविशेषः । यतः सचिवायत्ता हि सर्वे विदेशीयनृपालानामुपक्रमाः । एवं

प्रत्युद्गतैः स्वैः कुशलानुयोगै-
र्दानैश्च मानैर्मधुरैर्वचोभिः ।
ऐश्वर्यमत्तो रिपुरप्यमर्षणः
सभाजितः सद्य उपैति मित्रताम् ॥७॥

अमात्यः-उपपन्नमेवाभिहितं मन्त्रिवर्येण । यतः

निमित्तमुद्भाव्य किमप्यनर्थकं
नृपाधमा राष्ट्रजयार्थलोलुपाः ।
व्यापादयन्त्यल्पबलान् नृपाला-
ननागसो जानपदांश्च निर्घृणम् ॥८॥

त्रिभुवनेति-*** पुष्पिताग्रावृत्तम् ।
साम्नेति-*** अत्र निदर्शनाऽलंकारः ।
प्रत्युद्गतेति-*** उपजातिवृत्तम् ।

तद्बहुमानपूर्वयातिथ्यक्रियया प्रसादनीयोऽयं मोगलसेनापतिः । तस्मिंश्चानुकूले संवृत्ते निरुपद्रवा भविष्यत्यस्मन्मेवाडभूः ।

प्रतापसिंहः-सुव्यवस्थितोऽयं मन्त्रनिर्णयः । कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

द्वारपालः-आज्ञापयतु देवः ।

प्रतापसिंहः-सभागृहमार्गमादेशय ।

द्वारपालः-इत इतो देवः । (सर्वे परिक्रामन्ति) एतत्सभागृहद्वारं प्रविशतु देवः सानुगः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशन्ति स्वासनेषूपविष्टाः सभ्याः)

सभ्याः-(उत्थाय) विजयतां महाराजः ।

प्रतापसिंहः-(रत्नसिंहासनमारुह्य) स्वागतं सभ्यवर्याणाम् । अद्य खल्वातिथ्यक्रियया सभाजनीयोऽतिथिविशेषः कुमारो मानसिंहः । (द्वारदेशं विलोक्य) उपस्थित एव यथासमयमेष सपरिवारः ।

(ततः प्रविशति मन्त्रिपुरःसरः सपरिवारो मानसिंहः)

प्रतापसिंहः-स्वागतं कुमारस्य । (स्वपार्श्व उपवेशयति)

मानसिंहः-अप्यनामयं क्षत्रकुलनायकस्य ।

प्रतापसिंहः-अथ किम् । अद्य खलु सर्वैः सानन्दमभिनन्द्यते कुमारस्य मङ्गलागमनम् । (मन्त्रिणं प्रति) मन्त्रिन् संभावयैनं क्षत्रवीरं महार्होपचारैः ।

मन्त्री-यथाज्ञापयति देवः । (इतिमहार्हरत्नादीन्युपहरति)

वीणिनौ-(वीणावाद्येन गायतः)

(भूपकल्याणरागेण मठतालेन गीयते ।)

सुन्दरवनमाली मदयति हृदयमालि ॥
प्रमुदितनयनसारप्रणयिमनोविहार-
विलुलितकुसुमहारशाली वनमाली ॥मद० ॥१॥

ललितगमनविलासनवरसपरीहास
यौवनमदविकासशाली वनमाली ॥मद० ॥२॥
गोकुलकुलललामपरमसुखैकधाम-
रसिकमनोविराम आलि हृदयमाली ॥मद० ॥३॥

मानसिंहः-महाराजस्याभिजनानुरूपसत्क्रियया परितुष्टस्यास्ति ममैतावदेवाभ्यर्थनीयं यन्महाराजेनालंकृत्य प्रधानसामन्तपदं संपादनीयः सार्वभौमस्यानुरागः । संप्रति

नियमितविपथानुवर्तिवर्गो
नयपरिपालितभारतैकचक्रः ।
नृपवरविबुधैरुपासितोऽयं
पृथुविभवेन विभाति भारतेन्द्रः ॥९॥

प्रतापसिंहः-कुमार अपि संभाव्यत एतत्तपनान्वयसंभवेषु नृपतिगणेषु । एते खलु

तेजस्विनः क्षत्रगुणे प्रतिष्ठिता
न चार्थकामापहतात्मविक्रमाः ।
प्राणान्तकष्टेऽप्यचला दृढव्रता
नैवाद्रियन्तेऽन्यनरेन्द्रशासनम् ॥१०॥

मानसिंहः-तथापि नावमन्यन्ते कालकृतं विपर्ययं विचक्षणाः । पुराऽपि नियतिनियोगपरवशेन त्रिदिवेशेनाङ्गीकृतं दशाननस्याधिपत्यम् । तत्स्वातन्त्र्य-निर्बन्धमपहाय निग्रहीतव्योऽयं यदृच्छोपगतोऽवसरः ।

प्रतापसिंहः-क्षत्रवीर, इक्ष्वाकुवंशस्य पुरतः का गणना त्रिदिवेशस्य वा दशाननस्य वा। पुरा महोक्षरूपधरस्य महेन्द्रस्य ककुदमारूढेन ककुत्स्थेन पराभूय दानवदलं समर्पितस्तस्मै त्रिविष्टपाधिकारः । तथैव स्वयंभुवरदर्पितो दशाननो रघुकुलतिलकेन रामचन्द्रेणैव समरमूर्ध्नि निहतः । तत्कुमारेण वृथात्मायासपदं न

नियमितेति-*** भारतेन्द्रः अकबरः । *** पुष्पिताग्रावृत्तम् ।

अपि संभाव्यत इति-अत्र मुखसन्ध्यारम्भः 'यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससंभवा ॥ प्रारम्भेण समायुक्ता तन्मुखं परिकीर्तिततम् ॥' इत्युक्तत्वात् ।

नेयः । यतः

उत्कृष्टे कुलदैवते रविकुले सामन्तचक्रे वरे
विश्रब्धः परिपन्थिदर्पशमनक्षीबे च बाह्वोर्बले ।
त्यक्त्वा क्षत्रकुलाभिमानमधमान् शुश्रूषुरुत्कन्धरः
स्वातन्त्र्यैकरसः परस्य वशतां यायात्प्रतापः कथम् ॥११॥

मानसिंहः-(स्वगतम्) अहो कथमेषोऽनुनेयः (प्रकाशम्) तावत्संभावयतु महाराजो मित्रभावेन मोगलसम्राजम् ।

प्रतापसिंहः-कुमार, एतदप्यनुपपन्नम् । यतः

लोकानुरञ्जनपरस्य जगत्प्रसूते-
स्तेजोमयस्य निजमण्डलमण्डनस्य ।
रात्रिंचरस्य च दृगावरणैकवृत्तेः
किं वा भवेद्दिनपतेस्तमसश्च सख्यम् ॥१२॥

मानसिंहः-(स्वगतम्) हा कष्टम् । सर्वथा दुराराध्योऽयमुत्कृष्ट-कुलाभिमानावलिप्तः प्राकृतो नृपालः । (प्रकाशम्) महाराज तव लोकोत्तर-स्वातन्त्र्यनिष्ठयाऽतीव संतुष्टोऽस्मि् ।

प्रतापसिंहः-कुमार एतदेवास्ति तपनकुलसंभवानां नृपालानां परमं कुलव्रतम्।

मानसिंहः-महाराजस्य चिरप्रार्थितेन समागमेनाद्य मोदते मेऽन्तरात्मा। अथ स्वनिवेशं प्रति गमनायानुज्ञां दातुमर्हति महाराजः ।

प्रतापसिंहः-(युवराजं प्रति) वत्स, मन्त्रिद्वितीयस्त्वमुपत्तिष्ठ-स्वैनमतिथिविशेषम्।

मानसिंहः-(युवराजं निर्वर्ण्य स्वगतम्) अहो स्थान एव सूर्यवंशप्रभवाणां कुलाभिमानोद्रेकः । यतः कौमारकेऽपि

अङ्गप्रकर्षरुचिरायतलोहिताक्ष
आजानुलम्बिदृढबाहुविशालवक्षाः ।

उत्कृष्ट इति-उत्कृष्टे कुलदैवते एकलिङ्गेशे *** निजं स्वातन्त्र्यं परित्यज्य न कदापि पारतन्त्र्यमङ्गीकरिष्यतीत्यर्थः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

लोकेति-*** अत्र वसन्ततिलकावृत्तम् ।

कंदर्पदर्पशमनोऽपि परंतपोऽयं
श‍ृङ्गारवीरविभवं युगपद्विधत्ते ॥१३॥

युवराजः-तथा ।

प्रतापसिंहः-कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

प्रतिहारः-आज्ञापयतु देवः ।

प्रतापसिंहः-प्रापयैनं क्षत्रवीरं सरःप्रासादप्रदेशम् ।

प्रतिहारः-तथा ।

(इति सर्वैः सह परिक्रामति)

मानसिंहः-(परितो विलोक्य) युवराज नूनमनुपमां शोभामावहति समन्ततो नगराजिपरिवृतेयं राजधानी ।

अमरसिंहः-सन्त्येतेऽस्मत्स्वातन्त्र्यदेव्या विजयस्तम्भाः ।

नानामृगद्रुमविचित्रितगण्डवप्रा
आस्यन्दमानमदपूर्णजलप्रवाहाः ।
शैला इमे जनपदं परिवेष्टयन्तो
दिग्वारणा इव दिशः परिपालयन्ति ॥१४॥

मन्त्री-आर्य संप्राप्ता वयमुदयसागरपरिसरम् ।

मानसिंहः-अहो अतीव नयनसुभगोऽयं सलिलाशयः ।

प्रत्युप्तस्फटिकाच्छकान्तिविलसत्सोपानमालाकुलं
क्रीडत्सारसचक्रवाकमिथुनं फुल्लारविन्दालयम् ।
अन्तर्वारिणि बिम्बितानतवनश्रीलास्यलीलाङ्कितं
स्वच्छन्दं विधिना विनिर्मितमिदं मन्ये सरो मानसम् ॥१५॥

प्रतिहारः-एतत्सुवर्णध्वजमण्डितस्य सरःप्रासादस्य सभामण्डपद्वारम् ।

नानामृगेति-*** वसन्ततिलकावृत्तम् ।

प्रत्युप्तेति-*** हिमवति वर्तमानं मानसं सरः सृष्टिक्रमेण निर्मितं इदं तु स्वविलासार्थमित्यर्थः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

तत्प्रविशन्तु मन्त्रियुवराजसहाया आर्यमिश्राः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

मानसिंहः-(सर्वैः सहोपविश्य) मन्त्रिवर्य प्रशंसनीयास्ति खलु महाराजस्यातिथ्यसत्क्रिया ।

मन्त्रीः-कुलधर्म एवैष तपनान्वयोद्भवानामीश्वराणाम् । एते खलु

जितेन्द्रिया लोकहितैकतत्पराः
स्वधर्मसंस्थापननिश्चितव्रताः ।
इक्ष्वाकुवंश्या अतिथीनुपागतान्
प्राणार्पणेनाऽप्यनुरञ्जयन्ति ॥१६॥

मानसिंहः-एवमेतद् । तथापि कोऽयं महाराजस्य नयोपचारातिक्रमे बलवदभिनिवेशो येन सार्वभौमस्य सख्यमपि स्वयं नाङ्गीकरोति ।

मन्त्री-सुविदितमेवैतदार्यस्य यत्स्वकुलप्रतिष्ठार्थे सहस्रशो वीरभटानप्याहुतीकृत्य परिपालयन्ति निजं परंपरागतं स्वातन्त्र्यव्रतमेते सूर्यवंश्याः ।

मानसिंहः-एवं स्वपक्षनिरसनेन साधनवैकल्यमापादयन्त एते परमार्थतो विपक्षमेवोपकुर्वन्ति ।

मन्त्री-तर्कानुगृहीतोऽप्ययं पक्षो न समाधत्ते तेजस्विनां मनांसि । तदेते तु

तृणाय मत्वा सुतबन्धुवर्गान्
राष्ट्रं समग्रं निजजीवितस्पृहाम् ।
प्रत्यर्थिविध्वंसविधौ विनिश्चिताः
स्वातन्त्र्यरक्षैकपराश्चरन्ति ॥१७॥

अपिच विनष्टायां स्वातन्त्र्यभावनायामसंभाव्यमेवास्याः पुनरुज्जीवनम् । यतः

मदमतङ्गजगण्डविदारण-
प्रथितविक्रम आशु मृगाधिपः ।

मदमतङ्गजेति-*** सिंहः अपि परवशः सन् मृगवत् दीनः भवति इत्यर्थः । द्रुतविलम्बितं वृत्तम्।

परवशः प्रकृतिं परिहाय किं
मृगदशां क्रमशो न हि पद्यते ॥१८॥

मानसिंहः-नायं सार्वत्रिको नियमः । यतः

तपःप्रभावार्जितपुण्यसंचयै-
र्विद्रावितो मत्तसुरारिसंघैः ।
न किं गतश्रीर्विबुधेश्वरः पुनः
प्रपद्यते स्वं त्रिदिवाधिकारम् ॥१९॥

मन्त्री-परंतु दैवगत्या नष्टैश्वर्योऽपि त्रिदशेश्वरो न कदाप्यनुमोदते त्रिदश-परिपन्थिशासनम् ।

(प्रविश्य)

प्रतिहारः-जातः खलु भोजनसमयः । तदलंकुर्वन्त्वन्तर्गृहं मन्त्रियुवराजपुरस्कृताः सपरिवारा आर्यमिश्राः ।

मानसिंहः-कथमद्यापि नोपस्थितो महाराजः ।

युवराजः-बलवदुदरामयपीडितस्य महाराजस्य नास्ति संप्रति भोजनेऽभिरुचिः। परंत्वार्यं संभावयितुमचिरेणैवात्रोपैष्यति महाराजः ।

मानसिंहः-(विचिन्त्य) आं सम्यगाकलितं मयास्योदरामयस्य निदानम् । (सामर्षम्) युवराज सुष्टु जानाम्यहं तं चिकित्सितुम् ।

(ततः प्रविशति प्रतापसिंहः)

मानसिंहः-(उत्थाय) स्वागतं महाराजस्य ।

प्रतापसिंहः-अपि निर्वर्तितो भोजनसमारम्भः ।

मानसिंहः-महाराजस्योपस्थितिमन्तरेण कथमेतत्संभवति ।

प्रतापसिंहः-कोऽयं कुमारस्य मिथ्या निर्बन्धः ।

मानसिंहः-(साकूतम्) उदरामयमिषेण महाराजस्यापि केयमातिथ्यसत्क्रियायाः पराङ्मुखी प्रवृत्तिः ।

प्रतापसिंहः-(सोद्वेगम्) कुमार सर्वदा सन्ति सज्जातिथेया हि सूर्यवंशप्रभवाः। किन्तु समानान्वयाधिकारभाजामेव संभवति सहभोजनम् ।

मानसिंहः-(सरोषम्) तत्किं मां हीनकुलोद्भवमवधारयसि । यदद्यावधि यवनसेनावमर्दात्तव राष्ट्रं कथमपि मया रक्षितं तस्येदं किं पारितोषिकम् । अरे वृथावलेप,

प्रथितकुलमहिम्ना गल्भसे किं मदान्ध
न खलु परिचितस्ते सार्वभौमप्रतापः ।
धवलगिरिसमुत्थः किं स्रवन्त्याः प्रवाहः
न विलयनमुपेयात्संगतः सागरेण ॥२०॥

तत्सावधानोऽवेक्षस्व भाविपरिणामफलम् ।

प्रतापसिंहः-(सरोषम्) अरे तुरुष्कपक्षपातिन्

प्राप्नोतु राष्ट्रं त्वचिराद्विनाशं
कुलं समग्रं लयमेतु सद्यः ।
सहस्रधाशु प्रविदीर्यतां वपुः
स्वातन्त्र्यमेकं शरणं परं मे ॥२१॥

अपिच

स्वातन्त्र्येऽपहृते त्रिविष्टपसुखं क्लेशाय मे केवलं
तस्मिन्नेव सुरक्षिते वनचरैर्वासोऽपि तोषावहः ।
यामासाद्य कृतार्थतामुपगता धर्मच्युतास्त्वादृशा
नैनां क्षत्रवरः श्ववृत्तिमधमां प्राणात्ययेऽप्याश्रयेत् ॥२२॥

मानसिंहः-(सरोषम्) अरे क्षुद्रनृपाल सार्वभौमस्य पुरतः का गणना त्वादृशस्य राजकल्पस्य ।

ऐश्वर्येणोल्लसन्तो गुणिगणविदुषामाश्रयाः कल्पवृक्षा
न्यायेनापालयन्तः कलहविघटितान् भारतीयान्नरेन्द्रान् ।
आत्मीये वा परे वा नियतमविकृता राजधर्मेऽप्रमत्ता
नैते कि माननीयाः प्रवरनृपतय सार्वभौमप्रतापाः ॥२३॥

तत्त्वमपि मिथ्यावलेपं परित्यज्य सार्वभौमस्य च शुश्रूषामुररीकृत्य संपादय

प्रथितेति-*** गल्भसे धाष्टर्यं प्रकटयसि । *** मालिनीवृत्तम् ।

स्वातन्त्र्य इति-*** शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

ऐश्वर्येणेति-*** स्रग्धरावृत्तम् ।

तव जीवितसाफल्यम् ।

प्रतापसिंहः-(सरोषम्) हा क्षत्रकुलाभिशंसिन् तुरुष्कदास अलं तव प्रलापेन।

विक्रीय देशकुलधर्मयशोऽभिमानं
हा त्वं तुरुष्कपतये न विलज्जसे किम् ।
उद्दामशासनविशीर्णपरप्रतापः
सद्यः प्रचण्डकर एष विनेष्यति त्वाम् ॥२४॥

अरे क्षत्रापसद एष निष्कोशखड्गहस्तः प्रताप एव तव सकलयवनबलस्य पर्याप्तः । तदविलम्बेनैव तवाभिजनोचितमनुतिष्ठ ।

मानसिंहः-(साधिक्षेपम्) अरे असंबद्धप्रलापिन् शृणु सावधानः । यत्-

मिथ्याप्रलापपरुषाक्षरतर्जितोऽहं
सर्वत्र मानमहतामपि माननीयः ।
शस्त्रास्त्रनद्धचतुरङ्गबलैः समृद्धः
सद्यः समेत्य शमयामि तवावलेपम् ॥२५॥

(इति परिवारो निष्क्रान्तः)

प्रधानमन्त्री-प्रसीदतु महाराजः । तुरुष्कनयवशीकृतोऽसौ किमपि प्रलपतु नाम ।

आ बाल्याद्यावनेशप्रगतिपरिहतक्षात्रतेजःप्रभावो
नानाभोगाधिकारैरनुगुणकवलैः पुष्टदेहान्तरङ्गः ।
साशङ्कं तत्सपर्याऽवहितमतिरसौ मोदमानः श्ववृत्तौ
राजन् स्वातन्त्र्यभावं कलयति हि कथं यः पराधीनवृत्तिः ॥२६॥

मन्त्री-धिगूदौरात्म्यमस्य क्षत्रापसदस्य। अथवा प्रकृतिरेवेयं कितवस्य यदसौ

स्वल्पोपकारच्छलतो यथाक्षमं
धृत्वा स्वपाशेषु सतः शुचिव्रतान् ।

विक्रीयेति-*** वसन्ततिलकावृत्तम् ।

आबाल्यादिति-*** स्रग्धरावृत्तम् ।

स्वल्पेति-*** कितवानां अल्पोऽप्युपकारः सतामनर्थाय भवति इति तात्पर्यम्। उपजातिवृत्तम्।

कृतघ्नतादोषबिभीषिकाकुलान्
न्याय्यात्पथश्चालयितुं समीहते ॥२७॥

अमात्यः-देव आत्मनस्तिरस्क्रियां पुरस्कृत्य क्षिप्रमेवासौ क्षत्राधमः प्रज्वलयिष्यति प्रशान्तं मोगलाधिपस्य वैरानलम् । तदविलम्बेनैव रणाभिमुखा भवन्त्वस्मत्सेनानिवहाः । यतः

अकारणद्वेषपरो नराधमः
परोदयाप्लुष्टनिजान्तरङ्गः ।
नीत्वा स्वपक्षे च्छलतो बलीयसः
पैशुन्यशस्त्रेण हिनस्ति सुव्रतान् ॥२८॥

प्रतापसिंहः-प्रसिद्धमेव निसर्गसिद्धं दौरात्म्यं साभ्यसूयानाम् । नूनं महता तुरुष्कबलेनास्मानभियोक्ष्यत एवासौ क्षत्रकुलविध्वंसकः । तथापि भविष्यति पर्याप्तं वीरभटप्रगल्भमल्पमप्यस्मद्बलमरातिदलविमर्दनाय ।

मन्त्री-देव सकृत्परास्तमपि रिपुसैन्यं पुनः पुनर्नवसैनिकैः समेधितमस्मान् परिबाधिष्यते । तत्तावदस्यापि प्रतिकारश्चिन्तनीयः ।

प्रतापसिंहः-नास्त्यत्रौत्सुक्यकारण् । सर्वदा विषमगतानामस्माकं भवत्येव परमशरण्यः शैलप्रदेशः । एतेनैवाद्यावधि परिपालितमस्मत्स्वातन्त्र्यम् । अतः परमपि तदाश्रया वयं प्रभविष्यामः प्रधर्षितुमपरिमितं तुरुष्कबलम् ।

तत्सुसंनद्धः सत्वरं प्रतिपद्यतां हल्दीघाटप्रस्थप्रदेशमस्मत्सेनापतिः । अवेक्ष्यन्तां च राजकार्याण्यमात्यप्रवरेण । यावद्वयमपि सज्जीभूय तत्रैव प्रतिष्ठामहे ।

सेनापतिः-यदाज्ञापयति देवः ।

अमात्यः-यद्देव आज्ञापयति ।

(इति निष्क्रान्ताःसर्वे)

॥ समाप्तोऽयं **मानसिंहापमान**नामा प्रथमोऽङ्कः ॥

अकारणेति-*** उपजातिवृत्तम् ।

इति श्रीप्रतापविजयटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां
मानसिंहापमाननामा प्रथमोऽङ्क समाप्तः ।

द्वितीयोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति हल्दीघाटपरिसरे सेनानिवेशगतः
मन्त्रिसेनापतिसामन्तमण्डलपरिवृतः प्रतापसिंहः)

प्रतापसिंहः-दिष्ट्या संप्राप्तोऽयं चिरप्रार्थितो युद्धावसरः । तदद्य खलु
रिपुरुधिरपिपासाव्याकुलः खड्ग एष
प्रखरसमरकाङ्क्षी तृप्तिमेष्यत्यहो मे ।
न हि विपिनमदग्ध्वा वंशसंघर्षणोत्थ-
स्तनुरपि वनदावः शान्तिमाप्नोत्यपुष्टः ॥१॥

मन्त्री-अस्मत्सादिनिवहैः प्रसभमभियुक्ताः प्रतिभटाः क्षिप्रमेव स्वकर्मफलमास्वादयिष्यन्ति।

(प्रविश्य)

चरः-विजयतां देवः । शैलाभोगपरिचयार्थमितो नातिदूरे मृगयापदेशेन पर्यटत्यल्पपरिवारो मानसिंहः । श्रुत्वा देवः प्रमाणम् ।

(इति निष्क्रान्तः)

सेनापतिः-तं तरसाक्रम्य निग्रहीतुमादिशतु मां देवः ।

प्रतापसिंहः-न ह्यकृतसंनाहमरातिमवस्कन्दितुमुद्युङ्क्ते क्षत्रवीरः।

अमात्यः-देव अनुपेक्षणीयोऽयं यदृच्छोपनतोऽवसरः । यतः
असत्यसन्धेषु जनेषु साधुता
हिंस्रेष्वहिंसा पिशुनेषु तथ्यम् ।
दया कृतघ्नेषु खलेषु चार्जवं
सद्यो विनाशाय भवन्ति भूभृताम् ॥२॥

प्रथमाङ्कान्ते-'सत्वरं प्रतिपद्यतां हल्दीघाटप्रस्थप्रदेशमस्मत्सेनापतिः'- इति प्रतापसिंहेन सूचितस्य द्वितीयाङ्कस्य पूर्वाङ्काविभागत इवावतीर्णत्वादङ्कावतारोऽत्रार्थोपक्षेपकः । तदुक्तं दर्पणे-'अङ्कान्ते सूचितः पात्रैस्तदङ्कस्याविभागतः । यत्राङ्कोऽवतरत्येषोऽङ्कावतार इति स्मृतः ।' इति ।

रिपुरुधिरेति-*** मालिनीवृत्तम् ।

प्रतापसिंहः-सर्वथाऽभिनन्दनीयं तव नयवचनम् । तथापि नायं पन्था अस्मत्पूर्वजैरभिप्रेतः । अतः रणमूर्ध्न्येवायं प्रत्यक्षीकरोत्वस्मद्बाहुवीर्यम् ।

(नेपथ्ये शृङ्गस्वनः)

वैतालिकौ-विजयताममोघप्रतापो महाराजाधिराजः ।

क्षणेनायं व्योम्नि ग्लपयदुडुताराग्रहगणान्
निराकुर्वन् ध्वान्तं भुवि परिसृतैरंशुनिवहैः ।
वितन्वन् विस्तीर्णान् नवविजयकेतून् प्रतिदिशं
स्वयंज्योतिः साक्षादुदयगिरिमारोहति रविः ॥३॥

प्रतापसिंहः-(ऊर्ध्वं विलोक्य) अहो प्रभाता रजनी । तत्प्रयाणप्रवणा भवन्त्वस्मद्वीरभटाः ।

स्मृत्वा पूर्वाननुपदकृतान् यावनेशापचारान्
जातामर्षः स्फुरदधरभुक् क्रोधसंरक्तनेत्रः ।
दर्पाध्मातप्रतिभटचमूघस्मरो बद्धकक्षः
बाह्वोर्वीर्ये प्रकटयतु मे वीरसामन्तसंघः ॥४॥

झालामानसिंहः-क्षत्रकुलाधीश्वर रविकुलपरिचर्ययैव परिणतिं गमिष्यतीदमकाण्डभङ्गुरमस्मत्क्षुद्रकलेवरम् । तद्

राष्ट्रप्रतिष्ठापरिपालनव्रताः
सज्जा वयं त्वद्वचनैकतत्पराः ।
निहत्य दृप्तान् परिपन्थिसैनिकान्
संतर्पयामोऽद्य रणाधिदेवताम् ॥५॥

प्रतापसिंहः-धन्यो वः सूर्यवंशानुरागः । तत्

स्वातन्त्र्यनिष्ठासुसमिद्धमन्यवः
संस्पर्धमानाः प्रबलैर्द्विषद्बलैः ।

क्षणेनेति-*** शिखरिणीवृत्तम् ।
स्मृत्वेति-*** मन्दाक्रान्तावृत्तम् ।

शस्त्रास्त्रनद्धाः प्रलयानिलोद्धता
वेगेन सद्योऽभिपतन्तु वीराः ॥६॥

यावदहं तुरुष्ककुलकिंकरं क्षत्रकुलाङ्गारं स्वयमेव निर्वापयामि ।

स्वरक्षणार्थं रचिताग्रमण्डलान्
तुरुष्कसेनानिवहान् विभिद्य ।
भल्लाग्रविद्धं स्वजनद्रुहं तं
हत्वा ज्वलन्तं शमयामि कोपम् ॥७॥

तत्सत्वरमभिषेणयतु तुरुष्कदलं सेनानायकः ।

सेनापतिः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

प्रतापसिंहः-(प्रशास्तारं प्रति) प्रच्छन्नाभियोगात्त्वं परिपालयास्मत्सेनानिवेशम्।

प्रशास्ता-यदाज्ञापयति देवः ।

(नेपथ्ये)

सेनापतिः-(तारस्वरेण) शीघ्रमभिसरत ।

वैतालिकाः-(पटहध्वनिनोद्गायन्ति)

(भूपालीरागेण दादरातालेन गीयते ।)

भट्टा नदताट्टमेव-
हर हर हर महादेव ॥
धावत रिपुकटकपारमधमकृतमहापचार-
रुष्टा नदता० ॥१॥
शरकृपाणरणत्कारचकितचपलतुरगसार-
कृष्टा नदता० ॥२॥
प्रहरणहततनुविदारविगलितरिपुरुधिरधार-
मृष्टा नदता० ॥३॥

प्रशास्ता इति । पुरस्तादध्वनः सम्यक् प्रशास्ता रक्षणानि च ।
यायाद्वर्धकिविष्टिभ्यामुदकानि च कारयेत् ॥
(कौटलीयार्थशास्त्रम् अधि० १०, अ० १, १७, सं. आर.पी. कंगले, मुम्बई, १९६९)

अवसितरिपुरणविहारहृदयनिहितविजयहार-

तुष्टा नदता० ॥४॥

(नेपथ्ये महांश्चटचटाध्वनिः)

प्रतापसिंहः-(आकर्ण्य) अहो प्रयाता अस्मत्सेनानिवहाः ।

मन्त्री-(पुरतो विलोक्य) एष दत्तपर्याणस्तुरगराजो देवस्यारोहणं प्रतीक्षमाणो द्वारि तिष्ठति ।

प्रतापसिंहः-(उत्थाय) तावद्वयमप्यधिरुह्य तुरंगममभिपद्यामहे तुरुष्कदलम्।

(इति सर्वैः सह द्वारदेशमुपेत्याश्वमारुह्य सामन्तैः सह निष्क्रान्तः)

प्रशास्ता-(तारस्वरेण) सावधानास्तिष्ठन्तु सर्वे निवेशपालाः ।

निवेशपालाः-तथा ।

(इति नियोगं प्रतिपद्यन्ते)

निवेशाध्यक्षः-आर्य पश्यैष महाप्रतापो देवः,

प्रचण्डकोपानललोहिताक्षः

स्फुरद्भुजाग्रोद्धृतभीमकुन्तः ।

तुरङ्गसारप्लुतकम्पिसंक्रमं

रणाङ्गणं धावति कूटकान्तकः ॥८॥

प्रशास्ता-(दूरं विलोक्य) अहो क्षणमात्रेण दृष्टिपथादतीतो देवः ।

निवेशाध्यक्षः-आर्य अल्पसंख्यानामप्यस्मत्सांयुगीनानां वीराणां निश्चित एव विजयः ।

प्रशास्ता-अथ किम् । अद्यावधि सूर्यवंशप्रभवैरेव रणप्रवीरैः परिपाल्यते क्षत्रकुलप्रतिष्ठा ।

निवेशाध्यक्षः-तथापि यत्पूर्वजैः स्वकुलप्रतिष्ठापरिपालनाय मेवाडेश्वराणां सामन्तपदमलङ्कृतं तेऽपि तुरुष्कमाश्रित्यास्मानुन्मूलयितुं प्रवर्तन्ते इति महत् शोकास्पदम्।

प्रशास्ता-भद्र प्रत्यासन्नविपत्तयः प्रायः विवेकात्परिच्युता इन्द्रियसुखमेव बहुमन्वाना परप्रसारितमायापाशनिगडितमानसा स्वजनेभ्यो द्रुह्यन्ति । किंतु सर्वत्र

प्रचण्डेति-*** उपजातिवृत्तम् ।

कर्तव्यनिष्ठानामेव विवेकिनां परिणामसुखोदयाः सन्ति सर्वेऽप्युपक्रमाः ।

निवेशाध्यक्षः-एवमेतत् । अन्यथा साहाय्यार्थमामन्त्रितानि सर्वाण्येव क्षत्रकुलानि परिहासपूर्वं देवस्यामन्त्रणमवज्ञाय मोगलेशविभवापहृतमानसानि कथं तमेव शरण्यं मन्वीरन् । तथापि पर्याप्त एकाक्यसहायोऽपि देवस्तेषां समस्तानां तेजःप्रशमनाय ।

(प्रविश्य)

अश्ववारः-(ससंभ्रमम्) दिष्ट्या हतो मानसिंहः ।

प्रशास्ता-भद्र विस्तरेण ज्ञातुमिच्छामि ।

अश्ववारः-शृणोत्वार्यः । प्रचण्डप्रतापैरस्मद्वीरभटैर्निर्भिन्नेऽरातिव्यूहे मातंगगण्डावलम्बाग्रचरणं चेतकमधिरूढेन देवेन निशितभल्लप्रहारेण हृदयमर्मणि विद्धो मानसिंहः ।

प्रशास्ता-अचिरेणास्वादितं स्वकृतघ्नताया दारुणं फलं क्षत्रापसदेन । भद्र पुनरपि शीघ्रमुपेहि समराङ्गणम् ।

अश्ववारः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

प्रशास्ता-व्रणविरोपणतैलपट्टिकाहस्ताः सज्जीभवन्तु सर्वे चिकित्सकाः ।

निवेशाध्यक्षः-(दूरं विलोक्य) सद्योव्रणातुरान् सैनिकान् प्रतीक्षमाणा एते चिकित्सालयमेवाधितिष्ठन्ति ।

(प्रविश्य)

अश्ववारः-(ससंभ्रमम्) आर्य महदत्याहितम् । देवस्य कुन्ताग्रेण विद्धं निजतीक्ष्णायसकञ्चुकं विलोक्य वरंडकपार्श्वमवष्टभ्यात्मरक्षां व्यदधादसौ पाटच्चरः । अत्रान्तरे मातङ्गशुण्डाग्रावधृतनिशितखड्गप्रहारेणानुविद्धश्चेतकस्य जघन्यश्चरणः । तेनाशु परावृत्य महता जवेन व्रणस्यन्दिरुधिरावसिक्ताङ्गं स्वामिनमत्रावहति तुरगराजः ।

(इति निष्क्रान्तः)

प्रशास्ता-अहं तावद्देवस्योपचारक्रियासंपादनार्थं शीघ्रं चिकित्सालयमुपसर्पामि।

(इति निष्क्रान्तः)

निवेशाध्यक्षः-अहमप्युपकार्यामुपेत्य देवस्य सुखासनं विरचयामि। (परिक्रम्य) एषा राजोपकार्या । (विलोक्य) अहो प्रागेवोपस्थापितं दृश्यते छत्रचामराद्यलंकृतं सुखासनं परिजनैः । यावदहमत्रैव स्थितः देवं प्रतिपालयामि ।

(प्रविश्य)

संयुगप्रणिधिः-भद्र देवं द्रष्टुमिच्छामि ।

(नेपथ्ये)

इत इतो देवः

निवेशाध्यक्षः-(आकर्ण्य) निर्वर्तितोपचारो देवः स्वयमेवात्रोपसर्पति ।

(ततः प्रविशति व्रणनिबद्धपट्टिकालंकृतकायः प्रशास्तृपुरःसरः प्रतापसिंहः)

निवेशाध्यक्षः-स्वागतं देवस्य ।

प्रतापसिंहः-(उपविश्य) युद्धप्रवृत्तिं ज्ञातुमिच्छामि ।

निवेशाध्यक्षः-श्रावयिष्यति स्वामिनं समरवृत्तमेष प्रागुपस्थितः संयुगप्रणिधिः।

संयुगप्रणिधिः-(प्रणम्य) विजयतां देवः । देवस्यालोकसाधारणविक्रमेण नष्टचेतनं मानसिंहं विलोक्य भयाकुलाः परितो प्राद्रवन् प्रसाधितश्मश्रवो यवनसैनिकाः। परंतु पुनः प्रत्यापन्नसंज्ञेन तेन प्रोत्साहिताः सर्वेऽप्येकभिूय राजच्छत्रधरं झालासामन्तं सरभसमभ्यपतन् । तत्रैव सांप्रतं तुमुलं युद्धं प्रवर्तते ।

प्रतापसिंहः-शीघ्रमानीयतामत्र विरोपितव्रणो मे प्रियस्तुरगसारः । यावदहं सत्वरं समरभुवमुपेत्य संचूर्णयामि प्रत्यर्थ्यनीकम् ।

(प्रविश्य)

द्वारपालः-(ससंभ्रमम्) हा महत्कष्टम् । देवस्य सुखोपस्थितेरनन्तरमेव तीव्रवेदनोत्क्षिप्तांगः प्राणानजहात् तुरगराजः ।

प्रतापसिंहः-(दीर्घं निःश्वस्य) हा प्रिय चेतक । स्वाम्यर्थं स्वदेहमाहुतीकृत्य संपादितस्त्वया पशुनापि पुण्यलोकजयः । मम पुनर्

दुर्गाद्रितुङ्गसरिदुत्प्लवने प्रवीरो
व्यूहप्रभञ्जनपटुः समरे सहायः ।

मत्स्पर्शहर्षिततनुः समयेंगितज्ञो
हाऽच्छिन्न एष विधिनैकपदेऽश्वसारः ॥९॥

प्रशास्ता-समाश्वसितु समरप्रवीरो भारतैकवीरः । आरुह्यैनमपरं सिंधुवारं प्रतिष्ठतां देवो विजयाय ।

(प्रविश्य)

संयुगप्रणिधिः-(ससंभ्रमम्) हा महत्कष्टम् । हतो झालासामन्तः ।

प्रतापसिंहः-(सोद्वेगम्) हा केयमनर्थपरंपरा । नूनं महदत्याहितम् । स्थाने खलु छत्रचामराधिकार उपभुज्यते राष्ट्रभक्तै झालावंशप्रभवैः क्षत्रवीरैः । यतः

जाता न के नियतकर्मफलानि भुक्त्वा
काले विनाशमुदरंभरिणो व्रजन्ति ।
धन्यः स एव निजराष्ट्रसपर्यया यो
विस्तारयन् भुवि यशो निधनं प्रयाति ॥१०॥

प्रशास्ता-स्वाभिजनानुरूपमेवाचरितं झालावीरेण ।

प्रतापसिंहः-उपक्रान्तेऽपि दुर्दैवचेष्टिते तूर्णे समराङ्गणमुपेत्य स्वसंख्यातिरेकोत्सिक्तानरातीन् व्यापादयितुमुत्सुकायते मे हृदयम् ।

(नेपथ्ये)

प्रतिहतपरिपन्थिविक्रमो वर्द्धतां विजयश्रिया महाराजाधिराजः ।

(आकर्ण्य साश्चर्यम्) भद्र केयमस्मदीयानां विजयघोषणा ।

(ततः प्रविशति मन्त्रिसेनापतिप्रमुखः सामन्तगणः)

सर्वे-(शिरसाऽभिवन्द्य) वर्द्धतां विजयेन महाराजाधिराजः ।

प्रतापसिंहः-मम प्रिय प्रवीराः, अभिनन्दामि वः पराभिभवविक्रान्तम् । (मन्त्रिणं प्रति) सविस्तरं श्रोतुमिच्छामि युद्धव्यवसायम् ।

मन्त्री-शृणोतु देवः । सर्वतः समेतैर्यवनबलैः युगपदभियुक्तस्य झालावीरस्योपमर्देन जातामर्षाः सहसा प्रज्वलितान्तरङ्गा वयं तत्क्षणमेव प्रसभमवालुम्पाम परिपन्थिदलम् ।

दुर्गेति-*** समयं संकेतं च इङ्गितं गूढाभिप्रायं च जानाति इति समयेङ्गितज्ञः । एतादृशः एषः अश्वसारः चेतकः *** वसन्ततिलकावृत्तम् ।

तदानीं

महाप्रलयमारुतक्षुभितवारिधिव्याकुल-

मसृक्कणविलोहिताक्षमकरोद्रुषाऽस्मद्बलम्।

प्रहारततिपातितप्रतिभटाङ्गबन्धक्षत-

स्रवद्रुधिरकर्दमाप्लुतकबन्धमुग्रं रणम् ॥११॥

ततः स्वभटध्वंसस्खलितधैर्यावष्टम्भः समरभीरुर्मानसिंहः शृङ्गध्वानेन परावर्तयतावशिष्टान् सैनिकगणान् ।

प्रतापसिंहः-मम प्रिय प्रवीराः, तुष्टोऽस्मि भवतां साहसविक्रमोर्जितेन युद्धपाटवेन । परंचैवं विद्रावितोऽप्ययं दुरात्मा पुनरपि महता तुरुष्कबलेनास्मान् क्षिप्रमभियोक्ष्यते ।

(प्रविश्य)

गूढप्रणिधिः-विजयतां देवः । अचिरेणाजमेरनगरमुपेत्य ततः स्वयं मेवाडप्रदेशमाक्रमितुं मृगयाव्यपदेशेनात्रोपस्थास्यति सार्वभौमः । तावच्च मानसिंहाधिष्ठितस्य मोगलदलस्य गोगुन्दाग्राम एव निवेशस्थानं भविष्यतीति मन्त्रनिर्णयः सार्वभौमस्य ।

(इति निष्क्रान्तः)

मन्त्री-एवं परावृत्तोऽप्यल्पीयसा कालेन पुनरस्मान् परिबाधिष्यतेऽयमसूयोपसृष्टः क्षत्राधमः । तच्छीघ्रं तावदुपकल्पनीयमत्र प्रतिविधानम्। यतः

न्यायानुवर्तिनमुदारगुणप्रतिष्ठं

स्वातन्त्र्यमात्रविभवं प्रकृतेः शरण्यम् ।

नेतुं निजाधमदशां प्रसभं प्रवृत्ताः

पापाः कदा नु विरमन्ति महोपमर्दात् ॥१२॥

महाप्रलयेति-*** पृथ्वीवृत्तम् ।

न्यायेति-*** वसन्ततिलकावृत्तम् ।

प्रतापसिंहः-प्रसन्नः खलु ते तर्कः । तत्संभृतबलैरस्माभिः प्रतिक्षण-मभियोगकाल प्रतीक्ष्यः ।

प्रशास्ता-पञ्चषैरहोभिः पुनरपि समरावतारक्षमा भविष्यन्ति सर्वेऽपि विभिन्नमर्माणोऽस्मद्वीरभटाः ।

सामन्ताः-देवस्यादेशमात्रेण समरोन्मुखा भविष्यन्ति सर्वेऽपि पौरजानपदाः।

मन्त्री-(विचिन्त्य) देव त्रिविधाः सन्त्यभियोक्तारः । धर्मलोभासुरविजयिन इति । तेषामुत्तिष्ठमानं सन्धिना मन्त्रयुद्धेन कूटयुद्धेन वा प्रतिव्यूहेतेति नयविधानम् । तद्धर्मविजयिनोऽपि मायाविनो मोगलेशस्य अतः परं कूटयुद्धेनैवोचितः प्रतियोगः ।

प्रतापसिंहः-कथमेतत्संभाव्यते रविकुलसंभवानां लोकेश्वराणाम् । एते खलु

स्ववीर्यविश्रम्भहतारिदुर्नया
धर्मार्थमात्मन्यपि निर्गतस्पृहाः ।
नैवोत्सहन्ते विषमं स्थिता अपि
कूटाभियोगानभिमन्तुमीश्वराः ॥१३॥

मन्त्री-उपपन्नमेवाभिहितं देवेन । परन्तु न कोऽपि पारयतेऽवधारयितुं नितरां निगूढं धर्मतत्त्वम् । अत एव प्रवर्तितं भुवि राज्ञामभ्युदयनिःश्रेयससाधनं नयतन्त्रं लोकसंग्रहचिकीर्षुभिर्महर्षिभिः । तद्विहितमेव कर्म सर्वदा लोकपालैरनुष्ठेयम् । अत्रापि समामनन्ति नयशास्त्रकोविदा यत्

लोकसंग्रहपरैर्जितात्मभिः
कर्मयोगनिरतैर्नृपोत्तमैः ।
पाप्मनां प्रमथने प्रकल्पितः
धर्मतन्त्रमपि बाधते नयः ॥१४॥

तत्कूटयुद्धेनैव प्रधर्षणीयोऽयं प्रबलारातिः ।

अतः परं कूटयुद्धेनेति-अत्र प्रतिमुखसन्ध्यारम्भः । तदुक्तं दर्पणे- 'फलप्रधानोपायस्य मुखसंधिनिवेशिनः । लक्ष्यालक्ष्य इवोद्भदा यत्र प्रतिमुखं च तत् ॥' इति ।

स्ववीर्येति-*** उपजातिवृत्तम् ।

लोकसंग्रहेति-*** रणोद्धतावृत्तम् । अत्रोपदिष्टाख्यं लक्षणम् ।

प्रतापसिंहः-प्रतिपद्येऽहं मन्त्रनिर्णयम्। यतो बलीयसा विगृह्यमाणानामस्माकं संशयित एव शाश्वतिको विजयः। तत्सर्वत्र समप्रदेशे स्थानिकाधिष्ठितान् सैनिकान् संस्थाप्य वयं तावत् कुंभलगडदुर्गमाश्रयामहे।

सर्वे-यदाज्ञापयति देवः ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ समाप्तोऽयं **हल्दीघाटसंग्राम**नामा द्वितीयोऽङ्कः ॥

इति श्रीप्रतापपविजयटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां
हल्दीघाटसंग्रामनामा द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः ।

तृतीयोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति मोगलसेनानिवेशोपवने परिक्रामन्तौ मानसिंहसेनानायकौ)

सेनानायकः-कुमार अविमृश्य रविकुलप्रतापं प्रतापेन सह विगृह्यमाणेन त्वया प्रज्वालितोऽयं वीरघस्मरो दावानलः प्रतिक्षणं भस्मसात्कुरुतेऽस्मदूर्जस्वलान् सेनानिवहान् ।

मानसिंहः-आर्य किमिति मां वृथाऽक्षिपसि । पूर्वमासीन्मे बलवान् प्रत्ययो यदल्पीयसा कालेनैव

कुटिलनयगुणप्रतारितोऽयं
सरभसमाहववागुरावरुद्धः ।
मगधपतिरिव प्रगल्भमानः
स्ववशमुपैष्यति राजधर्ममूढः ॥१॥

परंतु केनापि नयविचक्षणेनानुशिष्टोऽयं सर्वत्रास्मन्नयानुरूपं प्रतीकारमुपकल्पते। अन्यथा

यत्पूर्वजैराहवमूर्ध्नि संभ्रमात्
प्राणात्यये न क्रमितं पराक् पदम् ।
संभाव्यते तस्य कदापि निस्त्रपं
पराङ्मुखं संयुगतोऽपसर्पणम् ॥२॥

सेनानायकः-श्रुतं मया तु सैनिकमुखेन यद्रश्मिसंयमनादप्यनिरुद्धापसारेण तुरगसारेणासौ बलादपवाहितः समराङ्गणाग्रतः पश्यतः कुमारस्येति ।

द्वितीयाङ्कान्ते-'अचिरेणाजमेरनगरमुपेत्य ततः स्वयं मेवाडप्रदेशमाक्रमितुं मृगयाव्यपदेशेनात्रोपस्थास्यति सार्वभौमः ।' - इति गूढप्रणिधिना सूचितस्य तृतीयाङ्कस्यापि पूर्वाङ्काविभागत इवावतीर्णत्वादङ्कावतारोऽत्रार्थोपक्षेपकः।

कुटिलेति-कुटिलः यः नयः तस्य गुणैः 'संधिर्ना विग्रहो यानमासनं द्वैधमाश्रयः' इति षाड्गुण्यप्रयोगैः प्रतारितः वञ्चितः *** यथा वासुदेवार्जुनाभ्यां प्रतारितः जरासन्धः भीमेन द्वन्द्वयुद्धे निहतः तथेत्यनुसन्धेयम्। पुष्पिताग्रावृत्तम् ।

यत्पूर्वजैरिति-यस्य पूर्वजैः महाराणाश्रीसंग्रामसिंहादिभिः *** उपजातिवृत्तम् ।

मानसिंहः-आर्य साहसिकस्यैतस्य भल्लाघातेन क्षणं वीतसंज्ञस्य मम न नयनगोचरतामुपगतोऽयं प्रयाणप्रबन्धः । किंतु पुनः प्रकृतिमापन्नेन मयोपश्रुत-माधोरणमुखेनास्य क्षत्रबन्धोः ससंभ्रमं समरापक्रमणम् । तदनन्तरं प्रोत्साहितैरस्मद्वीरगणैराक्रमणमात्रेण परितो विद्रावितं सर्वं रिपुदलम् ।

सेनापतिः-तथापि कथमुपेक्षितं कुमारेणास्यान्वेषणम् । अपुनरावर्तिनः खल्वेतादृशा अनुगुणावसराः । यतः

मृगः पुरस्तात्प्रतिरुद्धसंचरः
यूथाद्वियुक्तः प्रमदो मतंगजः ।
मृगानुपाती च मृगाधिपः सुखं
निगृह्यतेऽद्धा विषमस्थितः परः ॥३॥

मानसिंहः-न मृगयाधर्मेणाभिसंपतन्त्यरातीन् क्षत्रप्रवीराः ।

सेनापतिः-अत एव तेषां सर्वत्र नियतः पराभवः । नयायत्तो हि राज्ञां प्रबलपरिपन्थिप्रमाथः धर्मायत्तश्च तेषां लोकानुरागः ।

(प्रविश्य)

द्वारपालः-विजयतामार्यः । कुमारद्वितीयमार्यं द्रष्टुमिच्छति सार्वभौमः ।

सेनापतिः-तदुपकार्यामार्गमादेशय ।

द्वारपालः-इत इतो देवौ ।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

एतत्सार्वभौमोपकार्यायाः पुरोद्वारं प्रविशतां देवौ ।

(इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति स्वमण्डलपरिवृतः सिंहासनाधिरूढः सार्वभौमः)

उभौ-(प्रविश्य) विजयतां सार्वभौमः (इति त्रिः प्रणम्योपविशतः)

सार्वभौमः-स्वागतं क्षत्रवीरयोः ।

मृग इति-*** उपजातिवृत्तम् ।

नर्तक्यौ-(वीणावाद्येन गायतः)

(जयवतीरागेण त्रितालेन गीयते।)

इह सखि विहरति ललितविहारः ।
सुमनोमोहननन्दकुमारः ॥ ध्रुवपदम् ॥
मुहुरनुपतति स विगलितलज्जः ।
तव मुखपङ्कजमलिरिव सज्जः । इह० ॥१॥
वादयते मधुरं मृदु वेणुम् ।
वसनगतमपि न धुवति स रेणुम् । इह० ॥२॥
जनमयि विध्यति नयनपथेतम् ।
अपसर दूरतरं स्वनिकेतम् ॥ इह० ॥३॥

पृथ्वीराजः-(स्वगतम्) सुदूरमपसरणमेव मोगलसेनायाः श्रेयस्करम् ।

सार्वभौमः-(स्वगतं) रमणीयेनाप्यनेन गेयपदेन केवलं भाव्यमङ्गलमेवाक्षिप्यते। (प्रकाशं) सेनापते मयि संनिहितेऽपि कथं मन्दोत्साहा वर्तन्ते मम सेनानिवहाः ।

सेनापतिः-प्रसीदतु सार्वभौमः । नात्र दोषभाजोऽस्मत्सेनानायकाः । यत एते

आसाद्य गूढनिलयं समरप्रवीराः
यावद्रिपुं प्रसभमाक्रमितुं क्रमन्ते ।
तावत्प्लवङ्गम इवान्यशिलोच्चयाग्रं
संक्रामति द्रुतमसौ भयविप्लुतान्तः ॥४॥

मानसिंहः-सार्वभौमतेजसा प्लुष्टोऽयमात्मरक्षणार्थं संप्रति सेवते गिरिगह्वराणि।

सार्वभौमः-अत्र निवसतामस्माकमनर्थकायासेन व्यतीताःषण्मासाः । तथापि नोपलभ्यते भवादृशैः क्षत्रवीरैरस्योदन्तलेश इति महदाश्चर्यम् ।

मानसिंहः-प्रसीदतु सार्वभौमः । उग्रदण्डेऽप्यस्मिंस्तथाऽनुरक्ताः पौरजानपदाटविका यथैते प्राणदण्डभयमप्यविगणय्य सर्वात्मना तद्धितैकतत्परा शैलोद्देशं पर्यटन्ति ।

सार्वभौमः-प्रकृत्यनुरागायत्ता हि राज्ञां त्रिसाधनाशक्तिसंपदः । तदुपजाप-

दानमानादिभिः कथमप्यनुकूलयितव्या अस्य प्रकृतयः ।

सेनापतिः-अभिनन्द्यते सार्वभौमस्याप्रतिमनयपाटवम् ।

मानसिंहः-अथ किम् । भेदनयमन्तरेण सर्वथा दुःसाध्योऽयं कान्दिशीकः प्राकृतः परिपन्थी ।

(प्रविश्य)

चरः-(ससंभ्रमम्) हा महदत्याहितम् । अकस्माच्छैलाभ्यन्तराद्विनिर्गतेन प्रतापेन व्यापादितं तदन्वेषणपरं पदातिदलम् ।

सार्वभौमः-(निःश्वस्य) हा कष्टम् । अथ कियत्परिमाणोऽस्य युद्धसंनाहः ।

चरः-तत्तु न शक्यते इयत्तया परिच्छेत्तुम् ।

सार्वभौमः-त्वं तावत्सत्वरं तमनुसृत्य मृगयस्व तस्य गूढनिकेतनम् ।

चरः-यदाज्ञापयति सार्वभौमः ।

(इति निष्क्रान्तः)

सार्वभौमः-(सनिर्वेदं) अहो बत महच्चित्रम् । संनिधौ संनिविशमानस्यापि मम प्रकटीकृतमनेन प्रागल्भ्यचेष्टितम् ।

सेनापतिः-स्वभाव एवैषोऽल्पकानाम् ।

महाजवैर्व्याधिगणैरनुद्रुतः
शैलावरुद्धः प्रतिषिद्धसंचरः ।
नैराश्यमास्थाय मृगोऽप्यहिंस्रकः
ससंभ्रमं साहसमेव पद्यते ॥५॥

सार्वभौमः-सेनापते न सम्पगाकलितं त्वया प्रत्यर्थिनः सामर्थ्यम् । अयं तु शैलदुर्गाश्रितश्चारचक्षुर्विज्ञायास्मत्सैनिकानां निगूढसंचारमकस्मादेव गिरिगह्वरान्निर्गत्य तेष्वभीक्ष्णं निपतति । क्षपयति चैवमपरिचितशैलसंक्रमानस्मत्सैनिकगणान् ।

सेनापतिः-परमार्थतो गृहीतः सार्वभौमेणास्य कुटिलनयप्रचारः ।

सार्वभौमः-तद्यावदस्मिन् प्रकृतयो न विरेज्यन्ते तावत्संशयित एवास्य विनिग्रहः।

सेनापतिः-प्रकृतिभेदमन्तरेणात्र न विद्यते किमपि प्रतिविधानम् ।

मानसिंहः-भेदोपायसाध्या हि भविष्यन्त्यस्योग्रदण्डस्य साम्राज्याधिकारपदलोलुपा मन्त्रिसामन्तगणाः । रत्नानामिव पुरुषाणामप्यस्ति मूल्यपरिमाणम् ।

संमाननानाविधदानयोगै-
मर्याप्रयोगैर्निकृतोपजापैः ।
प्रख्यापितैर्दोषगणैश्च भूभुजां
दृढानुरक्ता प्रकृतिर्विरज्यते ॥६॥

सार्वभौमः-(विचिन्त्य) कुमार दुष्करं ह्येतदप्यध्यवसितुम् । यतः प्रकृतिसमनुज्ञाभिषिक्तस्य साहसविक्रमोर्जितस्य नृपतेः प्रकृतय उपायशतेनापि ततो न विभिद्यन्ते ।

कृताभिषेकं गुणिनं महौजसं
न्यायप्रवृत्तं व्यसनेष्वसक्तम् ।
स्वयंवरेव प्रकृतिः प्रतारिता-
प्यर्थोपजापैर्न जहात्यधीश्वरम् ॥७॥

मन्त्री-दण्डमात्रेण वशीकर्तु शक्योऽयं क्षत्रवीरः । सुप्रयुक्ता अप्यत्र कुण्ठीभविष्यन्तीतरे नयोपचाराः ।

सार्वभौमः-अतः संनाह्य चतुरङ्गबलं स्वयमेव व्यं मेवाडविजयार्थ रणाङ्गणमवतीर्णाः । परं त्वेतावताकालेन न निग्रहीतुं शक्यतेऽयं राजानकोऽस्मद्वीराग्रसरैरित्युत्कण्ठतेऽस्मदन्तहहृदयम्।

मन्त्री-प्रसीदतु सार्वभौमः । अल्पीयसा कालेनैव शैलावासक्लेशनिर्विण्णोऽयमन्विष्यति सार्वभौमस्य शरणम्।

(प्रविश्य)

द्वारपालः-विजयतां सार्वभौमः । एष दिल्लीनगरत्संप्राप्तः संदेशहरो द्वारि तिष्ठति ।

सार्वभौमः-प्रवेशयैनम् ।

संमानेति- उपजातिवृत्तम् ।

कृताभिषेकमिति- कृतः अभिषेकः राज्याधिकारप्रतिष्ठापनं यस्य सः । *** उपजातिवृत्तम् ।

द्वारपालः-यदाज्ञापयति सार्वभौमः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

संदेशहरः-(त्रिः प्रणम्य) विजयतां सार्वभौमः । सार्वभौमचरण-सरोजरचिताञ्जलयः प्रणयपुरःसरमावेदयन्ति प्रधानमन्त्रिणः यत् प्रवर्तते संप्रति गान्धारेषु महान् विप्लवः । तत्र चापेक्षितं सार्वभौमस्य सान्निध्यमिति ।

सार्वभौमः-हा कष्टम् । कथं सर्वत्रापि मन्दोत्साहाः प्रतीयन्ते मम महामात्राः।

पृथ्वीराजः-प्रसीदतु सार्वभौमः । अविमृश्यकारिण एते ह्यविरतं लोकसंग्रहार्थं प्रयतमानस्य देवस्याभीष्टं संपादयितुं न क्षमन्ते । तदादिश्य युद्धविरामं गान्धारान् प्रतिपद्यतां सार्वभौमः ।

सार्वभौमः-अपि नाम ममाप्यधिकृतानामविमृश्यकारित्वम् ।

पृथ्वीराजः-यत्सत्यं न्यायप्रवृत्तेन तपनकुलाङ्कुरेण सह खल्वस्थान एवायं विग्रहोपक्रमः । यन्नायं व्यसनावलुप्तकुलाभिमान उदयसिंहः किंतु मूर्तः प्रतापः । अतः सकलकोशदण्डव्ययेनाप्यणुमात्रमेनं नमयितुं नैव प्रभविष्यति सार्वभौमः ।

हीनप्रभावोऽपि निगूढमन्त्रो
नृपो नयोत्साहगुणैः समृद्धः ।
दहत्यकस्माद्रिपुकाननं मह-
द्यथा स्फुलिङ्गोऽल्पतृणैः समेधितः ॥८॥

सार्वभौमः-(सस्मितम्) क्षत्रवीर विरलाः सन्ति त्वादृशा अप्रियस्यापि तथ्यस्य वक्तारः ।

पृथ्वीराजः-राजनीतिनिपुणाः श्रोतारश्च ।

सार्वभौमः-क्षत्रवीर नूनं नाद्यापि मम स्मृतिपथादपैति चितोडदुर्गावरोधप्रसङ्गः।

पृथ्वीराजः-सार्वभौम सर्वथाऽप्रतिहतप्रसरं हि क्षात्रं महः । प्रत्यक्षीकृतमेव सार्वभौमेण यच्छतशोऽस्मत्सैनिकान्निहत्य यदा सूर्यद्वारपालेन साहिदासेन समादृतः स्वर्लोकजयस्तत्कालमेव षोडशवर्षदेशीयं निजात्मजं पुरस्कृत्य तस्य जाया सपद्यवतीर्णा समराङ्गणाग्रम् ।

सार्वभौमः-नूनं लोकोत्तरविक्रमोर्जिता सा क्षत्राङ्गना ।

पृथ्वीराजः-अहो तदानीं

आकृष्टभीषणकृपाणकरालपाणि-
च्छिन्नोत्तमाङ्गरिपुसैन्यकबन्धकीर्णम्।
तूर्णं विधाय समराङ्गणमेव चण्डी
चण्डप्रकोपहुतभुग्ज्वलिता विरेजे ॥९॥

सार्वभौमः-अत्यद्भुतम् ।

पृथ्वीराजः-तस्यामपि वीरगतिं प्रपन्नायां वीराग्रसरो जयमल्लः

संरम्भस्फुरितारुणाधररुचिः शौर्यातिरेकोत्कटो-
विद्युत्पात इवापतन् रिपुदले स्फूर्जत्कृपाणप्रभः ।
विच्छिन्नाङ्घ्रिभुजोत्तमाङ्गविकटां नृत्यत्कबन्धाकुलां
कृत्वासृक्स्रवणप्लुतां रणभुवं रेजे द्विषामन्तकः ॥१०॥

सार्वभौमः-धन्या खलु लोकोत्तरवीरप्रसूर्भारतभूः ।

पृथ्वीराजः-तद् विरोधं परित्यज्य मित्रपक्षमारोपयितव्योऽयं क्षत्रकुलनायकः सार्वभौमेण ।

सार्वभौमः-तथ्यमेवाभिहितं क्षत्रवीरेण । परंतु यशोमात्रविभवा हि लोकपालाः। नैते प्राणात्ययेऽपि परकृतमवहेलनमुपेक्षन्ते । तत्तेजस्विनमपि प्रतापमचिरेणैव स्वतेजसाऽभिभविष्यामः ।

पृथ्वीराजः-निसर्गसिद्धं हि निग्रहानुग्रहसामर्थ्यं सार्वभौमस्य ।

(प्रविश्य)

द्वारपालः-राजा भगवानूदासः द्वारि तिष्ठति ।

सार्वभौमः-तं शीघ्रं प्रवेशय ।

द्वारपालः-यदाज्ञापयति सार्वभौमः ।

(इति निष्क्रान्तः)

आकृष्टेति-*** वसन्ततिलकावृत्तम् ।

संरम्भेति-*** शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

(प्रविश्य)

राजा भगवान्दासः-विजयतां सार्वभौमः ।

सार्वभौमः-(सरोषम्) अप्युपलब्धा काचित्प्रवृत्तिः प्रतापस्य ।

राजा भगवान्दासः-प्रसीदतु सार्वभौमः । शैलदुर्गमुपाश्रितोऽयं संप्रति विफलीकुरुते सर्वानस्मदुपक्रमान् । तदत्र कालः कश्चित् प्रतीक्ष्यः ।

मानसिंहः-प्रसीदतु सार्वभौमः । अचिरेणैव संपत्स्यते सार्वभौमस्याभीष्टम्।

सार्वभौमः-(सरोषम्) परं लज्जावहमेतत्क्षत्रवीरयोः । तदद्यप्रभृति प्रतिषिध्यते उभयोरपि राजकुलप्रवेशः ।

उभौ-(स्वगतम्) हा आस्वादितमस्माभिः स्वजनेष्वसहिष्णुतायाः दारुणं फलम्।

भगवान्दासः-(सप्रश्रयम्) मृष्यतु सार्वभौमः कार्यातिपातम् ।

मानसिंहः-(सप्रश्रयम्) कृपापारावारेण देवेन मर्षणीयोऽयं दासजनः ।

सार्वभौमः-क्षत्रवीरौ न सहते लेशमपि कार्यातिपातं सावभौम इति सम्यगवधार्यताम् । तदतःप्रभृति साम्राज्यकार्येष्वप्रमत्तैर्भवितव्यम् ।

उभौ-यदादिशति कृपावतारः सार्वभौमः ।

सार्वभौमः-तावदविलम्बेन निगृह्य मत्समीपमानीयतामस्मदरातिः । यावद्वयं राजधानीं प्रति प्रतिष्ठामहे ।

उभौ-तथा ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ समाप्तोऽयं **मेवाडाक्रमण**नामा तृतीयोऽङ्कः ॥

इति श्रीप्रतापविजयटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां
मेवाडाक्रमणनामा तृतीयोऽङ्कः समाप्तः ।

चतुर्थोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति कुम्भलगडदुर्गप्रासादावस्थितोऽमात्यः)

अमात्यः-(स्वागतम्) निजराजधानीं प्रतिनिवृत्ते मोगलेशे यवनमतङ्ग-गण्डविदारणपटुना क्षत्रकेसरिणा मेवाडेश्वरेण पुनरपि तरसाक्रम्य विजित एष दुर्गराजः। युवराजेनापि दिवेराक्रमणावसरे यवनसेनानायकमेकेनैव कुन्तप्रहारेणाविध्य प्रकटीकृतः स्वाभिजनानुरूपः पराक्रमः । एवं सर्वत्र विफलीकृतोऽपि मायावी मोगलेशो नाद्यापि मन्दोत्साहो लक्ष्यते । दिष्ट्या मेवाडसिंहासनमलङ्कुरुते संप्रति क्षात्रधर्मावतारः स्वातन्त्र्यैकरसो महाराजः प्रतापसिंहः । तथापि प्रचुरकोशबलसमृद्धस्य मायाविनो मोगलाधिपस्य प्रतिघाताय परिमितसाधनोऽयमेकाकी कथं प्रभविष्यती-त्यौत्सुक्येनाकुलीकृतोऽस्मि । कदाचिदयं

सामन्तमन्त्रिजनताप्रणयावदातः

शौर्यातिरेककुलगौरवगर्वितोऽपि ।

व्यूहोर्जितप्रतिभटोरुगणावरुद्धः

सौभद्रवत् परिभवास्पदतां प्रयायात् ॥१॥

तन्नयमार्गमेवावलम्ब्यावमर्दनीयोऽयं बलोत्कटः परिपन्थीति महाराजं विज्ञापयामि ।

(प्रविश्य)

द्वारपालः विजयताममात्यः । एष मोगलेशदूतो द्वारि तिष्ठति ।

अमात्यः-प्रवेशयैनम् ।

द्वारपालः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

दूतः-विजयतामार्यः ।

सामन्तेति-*** वसन्ततिलकावृत्तम् । उपमालंकारः ।

अमात्यः-स्वागतं विप्रवर्यस्य ।

दूतः-अमात्यस्य सौजन्यातिशयेन परितुष्टोऽस्मत्प्रधानमन्त्री विज्ञापयति-यदस्थान एव भवादृशा धीवैभवविश्रुता राजपुरुषाः केवलं दूरध्यवसायोपसृष्टेन राज्यश्रिया परिभ्रष्टेन साहसिकेन प्रतापेनैवं वैक्लव्यपदं नीयन्ते । तन्मिथो विद्वेषविलुप्यमानानां नृपाणां समायोगेन भारतीयप्रजासंग्रहार्थमुद्यतकृपाणः कृपावतारः सार्वभौमो भवादृशैः सत्वरं समाश्रयणीयः । सोऽयं प्रतिक्षणं प्रेम्णा प्रतीक्षते भवता साहाय्यालम्बनम् ।

न वै पुनर्गुर्वर्थसिषाधयिषया परिहीयमानोऽल्पोपक्रमो दोषाय कल्पते । तत्सर्वात्मनाऽभिनन्दनीयैषाऽभ्यर्थनाऽमात्यप्रवरेणेति ।

अमात्यः-विप्रवर्य, सर्वथा प्रशंसनीयोऽस्त्ययं भारतीयानां श्रेयःसंपादनाय सार्वभौमेणाङ्गीकृतो नयोपक्रमः । तथापि

प्रभञ्जनोत्पाटितवप्रपादपं
समुत्पतत्पन्नगराजिसंकुलम् ।
हित्वोद्भवं स्वं मलयं हिरण्मयं
मेरुं श्रयन्ते न हि चन्दनद्रुमाः ॥२॥

इति सप्रश्रयं निवेदय तव स्वामिने ।

दूतः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

अमात्यः-अहो प्रवर्तितोऽनेन भेदनयः । कदाचिदेतद्वागुरावनद्धाः केचनानभिजाता देवस्यानिष्टमप्यापादयेयुः । तच्छीघ्रं देवस्य पार्श्ववर्ती भवामि । कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

द्वारपालः-आज्ञापयत्वमात्यः ।

न वै पुनरिति । - भारतीयनृपाणां संघटनरूपस्य गुर्वर्थस्य सिसाधयिषया साधयितुमिच्छया परिहीयमानः परित्यज्यमानः अल्पोपक्रमः मेवाडस्वातन्त्र्यरक्षणरूपः दोषाय न कल्पते न प्रभवति ।

प्रभञ्जनेति-प्रभञ्जनेन महावातेन *** । उपजातिवृत्तम् । अप्रस्तुतप्रशंसालंकारः ।

अहो प्रवर्तितेति ।- अत्र गर्भसन्ध्यारम्भः । तदुक्तं दर्पणे -'फलप्रधानोपायस्य प्रागुद्भिन्नस्य किंचन । गर्भो यत्र समुद्भेदो ह्रासान्वेषणवान् मुहुः ॥' इति ।

अमात्यः-मन्त्रगृहमार्गमादेशय ।

द्वारपालः-इति इतोऽमात्यः । (उभौ परिक्रामतः) एतन्मन्त्रगृहद्वारं प्रविशत्वमात्यः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति मन्त्रगृहावस्थितो मन्त्रिद्वितीयः प्रतापसिंहः)

अमात्यः-(प्रविश्य प्रणम्य) वर्धतां देवो मालवजयेन । देवस्य प्रभावेण विजित्य मालवजनपदान् सर्वतः संगृहीतो मया राजांशः पञ्चविंशतिलक्षरूपकैः सहस्रस्वर्णमुद्राभिश्च परिमितः ।

प्रतापसिंहः-वीर अभिनन्दामि त्वत्कृतं यथासमयं रिपोराक्रमणम् । त्वं तावदेकतमे निगूढकोशागारे गोपायैनं महानिधिम् ।

अमात्यः-यदादिशति देवः ।

(प्रविश्य)

युवराजचरः-वर्धतां देवोऽभिनवविजयेन । महता शौर्येणाक्रम्य मोगलदलं कुमारेण निगृहीतो मोगलसेनापतेरवरोधः समीपतरवर्तिशृङ्गान्तरेऽवरुद्धः । श्रुत्वा देवः प्रमाणम् ।

प्रतापसिंहः-भद्र उच्यतां मद्वचनात्कुमारो यत्तवैतत्साहसेन परितुष्टः प्रतापस्त्वामभिनन्द्य तुरुष्कसेनापतेरवरोधं राजकुलोचितातिथ्यसत्क्रियापूर्वकं विसर्जयितुमादिशति । न कदाचित्परदारापहरणमनुमन्वते तपनकुलसंभवा इति ।

युवराजानुचरः-यदाज्ञापयति देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

गूढचरः-विजयतां देवः । महाराजमनिगृह्य परावृत्तस्य तव शिरश्छेदो भविष्यतीत्यादिश्य मोगलेशेन प्रेषितः सेनानायको महता कोशबलेन सह संप्राप्तोऽजमेरनगरम् ।

प्रतापसिंहः-भद्र पुनरपि ज्ञायतामस्य समरप्रवृत्तिः ।

गूढचरः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

प्रतापसिंहः-(सरोषम्) अविरतमस्मान् बाधितुं बद्धपरिकरोऽयमरातिः कथमपि शीघ्रं भग्नोद्यमः कर्तव्यः ।

अमात्यः-देव,

सामोपचारैर्नृपतिं समप्रभं
दानेन हीनं कुलधर्मनिष्ठम् ।
सत्त्वाधिकं भेदनयेन चोद्धतं
दण्डेन भिन्नप्रकृतिं वशं नयेत् ॥३॥

परंतु राजधर्मापेतस्य मायाविनो मोगलेशस्य मायाप्रयोगमन्तरेण न विद्यतेऽन्यः प्रतीकारः । तच्छैलदुर्गमाश्रित्य कूटाभियोगैर्वणिक्पथावरोधैश्चैतद्बलसंक्षयं विधायायं मन्दोत्साहः कर्तव्यः ।

मन्त्री-सर्वथाऽभिनन्दनीयोऽयं मन्त्रनिर्णयः । यतः

विगृह्य लोकाधिपतिर्बलीयसा
सुखं वसेन्नैव समानभूमौ ।
परं समेतं निचयापसारैः
समाश्रयेत्सत्वरमद्रिदुर्गम् ॥४॥

अपिच समामनन्त्यत्र नयमार्गविचक्षणा यत्-

पार्ष्णिग्राहप्रकोपं प्रकृतिविघटनं मित्रवर्गोपजापं
सेनायाः कूटयुद्धैः क्षयमनवरतं साधनानां व्ययं वा ।

सामोपचारैरिति ।- *** भिन्नाः प्रवृतयः राजस्य सप्त अङ्गानि 'स्वाम्यमात्यसुहृत्कोश-राष्ट्रदुर्गबलानि' *** । उपजातिवृत्तम् ।

विगृह्येति । लोकाधिपतिः नृपः बलीयसा विगृह्य कलहं वृत्वा समानभूमौ जनपदे सुखं नैव वसेत्। परं परंतु निचयैः धान्यनिचयैः अपसारैः अपसरणमार्गैः च समेतं युक्तं अद्रिदुर्गं शैलदुर्गं सत्वरं समाश्रयेत् । उपजातिवृत्तम् । तदुक्तं कौटलीये-'दुर्बलो राजा बलवताऽभियुक्तस्तद्विशिष्टबलमाश्रयेत ।... सहायाभावे दुर्गमाश्रयेत । यत्रामित्रः प्रभूतसैन्योऽपि भक्तयवसेन्धनोदकोपरोधं न कुर्यात् । स्वयं च क्षयव्ययाभ्यां युज्येत । तुल्यदुर्गाणां निचयापसारतो विशेषः ।' इति । (अर्थशास्त्रम्-सं.कंगले, अधि० ७, अ० १५.१, ९-१०)

पार्ष्णिग्राहेति-अभियोक्तुः युध्यमानस्य रिपोः पार्ष्णिग्राहस्य पृष्ठप्रदेशाधिपस्य प्रकोपं प्रकृतीनां विघटनं भेदं मित्रवर्गस्य उपजापं कूटयुद्धैः सेनायाः क्षयं अनवरतं सततं साधनानां युद्धसामग्र्याः व्ययं दुर्भिक्षेण अनुपदं व्यसनं विपदं वा तस्य अभियोक्तुः उत्साहस्य भङ्गं यः निःशङ्कं असंशयं विधातुं प्रभवति सः एव सुखं दुर्गं संश्रयेत् न इतरः इत्यर्थः । स्रग्धरावृत्तम् । तदुक्तं कौटलीये-'तद्दुर्गमेभिः कारणैराश्रयेत । पार्ष्णिग्राहमासारं

दुर्भिक्षेणाभियोक्तुर्व्यसनमनुपदं वा तदुत्साहभङ्गं
निःशङ्कं यो विधातुं प्रभवति स सुखं संश्रयेदेव दुर्गम् ॥५॥

तत्प्रबलपरिपन्थिपराभवायापर्याप्तनिचयमेतद्दुर्गं परित्यज्य नानाशस्यसंपन्नः सर्वतश्चापसारैरनुविद्धः शैलप्रदेश एवाशु समाश्रयणीयः । तत्र स्थिता वयं नानायोगैर्बलवतोऽप्यरातेः पराभवाय प्रभविष्यामः । यतः

गाढारक्तप्रकृतिरबलोऽनल्पवीर्यस्य शत्रोः
प्रत्याहन्तुं प्रभवति नृपो दुर्गसंस्थोऽभियोगान् ।
कालेनैवं विमृदितदलं हीनकोशं द्विषन्तं
नानायोगैरुपचितबलो लीलयैवोच्छिनत्ति ॥६॥

प्रतापसिंहः-सर्वथा प्रतिपद्येऽहममात्यानुगृहीतं मन्त्रिवचनम् । परं च कालकृतविपर्यासेन दूयते मेऽन्तरात्मा । यतः

रिपून्मथनजृम्भिताप्रतिमविक्रमैर्विश्रुता
ध्रुवं नृपतिपुंगवाश्चिरमितो विनाशं गताः ।
इमे विषयलोलुपा हतधियो नृपाः सांप्रतं
पराङ्घ्रियुगकिंकराः कलुषयन्ति गोत्रत्विषम् ॥७॥

मन्त्री-एवं नार्हति देवः क्षत्रकुलकलङ्कानां पापाचारैरात्मानमवसादयितुम् । यतः

जनैः ससत्त्वैः स्वकुलप्रतिष्ठा
संरक्ष्यते नैव निकृष्टसंघैः ।

मध्यममुदासीनं वा प्रतिपादयिष्यामि । ... वीवधासारप्रसारवधेन वास्य स्कन्धावारावग्रहं करिष्यामि; दण्डोपनयेन वाऽस्य रन्ध्रमुत्थाप्य सर्वसन्दोहेन प्रहरिष्यामि । प्रतिहतोत्साहेन वा यथेष्टं सन्धिमवाप्स्यामि । मयि प्रतिबद्धस्य वा सर्वतः कोपाः समुत्थास्यन्ति । निरासारं वास्य मूलं मित्राटवीदण्डैरुद्घातयिष्यामि । ...निम्नखातरात्रियुद्धविशारदं वा मे सैन्यं पथ्याबाधमुक्तमासन्ने कर्मणि करिष्यति । विरुद्धदेशकालमिहागतो वा (स्वयमेव) क्षयव्ययाभ्यां न भविष्यति। महाक्षयव्ययाभिगम्योऽयं देशो दुर्गाटव्यपसारबाहुल्यात्, परेषां व्याधिप्रायः सैन्यव्यायामानामलब्धभौमश्च तमापद्गतः प्रवेक्ष्यति । प्रविष्टो वा न निर्गमिष्यतीति । कारणाभावे बलसमुच्छ्रये वा परस्य दुर्गमुन्मुच्यापगच्छेत्।' इति। (अर्थशास्त्र-अधि० ७, अ० १५. १२-१३)

गाढारक्तेति । *** मन्दाक्रान्तावृत्तम् ।

रिपून्मथनेति । *** पृथ्वीवृत्तम् ।

जनैरिति । अर्थान्तरन्यासोऽत्रालंकारः ।

तिमिङ्गिलग्राहसमाकुलोऽम्बुधिः
रत्नैर्हि रत्नाकरतां समश्नुते ॥८॥

(नेपथ्ये)

वैतालिकः-विजयतां स्वातन्त्र्यैकरसो महाप्रतापो महाराजाधिराजः ।

जनपदहितदक्षा बाहुवीर्यप्रतिष्ठा
विबुधपतिसहायाः क्षात्रधर्मैकनिष्ठाः ।
दिनकरकुलधुर्या आत्मवन्तः स्वतन्त्रा
नियमितपरचक्रास्तेजसैवोत्तपन्ते ॥९॥

प्रतापसिंहः-(आकर्ण्य) सत्यं सर्वदा स्वायत्तसिद्धय एव रविकुलसंभवाः ।

मन्त्री-(विचिन्त्य) अपिच नह्यजनो जनपदो राज्यमजनपदं वा भवति । तत्पूर्वं तावदस्मज्जनपदोऽभये स्थापनीयः ।

प्रतापसिंहः-एतदप्युपपन्नम् । कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

प्रतिहारः-आज्ञापयतु देवः ।

प्रतापसिंहः-उद्घोष्यतामस्मद्वचनात्पुरग्रामनदीतीरव्रजादिषु यदात्मरक्षार्थं सर्वैः पौरजानपदैः सत्वरं शैलप्रदेश आश्रयणीयः । न चैवमुज्झिते प्रदेशे केनापि कृष्यादिकर्मानुष्ठेयम् । एतद्राजशासनातिक्रमणे त्वपरिहार्या देहान्तदण्डार्हता कृतागस इति ।

प्रतिहारः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

प्रतापसिंहः-(सोद्वेगम्) मन्त्रिवर्य,

कष्टं चिरायाचलवासनिश्चया-
न्मयोज्झितेयं यवनावमर्दिता ।
अरण्यभावेन समृद्धसस्या
वसुन्धरा मे परिणंस्यते ध्रुवम् ॥१०॥

जनपदेति । *** मालिनीवृत्तम् ।

मन्त्री-प्रसीदतु देवः । अगतिका ह्येषा गतिर्मेवाडेश्वराणाम् ।

(नेपथ्ये)

वैतालिकः-विजयतां नयमार्गविचक्षणोऽमोघविक्रमो महाराजाधिराजः ।

समदनृपमभीक्ष्णं धर्षयित्वा रणाग्रे
प्रकटितपृथुवीर्यो यावनेशाभियुक्तः ।
यदुपतिरिव दुर्गे वासयित्वा स्वपौरान्
प्रतिहतपरमन्त्रो राजसे त्वं स्वतन्त्रः ॥११॥

प्रतापसिंहः-(आकर्ण्य) अहो स्वयमीश्वरांशेनावतीर्णेन भगवता क्षुण्ण एष मार्ग इति स्मरणेन पुनः प्रोत्साहिता वयम् । क कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

प्रतिहारः-आज्ञापयतु देवः ।

प्रतापसिंहः-दुर्गपालं द्रष्टुमिच्छामि ।

प्रतिहारः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

दुर्गपालः-विजयतां देवः ।

प्रतापसिंहः-वीर, द्वित्रैरहोभिः सपरिवारं प्रस्थास्यामो वयं शैलप्रदेशम् । तद्यावच्छक्यं परिपालयैतद्दुर्गराजम् ।

दुर्गपालः-देवस्य प्रभावेण स्वल्पबलोऽपि प्रभविष्याम्यहं युद्धोपकरणसंनद्धं दुरारोहमेतद्दुर्गराजं परिरक्षितुम् ।

नानाप्रहारपटुवीरभटोत्कटोऽयं
क्षुद्रावरोधकगणैः प्रतियुध्यमानः ।
दासस्त्वदन्नपरिपुष्टवपुर्ध्रुवं ते
प्राणात्ययेऽपि परिपालयिताऽग्र्यदुर्गम् ॥१२॥

समदेति ।- *** समदं नृपं मानसिहं पक्षे जरासन्धं *** यावनेशेन अकबरेण पक्षे बलियवनेन अभियुक्तः आक्रान्तः सन् यदुपतिः कृष्णः *** मालिनीवृत्तम् । उपमालंकारः ।

नानाप्रहारेति- *** वसन्ततिलकावृत्तम् ।

प्रतापसिंहः-वीर, प्रीतोऽस्मि तवोत्साहातिरेकेण। त्वं तावच्छीघ्रं प्रतिपद्यस्व स्वनियोगम् ।

दुर्गपालः-यदाज्ञापयति देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

प्रतिहारः-विजयतां देवः । देवं द्रष्टुकामो निषादपतिर्द्वारि तिष्ठति ।

प्रतापसिंहः-प्रवेशयैनम् ।

प्रतिहारः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

निषादपतिः-विजयतां देवः ।

(इति त्रिः प्रणम्य फलान्युपहरति)

प्रतापसिंहः-स्वागतं निषादाधिपतेः ।

निषादपतिः-देवस्य शैलावासप्रवणतामुपलभ्य संप्राप्तोऽस्म्यहं प्रवेष्टुं परिचारकगणम्। तद्यथार्हनियोगेनानुग्राह्योऽयं दासजनः। लघुरयं किं ममोपकरिष्यतीति नैवावधार्यम् । यतः

अल्पः कदाचिन्महता सुदुष्करं
कार्यं महत्साधयितुं भवत्यलम् ।
काष्ठैकपोतेन सुखोत्तरः प्रभो
हिरण्यनावा जलधिर्न तीर्यते ॥१३॥

प्रतापसिंहः-निषादपति, परितुष्टोऽस्मि तव राजनिष्ठातिशयेन । तदद्यैव नियुज्यसे त्वमस्मदाटविकबलस्याधिपत्ये।

निष्दपतिः-महानेषोऽनुग्रहः स्वातन्त्र्यैकरसस्य देवस्य मयि दासजने।

प्रतापसिंहः-वीर, परिचिताशेषशैलसंक्रमस्त्वमतः परं भविष्यसि मे परमः सहायः ।

अल्प इति । *** उपजातिवृत्तम् । अर्थान्तरन्यासोऽलंकारः ।

निषादपतिः-(सप्रश्रयम्) अहो अद्य मे सफलं जन्म ।

प्रतापसिंहः-तत्त्वमाटविकदलं सज्जीकृत्यास्मज्जानपदपौराणामावासयोग्यान् शैलाभ्यन्तरभूमिभागानुपकल्प्य तत्र परिपालयास्मदुपागमनम्।

निषादपतिः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

प्रतापसिंहः-मन्त्रिन् सर्वथाऽनुकूलं दैवमिति तर्कये ।

मन्त्री-अथ किम्। स्वातन्त्र्यप्रियस्यैकलिङ्गाधिष्ठितस्य महाराजस्य कालेन सर्वेऽपि भविष्यन्त्यनुकूला व्यतिकराः ।

प्रतापसिंहः-अहं तावदन्तःपुरमुपसृत्य प्रयाणप्रबन्धं प्रकल्पये। कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

प्रतिहारः-आज्ञापयतु देवः ।

प्रतापसिंहः-अन्तःपुरमार्गमादेशय ।

प्रतिहारः-इत इतो देवः। (उभौ परिक्रामतः) एतदन्तःपुरद्वारं प्रविशतु देवः।

(इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति राजपुत्रीसहिता महिषी)

प्रतापसिंहः-(प्रविश्य) देवि जातः खलु शैलधिवासनिर्णयः ।

महिषी-(सहर्षं) प्रीताऽस्म्यार्यपुत्रस्य शैलाधिवासाध्यवसायेन ।

प्रतापसिंहः-अगतिका ह्येषा गतिः स्वातन्त्र्यपरिपालनाय ।

महिषी-आर्यपुत्र स्वातन्त्र्यमेव राजन्यस्य वीर्यम्। अपिच

नानारसैः स्वादुफलैः सुपोषितः
स्नेहेन राजन्यकुलोपलालितः ।
शुकोऽपि चामीकरपञ्जरश्रितो
न पारतन्त्र्यं बहु मन्यते खगः ॥१४॥

तत्किं पुनस्तेजस्विनो लोकपालाः ।

नानारसैरिति । - *** उपजातिवृत्तम् ।

प्रतापसिंहः-अथ किम् । किं तु प्रकृतिकोमलस्यान्तःपुरजनस्यायासबहुलः शैलाधिवासो नितरां क्लेशाय भविष्यतीति व्याकुलोऽस्मि ।

महिषी-प्रसीदत्वार्यपुत्रः । परिचितमृगयाविहाराणां क्षत्राङ्गनानां तु

घनविरूढफलाञ्चितपादपं
मधुरनिर्झरवारिपरिस्रवम् ।
द्विजततेर्विरुतैश्च निनादितं
व्रजति नन्दनतां गिरिकाननम् ॥१५॥

एषा पृथ्वीराजस्य भगिन्यपि विहाय मोगलराजधानीविलासान् शैलाधिवासमेवाभिनन्दति ।

प्रतापसिंहः-वत्से, उपप्लवबहुलो हि शैलाधिवासः ।

महिषी-वत्से, कथमकारणमात्मानं क्लेशपदं नेतुमुत्सहसे । वीरगणपरिरक्षिता त्वं सुखं प्रतिष्ठस्व हस्तिनापुरम् ।

राजपुत्री-अम्ब, निसर्गत एव स्वातन्त्र्यप्रियाः सन्ति क्षत्रकन्यकाः । तद्

यवननृपकुलाङ्गनाऽवधूता
नटविटवृन्दविडम्बनाऽवसन्ना ।
नियमितसुखसंचराऽस्वतन्त्रा
न जननि जीवितुमुत्सहे पुरेऽस्मिन् ॥१६॥

प्रतापसिंहः-अस्तु । (पुरतो विलोक्य) एष युवराज इत एवोपसर्पति ।

(ततः प्रविशति युवराजः)

राजपुत्री-(युवराजं वीक्ष्य स्वगतम्) अहो नु खलु

उपनतनवयौवनाऽभिरामः
स्मितवदनः कमनीयकुन्तलोऽयम् ।
कमपि मधुरदर्शनः कुमारो
जनयति मे शुचि मानसे विकारम् ॥१७॥

घनविरूढेति - *** द्रुतविलम्बितवृत्तम् । गिरिकाननं नन्दनतां व्रजतीति समर्थनसापेक्षस्य घनविरूढेत्यादिना समर्थनात्काव्यालिङ्गमलङ्कारः ।

यवनेति-*** पुष्पिताग्रावृत्तम् ।

युवराजः-अभिनन्दितं महाराजस्योद्घोषणं पौरजनैः ।

प्रतापसिंहः-साधु वत्स पौरजनानुरागायत्ता हि राष्ट्रसंपदः । कः कोऽत्र भोः।

युवराजः-(राजपुत्रीं निर्वर्ण्य स्वगतम्) अहो न्वकाण्ड एव

नवानुरागाञ्चितलोललोचना
बालेयमारोहति मेऽञ्जसा मनः ।
वामभ्रुवां मुग्धमपाङ्गवीक्षितं
क्षणेन यूनां विजयाय कल्पते ॥१८॥

(प्रविश्य)

कञ्चुकी-आज्ञापयतु देवः ।

प्रतापसिंहः-सद्य एव प्रस्थानाभिमुखा भवन्तु सर्वेऽन्तःपुरनिवासिनो जनाः।

युवराजः-(आत्मानं मुहुर्मुहुरवलोकयन्तीं राजपुत्रीं निरीक्ष्य स्वगतम्)

अहो न्वियं पूर्णमृगाङ्कशीतला
सुधारसैः सिञ्चति मामभीक्ष्णम् ।
हरप्रकोपानलदग्धविग्रहं
बालेयमुज्जीवयति स्मरं पुनः ॥१९॥

कञ्चुकी-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

प्रतापसिंहः-तावद्वयमपि प्रस्थानप्रवणा भवेम ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ समाप्तोऽयं **शैलदुर्गाश्रय**नामा चतुर्थोऽङ्कः ॥

नवेति - *** उपजातिवृत्तम् । अत्र युवराजराजपुत्रीप्रणयरूपस्य पताकावृत्तस्यारम्भः । तदुक्तं दर्पणे-'व्यापि प्रासङ्गिकं वृत्तं पताकेत्यभिधीयते ।' इति ।

अहो न्वियमिति ।- *** उपजातिवृत्तम् ।

इति श्रीप्रतापविजयटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां
शैलदुर्गाश्रयनामा चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः ।

पञ्चमोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशन्ति शैलाधित्यकायां क्रीडन्त्यः कञ्चुकिनाऽधिष्ठिता राजकन्याः)

प्रथमा-(ससंभ्रमम्) अयि गृहाणैतं स्रोतसाऽपोह्यमानं कुसुमकन्दुकम् ।

द्वितीया-सुदूरमाकृष्ट एष प्रवाहवेगेन ।

तृतीया-युवामपसरतम् । इयमहं प्रत्यानयामि ।

(इति सख्यावपसार्यानयति)

प्रथमा-(सभ्रूभङ्गम्) पुंवत्प्रगल्भमानैषाऽभीक्ष्णं मां वज्रसारेण हस्तेन प्रहरति।

द्वितीया-(सपरिहासम्) अमरेन्द्र एवार्हत्यस्या वज्रसारं हस्तं पीडयितुम् ।

तृतीया-(सरोषमिव) अलं तव वाक्चापलेन ।

द्वितीया-अयि नायं परिहास । यतः

ऊर्जस्विनं शीलगुणान्वितं वरं
क्षत्रात्मजा कामयते मनोरमम् ।
उल्लोलवीचिक्षुभिता तरङ्गिणी
समीरवेगेन समेति सागरम् ॥१॥

तृतीया-स्निग्धे सर्वत्र सान्तरायोऽस्ति प्रार्थितोदयः कन्यकाजनस्य ।

द्वितीया-हला किमेवं मिथ्याविकल्पनैरात्मानं क्लेशपदं नयसि ।

मुकुलितां मधुसौरभसंयुता-
मुपचितावयवां विपिनश्रियम् ।
नवरसाङ्कुरितां नवमल्लिकां
मधुकरो न विहातुमयि क्षमः ॥२॥

तृतीया-(उर्ध्वं विलोक्य स्वगतम्) जातः खलु संकेतसमयः । (प्रकाशम्) अयि पश्यैष

ऊर्जस्विनमिति । *** उपजातिवृत्तम् ।

मुकुलितामिति । *** द्रुतविलम्बितं वृत्तम् । अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः ।

तृणलतास्तरणां विमलस्रवां
प्रचुरपल्लवरञ्जितपादपाम् ।
गिरिभुवं परिसर्पिपयोधरां
नयति काञ्चनतामुदितो रविः ॥३॥

प्रथमा-नूनमुपभोगार्हः खल्वयं शैलाभोगः । यतः

कुसुमितद्रुमराजिसमावृता
सुरभिगन्धवहैरधिवासिता ।
अनियतालिविहाररहिताऽऽयता
हरति कस्य मनो न नगस्थली ॥४॥

कञ्चुकी-(स्वगतम्) अहो निसर्गत एव नवताभिनिविष्टो युवजनः ।

द्वितीया-अयि किमित्ययमेकपदे बालारुणमावृत्य तिष्ठति बलाहकः ।

तृतीया-(दक्षिणाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा स्वगतम्) हा कथमनिष्टमाशङ्कते ते हृदयम्। अथवा किं नाम भाव्यर्थसूचकत्वमङ्गविकाराणाम् ।

प्रथमा-(जनान्तिकम्) अयि पश्यैषा किमपि विचिन्तयन्त्यनवहितेव लक्ष्यते। तावदेहि कुसुमावचयार्थमितस्ततः परिक्रमावहे ।

(इति निष्क्रान्ते)

कञ्चुकी-(दूरं विलोक्य स्वगतम्) एष राजकन्यकायां नितरां बद्धभावः कुमार इत एवाभिसर्पति ।

(ततः प्रविशति युवराजः)

कञ्चुकी-स्वागतमायुष्मतः ।

तृतीया-(ससंभ्रमम्) स्वागतं रविकुलतिलकस्य ।

युवराजः-अपि सुखायते शैलाधिवासः ।

तृतीया-अथ किम् । एते खलु

तृणलतेति । *** द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ।
कुसुमितेति । *** द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ।

उत्तुङ्गाद्रिविलासाः
सवयोभिः सेविताः सहचरीभिः ।
आशाबन्धनिबद्धं
प्रसादयन्त्यन्तरङ्गमुन्मदानाम् ॥५॥

(इति कुमारेण सह परिक्रामति)

युवराजः-(निःश्वस्य स्वगतम्) हा कष्टम् ।
एकान्ततो मत्प्रणयाकुलां कथं
संतर्जयेऽहं कुलधर्मनिष्ठया ।
मनः कृशाङ्ग्या बिसतन्तुकोमलं
सहिष्यते नैव निषेधरौक्ष्यम् ॥६॥

तत्प्रकारान्तरेणैनां सान्त्वयिष्ये । (प्रकाशम्) अयि राजपुत्रि, सर्वथा परवशे मयि नोचितस्तवेदृग्भावानुबन्धः । यतः
दृढानुरागेण वशीकृतोऽप्यहं
नैवास्म्यलं पूरयितुं मनोरथम् ।
विशुद्धवंशप्रभवस्य शोभने
गुरोर्निदेशः परमा गतिर्मम ॥७॥

तृतीया-(साक्षेपम्) धर्मवीर, परं प्रीणयति मां तव धर्मानुरागः । अतः परं महाराजस्यानुज्ञासंपादनेनात्मानं कृतार्थतां नेतुं प्रयतिष्ये ।

युवराजः-अयि सुन्दरि, एतदप्यसंभाव्यम् । यतो दिवि वा भुवि वा न कोऽपि पारयते व्रतनिर्बन्धपरं महाराजमनुनेतुम् ।

तृतीया-(सावष्टम्भम्) न कदापि प्रार्थितफलाधिगमं प्रति मन्दोत्साहा भवन्ति क्षत्राङ्गनाः । तत्
सपद्यहं विक्रमपक्षपातिनं
प्रसादयिष्ये तममोघविक्रमैः ।

उत्तुङ्गेति । *** अत्र आशाबन्धनिबद्धमित्यनेन राजपुत्र्या युवराजे प्रणयातिरेको व्यज्यते ।
सपद्यहमिति । *** उपजातिवृत्तम् ।

आराध्य शौर्येण पिनाकिनं पुरा
प्राप्तं जयेनासुलभं महास्त्रम् ॥८॥

युवराजः-राजपुत्रि, क्षमस्व मम धर्मानुरागजं नैष्ठुर्यम्। अहमपि यावच्छक्यं प्रयतिष्ये तातमनुकूलयितुम्।

(प्रविश्य)

प्रतिहारः-विजयतां कुमारः । शैलाग्रमधिरूढो देवः कुमारं द्रष्टुमिच्छति ।

युवराजः-अथामन्त्रये राजपुत्रीम् ।

तृतीया-(सनिर्वेदम्) पुनरप्यनुगृह्णात्विमामबलामचिरदर्शनेन ।

युवराजः-तथा । (प्रतिहारं प्रति) आदिश तावदारोहमार्गम् ।

प्रतिहारः-इत इतः कुमारः ।

(उभौ परिक्रामतः)

युवराजः-(स्वगतम्) हा कष्टं कुलव्रतभङ्गभीरुणा मया प्रत्यादिष्टेयं मदनातुरा कदाचिदनिष्टमप्याचरेत्। परंतु

ललितसुमनोरागासक्तां मनोहरपल्लवां
परिमलगुणै रम्योपान्तां विलोलनवच्छदाम्।
हिमगिरिसरोमार्गे खिन्नः खगोऽप्यशनाकुलः
स्थलकमलिनीं नैवाश्लिष्यत्यपास्य कुलव्रतम् ॥९॥

(ततः प्रविशति शैलाग्रमधिरूढः प्रतापसिंहः)

युवराजः-(उपसृत्य) आज्ञापयतु महाराजः ।

प्रतापसिंहः-वत्स संप्रति प्रबलपरिपन्थिपरावृतैरस्माभिर्विषयाभिष्वंगं परित्यज्य सततं रिपुदलमर्दनेन शैलावासविक्लवाः प्रजा रक्षणीयाः । वत्स सर्वथा दुर्वाह्यो हि राज्यभरः ।

षाड्गुण्यप्रमुखप्रयोगमथितप्रत्यर्थिसंघाकुलं
चिन्ताजागरविप्रवासजनितक्लेशावहं दुर्धरम्।

षाड्गुण्येति । *** शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ।

दुर्दान्तैर्व्यसनप्रमूढमतिभिर्वोढुं सदैवाक्षमं
राज्यं नाम नृपस्य वत्स विषमं निस्त्रिंशधाराव्रतम् ॥१०॥

(दूरं निर्दिश्य) वत्स पश्यैतानस्मदन्वेषणायोपत्यकायां पर्यटतो यवनसंघान्। वनेचरसहायः सत्वरं तान् व्यापादय ।

युवराजः-यदाज्ञापयति देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(नेपथ्ये)

विजयतां मेवाडमार्तण्डो भारतैकवीरो महाराजः प्रतापसिंहः ।

प्रतापसिंहः-(आकर्ण्य सविस्मयम्) अहो संप्राप्तो रविकुलकवीश्वरः ।

(प्रविश्य)

कवीश्वरः-विजयतां तपनान्वयोद्वहो महाप्रतापो महाराजाधिराजः ।

प्रतापसिंहः-स्वागतं कवीश्वरस्य । चिरविप्रयुक्ते प्रतापे महानेषोऽनुग्रहः ।

कवीश्वरः-महाराज निसर्गसिद्धो हि राज्ञि कविकुलस्यानुषङ्गः ।

यथा वसन्ते नवपल्लवोद्गमो
घनोदयः प्रावृषि लोकनन्दनः ।
तथा नृपेन्द्रे नियतानुषङ्गिणः
शब्दार्थसिद्धाः कवयो रसेश्वराः ॥११॥

अपि चोभयसाधारणे हि रसेश्वरत्वे राज्ञां कवीश्वराणां प्रीतियोगोऽपि सुलभः।

प्रतापसिंहः-(सस्मितम्) संप्रति न वयं रसेश्वराः परंच केवलं शैलेश्वराः ।

कवीश्वरः-कुलधर्म एवैष दिनकरकुलस्य यत्प्रतिकूले दैवे शैलसंश्रयः । परं त्वेतेन न रसेश्वरत्वस्य व्यपगमः । पुनरप्यचिरेण राज्यश्रिया संयोक्ष्यते महाराज इत्याशास्महे ।

प्रतापसिंहः-प्रतिगृहीताशीः ।

कवीश्वरः-एतावता कालेन नानाजनपदान् परिक्रम्याकलितं सकलमुदन्तजातं महाराजं श्रावयितुमद्य संप्राप्तोऽस्मि शैलप्रदेशम् । अतः परं भविष्यत्येष गिरिरेव ममाधिवासः ।

प्रतापसिंहः-नितरामनुगृहीताः स्मः । कवीश्वराणां सान्निध्येन विनोदप्रचुरः संपत्स्यतेऽस्मच्छैलावासः । कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

प्रतिहारः-आज्ञापयतु देवः ।

प्रतापसिंहः-प्रापयैनं कवीश्वरं राजकुलोपकार्याम् । मद्वचनादुच्यतां तत्राधिकृतः कोशाध्यक्षो यन्महार्हरत्नैः प्रसाद्य राजोपचारैः संभावयैनं कवीश्वरमिति ।

प्रतिहारः-तथा ।

(इति कवीश्वरेण सह निष्क्रान्तः)

(नेपथ्ये कलकलः)

प्रतापसिंहः-अहो किं नु खलु स्यात् ।

प्रधानमन्त्री-(दूरं विलोक्य) एषा विक्रमशालिनी पृथ्वीराजभगिनी स्वयमित एवोपसर्पति ।

(प्रविश्य)

राजकुमारी-वर्धतां देवो विजयेन । परास्ता मया वनेचरसाहाय्येन प्रच्छन्नं प्राङ्गणमुपगताः परिपन्थिगणाः ।

प्रतापसिंहः-साधु राजपुत्रि साधु । स्वकुलानुरूपमेव त्वया विक्रान्तम् ।

शौर्यं च गुरुशुश्रूषा पत्युरेवानुवर्तनम् ।
चारित्र्यशुद्धिरौदार्यं गुणाः क्षत्राङ्गनोचिताः ॥१२॥

वत्से प्रसन्नोऽस्मि तव शौर्यातिरेकेण ।

राजकुमारी-तत्कृपयाऽनुजानातु ममैकामभ्यर्थनाम् ।

लज्जां विहायाद्य कुलाङ्गनोचिता-
मभ्यर्थये तात चिरेप्सितं वरम् ।
न वै प्रसादस्तपनान्वयानां
संपादितो निष्फलतां प्रयाति ॥१३॥

प्रतापसिंहः-(सखेदम्) अयि मित्रभगिनि । क्षमस्व मम व्रतनिर्बन्धम् ।

तुष्टस्तवोपासनया प्रतापो
जिहासतीन्द्रानुजवत् प्रतिज्ञाम् ।
समुद्रसत्यव्रतयोस्त्वसंशयं
वेलाविभङ्गो जगतः क्षयाय ॥१४॥

तद्यावज्जीवं सुतनिर्विशेषायास्तव भवत्वस्मत्कुले स्थिरनिवासः ।

राजकुमारी-(सनिर्वेदम्) महानेषोऽनुग्रहो महाराजस्य । (स्वगतम्) अतः परं

नित्यं प्रियाननविलोकननन्दितैवं
नेष्याम्यहं परिणतिं ननु जीवितं मे ।
ज्योत्स्नां निपीय नितरां मुदिता चकोरी
नाकांक्षते ह्यसुलभं द्विजराजयोगम् ॥१५॥

(इति निष्क्रान्ता)

प्रतापसिंहः-मन्येऽवगतमस्मद्गूढनिकेतनं परिपन्थिचारैः । तदितोऽविलम्बेनापसरणमेव श्रेयः ।

प्रधानमन्त्री-अथ किम् ।

प्रतापसिंहः-श्रुतं मया प्रणिधिभ्यो यदेकेन राष्ट्रद्रोहिणा कृषीवलेनास्मच्छासनमतिक्रम्य - उंटालाग्रामाधिपस्यादेशमनुरुध्य-उप्तानि भङ्गाबीजानि तत्परिसरावस्थिततुरुष्कसेनानिवेशमध्यवर्तिनि महाक्षेत्रे । तदस्य पापाचारस्य सद्यो वधार्थं प्रतिष्ठामहे ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ समाप्तोऽयं **शैलविहारो** नाम पञ्चमोऽङ्कः ॥

तुष्टस्तवेति । *** यथा कुरुक्षेत्रे भीष्मस्य भक्त्या परितुष्टेन कृष्णेन शस्त्रमादाय प्रतिज्ञा त्यक्ता तथा अहमपि त्यक्तुं इच्छामि इति तात्पर्यम् । तु परंतु समुद्रस्य सत्यव्रतस्य च वेलाविभङ्गः मर्यादालोपः असंशयं ध्रुवं जगतः क्षपाय भवति । अतः लोकसंग्रहार्थं प्रतिज्ञां न त्यक्ष्ये इत्यर्थः ।

नित्यमिति । *** वसन्ततिलकावृत्तम् । अर्थान्तरन्यासालङ्कारः ।

इति श्रीप्रतापविजयटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां
शैलविहारनामा पञ्चमोऽङ्कः समाप्तः ।

षष्ठोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशतः सार्वभौमोपवनगतौ राजपुरुषौ)

प्रथमः-नूनमतीव मोदमावहति प्रत्यूषेषूपवनचर्या ।

द्वितीयः-अथ किम् । भद्र पश्य

एते तालतमालराजिनिलयानुज्झन्ति चित्राः खगा-
स्तुण्डैर्दाडिमबीजलुञ्चनचणैर्वल्गन्ति केलीशुकाः ।
द्राक्षामण्डपमाशु चन्द्रकरुचा मण्डन्ति केकावलाः
प्रत्यग्रैरधिवासितो मलयजैर्मूर्च्छत्यमन्दानिलः ॥१॥

तथैव

जातीरसाचम्पकपाटलावृते
बालारुणेनारुणिते सरस्तटे ।
प्रफुल्ललोलाम्बुजलास्यलालिता
लसन्ति रम्याः कलहंसकेलयः ॥२॥

प्रथमः-(दूरं विलोक्य) भद्र, एतैर्नवविरचितैः पटमण्डपैः संनिहित इव लक्ष्यते सार्वभौमस्य हृदयंगमो नौरोजमहोत्सवः ।

द्वितीयः-अथ किम् । तत्संविधानायैवाज्ञप्तोऽस्मि देवेन ।

प्रथमः-भद्र, साभ्यसूयोऽस्मि तव सौभाग्यातिशये । मम पुनर्यातायातेन कष्टप्रायमेव नियोगानुष्ठानम् ।

द्वितीयः-अप्युपलब्धा काचित्प्रवृत्तिर्मेवाडेश्वरस्य ।

प्रथमः-कुतः संभाव्यते नामैतत् । अपिच व्यापाद्यते प्रच्छन्नाभियोगैः शतशो यवनमृगा अनेन राजकेसरिणा । तत्र नियुक्ताः सेनानायकास्तु

एत इति । *** शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

जातीति । *** उपजातिवृत्तम् ।

कादम्बरीपानविघूर्णलोचना
मृदङ्गवीणास्वरतालरञ्जिताः ।
वाराङ्गनाश्लेषविलुप्तचेतना
विलासयोगैः क्षपयन्ति कालम् ॥३॥

किं न श्रुतं त्वया यदुपेत्यास्मत्सेनानिवेशं पशुघातं हतवानेकं कृषीवलमयं साहसिकः क्षत्रेश्वर इति ।

द्वितीयः-कच्चिद्विदितमेतत्सार्वभौमस्य ।

प्रथमः-भद्र, नास्ति किंचिदप्यविदितं चारचक्षुषः सार्वभौमस्य । परंतु अस्मदादिष्वनागःस्वपि परिचारकेषु सुलभकोपा लोकेश्वराः सापराधेषु महामात्रेषु पुनरनुरज्यन्ते । सर्वत्राल्पीयसामेव विघातः ।

द्वितीयः-कियदवधि प्रवर्तिष्यतेऽयं मृषाविग्रहः ।

प्रथमः-संप्रति सार्वभौमशरणमन्विष्यति प्रतापसिंहः इति संदिष्टमस्मत्सेनाधिपतिना ।

द्वितीया-किमिदं भूतार्थख्यापनम् ।

प्रथमः-सार्वभौमप्ररोचनार्थं स्यान्नामैषा प्रयुक्तिः । सेनाधिपतिना तु मेवाडवीरस्य मुखमपि नावलोकितम् ।

द्वितीयः-दुरवगाह्यः खलु सार्वभौमनयः ।

प्रथमः-अथ किम् । अहं तावत् राजकुलमुपेत्य श्रावयामि सार्वभौमं सकलमुदन्तजातम् ।

कादम्बरीति । *** उपजातिवृत्तम् ।

पशुघातमिति । -अत्र 'उपमाने कर्मणि च'-इत्यनेन णमुल् । तेन पशुमिव हतवानित्यर्थः ।

महामात्रेति । मन्त्रे कर्मणि भूषायां वित्ते माने परिच्छदे ।
मात्रा च महती येषां महामात्रास्तु ते स्मृताः ॥

श्रावयामीति । अत्र-'गतिबुद्धि'-इति सूत्रेण सार्वभौममित्यस्य कर्मत्वम् ।

द्वितीयः-अहमपि स्वं नियोगं परिपालयामि ।

(इति निष्क्रान्तौ)

विष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशति मन्त्रगृहावस्थितो मन्त्रिसहितः सपरिवारः सार्वभौमः)

सार्वभौमः-(मनः समाधाय स्वगतम्)

यत्र कुत्र गतं नाथ येन केनापि संगतम् ।
यां कामपि दशां प्राप्तं दृशा नन्दय ते जनम् ॥४॥

(इति स्तौति)

तानसेनः-(वीणावाद्येन गायति)

(कर्णाटरागेण अठ (ध्रुपद) तालेन गीयते ।)

ललितनवकदम्बमालविलसिततनुगोपबाल-
लीलापतिरेष कोऽपि वादयते वेणुम् ॥ ध्रुवपदम् ॥

मृगमदाङ्कतिलकभालमञ्जुस्वनरचितजाल-
लीलागतिरेष कोऽपि वादयते वेणुम् ॥ ललित० ॥१॥

चपलनयनघनश्यामसस्मितवदनाभिराम-
लीलारतिरेष कोऽपि वादयते वेणुम् ॥ ललित० ॥२॥

वृन्दावनवल्गुकुञ्जसुमनोरसिकालिगुञ्ज-
लीलामतिरेष कोऽपि वादयते वेणुम् ॥ ललित० ॥३॥

सार्वभौमः-हन्त ललितपदविन्यासेन गेयपदेन वयं पुनर्नवीकृताः। (विचिन्त्य) अमात्य, अपि निर्मिता सकलव्यवहारक्षमा श्रुतिमनोहरा नवीना राष्ट्रभाषा ।

विष्कम्भक इति ।-तल्लक्षणमुक्तं दर्पणे-'वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः। संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥' इति ॥

अमात्यः-सार्वभौमस्यादेशमनुरुध्योद्धृता मया सुगमा रमणीया राष्ट्रभाषा । नानाजनमनोरञ्जनक्षमैषा उर्दुपदेन व्यपदेशमर्हति ।

सार्वभौमः-अभिनन्द्यते तव वैदग्ध्यविभवः । अद्यप्रभृति प्रवर्तिष्यन्तेऽस्यामेव भाषायां मम सर्वेऽपि साम्राज्यव्यवहाराः ।

अमात्यः-अधिराजव्यवहारमेवानुर्वतन्ते सर्वाः प्रकृतयः । तदचिरेण भविष्यति सर्वत्र सुलभो देवस्याभीष्ट एकभाषाप्रचारः ।

(प्रविश्य)

चरः-(त्रिः प्रणम्य) विजयतां सार्वभौमः । समन्ततो वणिक्पथानवरुध्य गुर्जरसार्थवाहेभ्योऽधिराजोपभोगार्हाणि महार्हरत्नानि स्वयमेव परिक्रीय तान् परावर्तयते शैलदुर्गाश्रितः प्रतापः ।

(इति निष्क्रान्तः)

सार्वभौमः-अहो नाद्यापि शिथिलावष्टम्भो लक्ष्यतेऽयं प्रतापः ।

प्रधानमन्त्री-सार्वभौमस्याप्रतिहतप्रभावापहृतधैर्यः क्षिप्रमेवान्विष्यत्यसौ सार्वभौमस्य शरणम् । यतः

विना विवेकं प्रतिपद्य साहसं
महद्विरोधं किल यश्चिकीर्षति ।
विपद्विभिन्नः स जनोऽल्पसाधनः
क्षुब्धार्णवे नौरिव विप्रणश्यति ॥५॥

मन्त्री-उत्कृष्टकुलाभिमानोपसृष्टोऽयं क्षुद्रो नृपालो दुर्दैवप्रेरित इव सार्वभौमं तदनुग्रहशालीन्यशेषक्षत्रकुलानि च विद्वेष्टि । अतः प्रत्यासन्न एवास्य भाग्यविप्लवः।

अमात्यः-धर्मतत्त्वसंमूढोऽयं भारतहितैकतत्परस्य सार्वभौमस्योदात्तनयमवगणय्य केवलं स्वकुलध्वंसमेवामन्त्रयते ।

सार्वभौमः-यत्सत्यं सकलभारतीयनृपालेष्वयमेक एव धर्ममूढोऽस्मदुदात्तनयस्यान्तरायो भवति येन खलु व्याहन्यन्ते महान्तोऽप्यस्मदुपक्रमाः।

मोगलयुवराजः-(सामर्षम्) किमित्येतादृशाः प्रतिमोपासनपरिग्रहपरा जाल्मा नोन्मूल्यन्ते तातचरणैः ।

सार्वभौमः-(विचिन्य) वत्स, अनभिज्ञोऽसि खलु लोकाधिकारतन्त्रनिगमस्य। त्वदभिप्रायेण तु मया षड्भागावशेषः कर्तव्योऽयं विस्तीर्णो जनपदः । वत्स परस्परविद्वेषतो विलुप्यमानस्य लोकस्य परित्राणायेश्वरांशेनावतीर्णेन कथं मया घातयितव्यास्तत्सृष्टा नानाधर्माणः पौरजानपदसंघाः । अपिच सन्ति हि प्रतिमोपासननिर्बन्धपरेषु धीवैभवप्रथिता बहवो नरपुंगवा ये खलु विविधविद्याकलाकलापैरुपकुर्वन्ति जगत्तन्त्रस्य । सर्वथोपेक्षणीया हि लोकाधीश्वरेण प्रजाजनस्य निरुपद्रवाः प्रवृत्तयः ।

प्रधानमन्त्री-चिरं जीवतु लोकोत्तरविक्रमौदार्यमहिम्ना राजमानो राजाधिराजः।

सार्वभौमः-मिथःकलहकलुषितानां भारतीयानां संघटनार्थं विश्वाधिनाथेन सार्वभौमाधिकारपदे नियुक्ता वयं विहाय स्वधर्मनिर्बन्धं तत्सिद्ध्यै सर्वात्मना सततं प्रवृत्ताः ।

प्रधानमन्त्री-अथ किम् । परं त्वत्राऽपि प्रत्यवतिष्ठन्ते मन्दमतयः प्रतापप्रमुखा राजानकाः ।

सार्वभौमः-(विचिन्त्य) मन्त्रिन्, एवमस्मन्नयप्रत्यवायभूतोऽपि
उदात्तगुणसंपदा नयगुणैश्च संधुक्षितः
प्रचण्डसमराङ्गणेऽप्रतिमविक्रमैर्विश्रुतः ।
गतोऽपि रिपुतामयं रविकुलोद्भवः पार्थिव-
स्तदादरपरायणं मम पुनर्विधत्ते मनः ॥६॥

प्रधानमन्त्री-धन्यं हि सार्वभौमस्य गुणपक्षपातित्वम् ।

(प्रविश्य)

गूढचरः-(त्रिः प्रणम्य) विजयतां सार्वभौमः । सार्वभौमचरण-रचिताञ्जलिरावेदयति सेनानायको यत्सार्वभौमप्रभावाभिभूतः प्रतापः देवं सार्वभौमपदेन व्यपदिश्य स्वातन्त्र्यनिर्बन्धमपहाय सार्वभौमस्य शरणमन्विष्यति इति ।

(इति निष्क्रान्तः)

सार्वभौमः-(स्वगतम्) सर्वथाऽश्रद्धेयं सेनापतेर्वचनम् । यतः

उदात्तेति । *** पृथ्वीवृत्तम् ।

न मनाग् विकलव्रतो न वाऽयं
प्रकृतिद्रोहपराहतप्रभावः ।
नयगुणनिपुणो मदावलिप्तः
किमिति भवेच्छरणोन्मुखो ममैवम् ॥७॥

(प्रकाशम्) नूनमद्य सफलतां यातोऽस्माकं मनोरथः । (पृथ्वीराजं प्रति साकूतं सस्मितं च) सामन्तवर्य, संप्रत्यस्मान्सार्वभौमपदेन व्यपदिश्यान्विष्यत्यस्मच्छरणं तव स्वातन्त्र्यैकरसः प्रियवयस्यः ।

पृथ्वीराजः-(साक्षेपम्) सार्वभौम, सर्वथाऽलीकोऽयं गूढप्रणिधेः प्रवादः ।

विषममुपगतोऽप्ययं यदि त्वां
सकृदधिराजमुदाहरेदजय्यः ।
सुरसरिदवशं वहेत्प्रतीपं
तपनकरोऽप्युदियात्तदा प्रतीच्याम् ॥८॥

(सावष्टम्भम्) तदत्रैव सार्वभौमसभायां मया प्रतिज्ञायते यत्सकल-साम्राज्यप्रभावेणापि नैनं सूर्यकुलोद्भवं क्षत्रवीरं कदापि वशीकर्तुं प्रभविष्यति सार्वभौम इति ।

सार्वभौमः-(सस्मितम्) अहो बलवांस्तव सुहृदि पक्षपातः ।

पृथ्वीराजः-नायं मित्रस्य पक्षपातः किंतु परमार्थप्रख्यापनमेव ।

सार्वभौमः-तावत्तव प्रणिधिद्वारा तथ्यमाशु विज्ञायास्मभ्यं निवेदय ।

पृथ्वीराजः-यदाज्ञापयति सार्वभौमः ।

(इति पत्रं लिखति)

सार्वभौमः-कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

प्रतिहारः-आज्ञापयतु देवः ।

न मनागिति - *** औपच्छन्दसिकम् । अत्र कौटल्यः-'आत्मवांस्त्वल्पदेशोऽपि युक्तः प्रकृतिसम्पदा । नयज्ञः पृथिवीं कृत्स्नां जयत्येव न हीयते ।' (अर्थशास्त्र-सं०कंगले. अधि० ६, अ० १.१८)

विषममिति । *** औपच्छन्दसिकम् । संभावनालङ्कारः-तल्लक्षणं 'संभावना यदीत्थं स्यादित्यूहोऽन्यस्य सिद्धये ॥' इति ।

सार्वभौमः-अन्तगृहमार्गमादेशय ।

प्रतिहारः-इत इतो देवः । (उभौ परिक्रामतः) एतदन्तर्गृहद्वारं प्रविशतु देवः।

(इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशत्यन्तर्गृहावस्थिता सपरिवारा महिषी)

महिषी-स्वागतं सार्वभौमस्य ।

सार्वभौमः-(प्रविश्योपविश्य च) अयि सुभगे किमित्यप्रसन्नेव लक्ष्यसे ।

महिषी-(सनिर्वेदं) अद्य श्रुतं मया प्रणिधिमुखेन यन्निजं युवराजं कामयमाना पृथ्वीराजभगिन्यपि यवनसंसर्गदूषितान्वयप्रभवेति प्रत्यादिष्टा खलु वृथावलिप्तेन प्रतापेन। हा कीदृशोऽस्य यवनसंसृष्टकुलेष्वनादरः ।

सार्वभौमः-प्रिये, सर्वत्राभ्यसूयन्ति समुन्नतेभ्यो ज्ञातयः । तत्त्वया

समुन्नतं प्राप्य पदं महौजसा-

मुपेक्षणीयोऽल्पजनापवादः ।

किं चक्रवातेन पयोधरश्रिता

सौदामिनी स्वां लभते तिरस्क्रियाम् ॥९॥

अपिच महाभारतीययुद्धकालमारभ्याद्यावधि परमेश्वरेण समं सृष्टेषु मनुष्यजातेषु परावरबुद्धिभेदोत्पादकेन वर्णाभिमानेन कुलाभिमानेन च मुषिता भारतीयाः परस्परं विगृह्याविरतं स्वजनविध्वंसमेवापादयन्तीति नास्ति कस्याप्यविदितं नाम ।

महिषी-सुप्रसिद्धमेतत् ।

सार्वभौमः-एवं स्वजनेष्वसहिष्णुभिः राष्ट्रद्रुहैः प्रबलैः क्षत्रकुलैः परिमर्दिता भारतीयाः प्रजाः कालेन नामशेषतां भजेरन् इतिकृत्वा समादृतोऽस्माभिर्दिग्विजयक्रमः। विजितानां च क्षत्राधिपानां वृथाऽभिमानमुन्मूलयितुं प्रवर्तितोऽस्माभिर्नानाधर्माणां राजुकलानां मिथ उद्वाहः । एवं विगलितावलेपानां भारतीयवीराणां संघटनेन राष्ट्रं समृद्धं निरुपप्लवं च भविष्यतीति नास्त्यत्र सन्देहलेशस्याप्यवसरः ।

महिषी-तदेतन्नयप्रत्यवायभूतः प्रतापसिंहस्तु भारतीयानां सर्वथाऽहित-मेवाचरति।

समुन्नतमिति - *** उपजातिवृत्तम् । अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः ।

सार्वभौमः-प्रिये सम्यगाकलितस्त्वयाऽस्मदुदारनयप्रचारः । अद्य त्वयाऽनुमोदिता वयममितकोशबलव्ययेनापि तं वशीकर्तु प्रतिजानीमहे ।

महिषी-अथ प्रसीदति ममान्तरात्मा । सर्वतः परास्ताः सन्तु साम्राज्यपरिपन्थिनः ।

सार्वभौमः-(तौर्यत्रिकध्वनिमाकर्ण्य) अहो जातः खलु संध्यास्तवनसमयः। साधयामस्तावत् ।

महिषी-अहमपि शिवाराधनायोपसर्पामि देवगृहम् ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ समाप्तोऽयं **सार्वभौममानावखण्डन**नामा षष्ठोऽङ्कः ॥

प्रतिजानीमह इति । अत्र विमर्शसन्ध्यारम्भः । तदुक्तं दर्पणे-'यत्र मुख्यफलोपाय उद्भिन्नो गर्भतोऽधिकः । शापाद्यैः सान्तरायश्च स विमर्श इति स्मृतः ॥' इति । अत्र मुख्यफलोपायः सार्वभौमप्रतिज्ञया सान्तराय इत्यवधेयम् ।

इति श्रीप्रतापविजयटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां
सार्वभौममानावखण्डननामा षष्ठोऽङ्कः समाप्तः ।

सप्तमोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति शैलशिखरावस्थितः मन्त्रिसहितः प्रतापसिंहः)

प्रतापसिंहः-मन्त्रिन् एवं तुरुष्केण विगृह्यमाणानामस्माकं व्यतीतान्यायासबहुलानि पञ्चषाणि वर्षाणि। तथापि नायं साम्राज्यैश्वर्यमदर्पितो विरमत्युभयतः सैनिकानामविरतोपमर्दात्। तत्

संगृह्य साहसिकवीरभटान् महोग्रान्
व्यापादयामि तरसा किमरातिसंघान्।
किं वा परं व्यसनमद्य रिपोः प्रतीक्षे
दोलायितं मम मनो न हि निश्चिनोति ॥१॥

मन्त्री-देव, नात्र साहसप्रतिपत्तिरुचिता । अचिरादस्मन्नयाऽभिभूतोऽयं स्वयमेव भग्नोद्यमो भविष्यति।

(प्रविश्य)

निषादपतिः-विजयतां देवः। एष दिल्लीनगरतः संप्राप्तः पृथ्वीराजस्यानुचरो वृक्षवाटिकामधितिष्ठति ।

प्रतापसिंहः-शीघ्रं तं प्रदर्शय ।

निषादपतिः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति पृथ्वीराजानुचरेणानुगम्यमानो निषादपतिः)

अनुचरः-(दूरात् प्रतापसिंहं निर्वर्ण्य स्वगतम्) अहो नु खलु स्थान एवैनं

वातालोललतावितानविटपैरावीजयन्ति द्रुमा-
श्छत्रं वारिधराश्च बिभ्रति पुरो गायन्ति केकारवाः।
नित्यं स्वादुफलानि चाच्छसलिलं संपादयन्त्यापगा
राज्यश्रीवियुतोऽप्ययं नृपवरो वन्यश्रिया नन्दितः ॥२॥

संगृह्येति ।- *** वसन्ततिलकावृत्तम् ।

वातेति । *** शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ।

निषादपतिः-एष देवः । उपसर्पत्वेनं भद्रमुखः ।

अनुचरः-(उपसृत्य प्रणम्य च) विजयतां देवः । देवस्य स्वातन्त्र्यनिष्ठायां नितरां विश्रब्धेन मत्स्वामिनाऽनामयप्रश्नपूर्वकं प्रेषितमेतदनुयोगपत्रम् । तत्प्रतिवचनप्रदानेनानुगृह्णातु क्षत्रकुलेश्वरः ।

(इति पत्रमर्पयति)

प्रतापसिंहः-(उद्घाट्य वाचयति)

श्रीमन्मोगलेशसभामण्डपतः स्वातन्त्र्यैकरसं परमप्रेमास्पदं क्षत्रकुलनायकं महाप्रतापं प्रतापसिहं प्रणयाभिनन्दनपुरःसरं प्रणिपत्यावेदयति पृथ्वीराजः-यदचिरेण मेवाडपतिरस्मान् सार्वभौमपदेन व्यपदिश्यास्मच्छरणमन्विष्यतीति सपरिहासं सावलेपं च सार्वभौमेण यदा सामन्तमण्डलसमक्षमभियुक्तं तदा त्वत्पक्षपातिना मया तत्कालमेव

विषममुपगतोऽप्ययं यदि त्वां
सकृदधिराजमुदाहरेदजय्यः ।
सुरसरिदवशं वहेत्प्रतीपं
तपनकरोऽप्युदियात्तदा प्रतीच्याम् ॥३॥

इति सावष्टम्भं प्रत्याख्यातमस्यै तन्मिथ्याऽभिशंसनम् । तदविलम्बेनदिशतु मां क्षात्रधर्मावतारो यद्

अवितथवचनो वहामि गर्वं
किमु परसंसदि वीर गुम्फपाणिः ।

अथवा

अवनतवदनो ह्रियाऽपविद्धः
किमु वपुषि प्रहरामि मे कृपाणम् ॥४॥

इत्येषा त्वल्लोकोत्तरविक्रमानुरक्तस्य सुहृदो विज्ञप्तिः ।

मन्त्री-पृथ्वीराज धन्योऽसि ।

अवितथेति । *** पुष्पिताग्रावृत्तम् ।

प्रतापसिंहः-(सविस्मयम्) अहो नु खलु परिपन्थिमध्यगतेनाऽप्यनेन सहसाऽऽविष्क्रियते मयि पक्षपातः । अयि क्षत्रवीर परमार्थत एव त्वमसि मम द्वितीयं हृदयम् । यतः

तपनान्वयसंभवस्य मे
स्फुटमेवाकलितो रसस्त्वया ।
मकरन्दगुणं मधुव्रतः
सुतरां वेत्ति न वन्यवारणः ॥५॥

मन्त्री-नूनं विरलाः सन्त्येतादृशाः परोक्षेऽपि प्रियंकराः सुहृदुत्तमाः ।

प्रतापसिंहः-अथ किम् । तल्लिख्यतां तावत्प्रतिवचनम् ।

मन्त्री-तथा ।

प्रतापसिंहः-(लेख्यमादिशति)

तुरुष्कसभायामपि निःशङ्कं सूर्यवंशयशःपरिपालनाय भीष्मप्रतिज्ञामारूढं प्रणयिनं सर्वात्मनाऽभिनन्द्य सप्रणयमावेदयति प्रतापो यत्

प्राणान्तेऽप्ययमेकलिङ्गशरणः क्षुद्रं तुरुष्काधिपं
सम्राजं किमुदाहरेत्तपनजः सुप्तः प्रमत्तोऽपि वा ।
गुम्फारूढकरो विडम्बय रिपूंस्त्वं सत्यसन्धोऽधमान्
प्राच्यां नित्यमुदेष्यति प्रमथनो ध्वान्तस्य देवो रविः ॥६॥

मन्त्री-देव लिखितं मया यथादिष्टम् ।

(इत्यर्पयति)

प्रतापसिंहः-(आदाय स्वनाममुद्राङ्कितं विधाय) भद्र, मत्प्रणयाभिनन्दनपुरःसरमर्पयैतदावेदनपत्रं मम हृदयंगमाय सुहृदे ।

अनुचरः-(सप्रश्रयमादाय) यदाज्ञापयति देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

तपनेति । *** वियोगिनीवृत्तम् । अत्र दृष्टान्तपरिसंख्यालङ्कारौ ।

प्राणेति । *** यावज्जीवं अखण्डव्रतो भविष्यति प्रतापसिंहः इति तात्पर्यम् ।

(प्रविश्य)

निषादपतिः-विजयतां देवः । परास्तास्ते परिपन्थिनः कूटप्रयोगपटुभिराटविकगणैः ।

उत्तुङ्गशृङ्गतरुगुल्मघटोपक्लृप्तै
राष्ट्रध्वजैरनुमिते तव संनिधाने ।
दूरादुपेय विजने चकिता भ्रमन्तो
दिक्संभ्रमा विनिहताः शतशो द्विषस्ते ॥७॥

तथापीदानीमुत्तरस्यां पूर्वस्यां च दिशि शैलोपरोधाय समाह्रियन्ते समेधितानि यवनदलानि । तत्समीपतरवर्तिनं शैलाग्रमारुह्य प्रत्यक्षीकरोतु महाराजः ।

प्रतापसिंहः-भद्र, आदेशय तावदारोहमार्गम् ।

निषादपतिः-इत इतो देवः ।

(सर्वे आरोहन्ति)

प्रतापसिंहः-(दूरमवलोक्य) अहो नाद्यापि दुरध्यवसायाद्विरमति तुरुष्काधिपः। भद्र, प्रतिक्षणमेधतेऽवरोधकदलम् । पश्य

आच्छाद्येवोष्णरश्मिं निजघनततिभिर्ध्वान्तमापादयद्भि-
र्हृन्मर्मोद्भेदिनादैः स्तनितपटहजैर्गर्वमाघोषयद्भिः ।
धारासंपातभग्नप्रतिभटविटपिव्याकुलोपत्यकान्तः
संक्रान्तो म्लेच्छसैन्यैर्जलधरनिवहैश्चाद्रिराजः पुरस्तात् ॥८॥

अपिच

तडिच्छतघ्नीस्फुरितप्रकाशिता
अरण्यकुञ्जेषु मतंगजद्विषः ।
नितान्तमालम्बिविलोलजिह्वा
गर्जन्ति कोपोद्धतकेसरा मुहुः ॥९॥

तन्न युक्तमत्र चिरमवस्थानम् ।

आच्छाद्येति । *** स्रग्धरावृत्तम् ।

तडिदिति । *** वंशस्थं वृत्तम् ।

निषादपतिः-अथ किम् ।

प्रतापसिंहः-तत्प्रतीचीनं शैलान्तरं संक्रमामहे । कुमारद्वितीयस्त्वं तावत् शैलाभ्यन्तरे प्रच्छन्नमवरोधमन्यत्र संक्रामय ।

निषादपतिः-तथा । (युवराजं प्रति) इत इतः कुमारः ।

(उभौ परिक्रामतः)

एते संप्राप्ता वयं शैलोपवनम् । (निर्दिश्य) तत्र राजोपकार्यायां सुरक्षितो निवसत्यवरोधजनः । तत्प्रविशतु कुमारः । अहं तावन्निभृतं स्थलान्तरमन्वेष्टुं पर्यटामि।

(इति निष्क्रान्तः)

कुमारः-(दूरं विलोक्य) का नु खल्वेषाऽस्वस्थशरीरा पर्यङ्कमधिशयाना सखीभिरुपचर्यते। (उपसृत्य) हा कष्टं निर्घृणेन मया दुरवस्थामापादितेयं सा राजकन्यका। (कर्णं दत्त्वा) अहो प्रियसख्या सा किमपि संलपन्तीव श्रूयते । यावद्वृक्षान्तरितो जानाम्यस्या मनोगतम् ।

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा राजपुत्री)

सहचरी-अयि, अविमृश्यकारिणामपरिहार्य ईदृशो दैवदुर्विपाकः । यतः

परानुवृत्ते प्रणयोन्मुखेऽपि या
मुग्धाङ्गनाविष्कुरुतेऽनुरागम् ।
समीरणानर्तितमेघवञ्चिता
सा चातकीवाशु शुचाऽवसीदति ॥१०॥

राजपुत्री-(निःश्वस्य) हला, अनभिज्ञासि खलु मदनविकाराणाम् । कुसुमसायकस्यैवेदमपराद्धं नाम यदनेनानुचितप्रार्थनाप्रवणानि क्रियन्ते मुग्धजनानां मनांसि।

स्वच्छन्दचारां मृदुकेलिनन्दितां
मुग्धां मनोभूः कुरुतेऽन्यसंश्रयाम् ।

अविमृश्यकारिणामिति । इत आरभ्य विप्रलम्भशृङ्गारो रसः ।

परानुवृत्त इति । *** उपजातिवृत्तम् । उपमालङ्कारः ।

स्वच्छन्देति । *** इन्द्रवंशावृत्तम् ।

विज्ञाततत्त्वा गुरवोऽपि मानिनो
निर्बन्धतो नैव चलन्ति निर्घृणाः ॥११॥

(इत्यश्रूणि मुञ्चति)

युवराजः-(निःश्वस्य स्वगतम्) हा तथ्यमेवाभिहितं कृशाङ्ग्या ।

सहचरी-सखि समाहिता भव ।

राजपुत्री-नूनमसमसायकस्यैवेदमपराद्धं नाम यदनेनानुचितप्रार्थनाप्रवणानि क्रियन्ते मुग्धजनानां मनांसि । (विचिन्त्य) अथवा नोचितस्तस्याप्युपालम्भः । स्मराभिरामेऽस्मिंस्तपनकुलललामे सानुरागं मनो विदधताऽनेन किमयुक्तमाचरितम्। अत्र त्वभिशंसनीयोऽस्ति केवलं मायावी मोगलेशो येनाभिजातान्यपि क्षत्रकुलानीदृशीं दुरवस्थामापादितानि। (पुनर्विचिन्त्य) अथवा हा ममैव मन्दभाग्यादहमवद्ये क्षत्रकुले प्रसूता येनानुरागवतोऽपि युवराजस्यापरिग्राह्या संवृत्ता ।

(इति निःश्वसिति)

युवराजः-(स्वगतम्) अहो अलोकसाधारणो मय्यनुराग आविष्क्रियतेऽनयाऽऽत्माधिक्षेपेण ।

सखी-अयि किमेवं मिथ्याविकल्पनै रुजाक्रान्तमात्मानं संतापयसि। दैवाधीना हि प्राणिनां संयोगविप्रयोगाः। न कस्यचिद्भवन्ति सर्वेऽपि मनोऽनुकूला जगद्व्यतिकराः। तदसुलभप्रार्थनाप्रवणं मनः समाधाय क्षणं तावद्विनोदय वेदनोपद्रुतमात्मानम् ।

(इति वीणामर्पयति)

राजपुत्री-स्निग्धे, ईदृशीमवस्थामापन्नायाः कुतो मम विनोदः। तथापि शृणु मे चरमामभ्यर्थनाम् ।

(इति पर्यङ्क उपविश्य वीणामादाय साश्रु गायति)

(सोहिनीरागेण त्रितालेन गीयते ।)

अयि सखि मा कुरु मयि परिहासम् ।
सपदि तमानय नयनविलासम् ॥ ध्रुवपदम् ॥
तन्मुखपङ्कजलोकनलोलम् ।
किमयि न पश्यसि लोचनदोलम् ॥ अयि० ॥ १॥

प्रत्यादेशपरुषमयि दयितम् ।
कामयते मुषितहृदयमयि तम् ॥ अयि० ॥२॥
कथमपि कुरु सखि सत्वररचनम् ।
श्रावय चरमं तन्मृदुवचनम् ॥ अयि० ॥३॥
द्रुतमुपयाहि प्रियतमसदनम् ।
निपतति मयि सखि निर्घृणनिधनम् ॥ अयि० ॥४॥

(इति मूर्च्छति)

सखी-(वीणामादाय) सखि समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

(इति वीजयति)

युवराजः-(सोद्वेगं स्वगतम्) अहो बत महत्कष्टम् । एवमतिभूमिं गतोऽस्या अनुरागो मया कथं विनिवार्यः । संप्रति खलु ममैतद्

नृपसुताप्रणयेन वशीकृतं
गुरुजनैःप्रसभं विनिवारितम् ।
कुलयशःपरिपालननिष्ठुरं
व्रजति विक्लवतां स्तिमितं मनः ॥१२॥

तथापि सत्वरमुपसृत्य सान्त्वयाम्येनां प्रणयभङ्गविभिन्नहृदयां राजतनयाम् ।

राजपुत्री-(संज्ञां लब्ध्वा) हा प्रियतम क्व नु खलु विहरसि ।

युवराजः-(सहसोपसृत्य) एष सापराधस्ते जनस्त्वयाऽनुकम्पनीयः ।

राजपुत्री-(सहर्षं साश्रु) युवराजस्याकाण्डदर्शनेनाद्य खलु कृतार्थतां गमितेयं हतभागिनी ।

(इत्युत्थातुं प्रयतते)

युवराजः-कृशाङ्गि अलमलमायासेन । (हस्तेन मणिबन्धं स्पृष्ट्वा स्वगतम्) हा मन्दतां गतोऽस्या रक्ताभिष्यन्दः ।

(इत्यश्रूणि प्रमार्ष्टि)

राजपुत्री-(स्वगतम्) अहो मे सौभाग्यम् । प्रियतमकरतलस्पर्शेन

नृपसुतेति । *** द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ।

नूनमाप्यायितास्मि ।

युवराजः-अयि राजपुत्रि, अल्पीयसा कालेनैव प्रशममेष्यति तवोपतापः । नास्ति किमपि भिषजामसाध्यं नाम । तद्धैर्यमवष्टभ्य रक्ष तावन्निर्विण्णमात्मानम् ।

राजपुत्री-(दीर्घं निःश्वस्य) तपनकुलमणे मम पुनरन्यथा प्रत्ययः । तदेष ते चरमः प्रणामः । इदानीमेतदेवाभ्यर्थयते प्रणयभङ्गापहतहृदयैषा मन्दभागिनी यद्

यवनसंश्रयहीनकुलोद्भवा
त्वयि रता विजहाति कलेवरम् ।
हृदयनाथ तवास्तु समागमः
प्रणयबन्धजितो जयनान्तरे ॥१३॥

युवराजः-अयि सुन्दरि, कामापहृतमतिना युवराजेन कलङ्कितं लोकत्रयविश्रुतं रविकुलमिति माऽभून्मे दारुणः परीवाद इत्यनिच्छताऽपि मया प्रत्यादिष्टासि । तत्कृपया क्षमस्व मम नैष्ठुर्यातिरेकम् ।

अयि सुव्रते

शुचिवृत्तगुणौघसंपदा
शुचिवंशे स्थिरभावबन्धनात् ।
समुपार्जित एव शाश्वतः
पतिलोकस्य जयस्त्वयाऽनघे ॥१४॥

(प्रविश्य)

कञ्चुकी-विजयतां युवराजः । युवराजं द्रष्टुकामो निषादपतिरितो नातिदूरे वर्तते ।

युवराजः-राजपुत्रि रक्षतु त्वां रविकुलाधिष्ठातृदेव एकलिङ्गेश्वरः ।

राजपुत्री-पुनरप्यनुकम्पनीयेयं प्रणयिनी धर्मवीरेण ।

युवराजः-तथा ।

कञ्चुकी-इत इतो युवराजः ।

(उभौ परिक्रामतः)

यवनेति । *** द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ।

शुचिवृत्तेति । *** वियोगिनीवृत्तम् ।

एष युवराजं परिपालयति निषादपतिः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

निषादपतिः-विजयतां युवराजः । निर्धारितो हि मयाऽन्यो निगूढः शैलाभ्यन्तरप्रदेशः । तदवलोकनार्थं तावत् प्रतिष्ठावहे ।

युवराजः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तौ)

॥ समाप्तोऽयं **मृषावादपरिहार**नामा सप्तमोऽङ्कः ॥

इति श्रीप्रतापविजयटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां
मृषावादपरिहारनामा सप्तमोऽङ्कः समाप्तः ।

अष्टमोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति निगूढशैलाभ्यन्तरप्रदेशनिवेशितराजोपकार्यावस्थितो महिषीद्वितीयः प्रतापसिंहः)

प्रतापसिंहः-देवि, क्षमस्व मम व्रतनिर्बन्धम् ।

शुद्धान्तनर्मजनितश्रमखिन्नगात्री
याऽसेवतान्तिकगतां मृदुपुष्पशय्याम् ।
सा त्वं मयाऽभिनवपल्लवकोमलाङ्गी
संतापिताऽसि सुतनु व्रतनिष्ठुरेण ॥१॥

महिषी-आर्यपुत्र, कोऽयं व्यामोहः ।

त्वामेकवीरं पतिमात्मतुल्यं
प्रपद्य जाता सफला जनिर्मे ।
न बाधते मां विपिनाधिवासो
यथा परायत्तपरिग्रहत्वम् ॥२॥

अपिच

प्रासादे परिवारमण्डलयुतेऽरण्येऽथवा निर्जने
युद्धे प्रस्फुरितास्त्रपातविकटे लीलोत्सवे वा नवे ।
धत्ते मे समतां मतिः प्रिय यदा त्वत्पार्श्ववर्तिन्यहं
नेत्रस्यन्दिसुधाप्लुता च नितरां मन्ये प्रमोदं परम् ॥३॥

प्रतापसिंहः-(स्वगतम्) नूनं धन्योऽस्मि । (दूरं विलोक्य प्रकाशम्) देवि पश्यैष कुमारः क्रीडनकान्यादाय पुनरित एवोपधावति ।

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः कुमारः)

कुमारः-हता इमे मातङ्गाः केसरिकिशोरेण ।

(इति भग्नक्रीडनकानि दर्शयति)

शुद्धान्तेति । *** वसन्ततिलकावृत्तम् ।

त्वामिति । *** उपजातिवृत्तम् ।

प्रासाद इति । *** शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

महिषी–(सस्मितम्) केसरिणः किशोर इव त्वमपि हनिष्यसि रिपुमातङ्गान् ।

कुमारः–केऽस्मद्रिपवः ।

महिषी–ये खलूपद्रवकरास्ते सर्वेऽप्यस्मद्रिपवः क्षत्रिया वा यवना वा ।

कुमारः–कीदृशमुपद्रवं कुर्वन्ति ते ।

महिषी–तेऽस्मान् वशीकर्तुं प्रयतन्ते ।

कुमारः–(सरोषं स्वगतं) आः पापाः । (प्रकाशं) अपि तातः कथं तान् न हिनस्ति ।

प्रतापसिंहः–(सनिर्वेदं स्वगतम्) वत्सः खलु सत्यं ब्रवीति ।

महिषी–(सस्मितं प्रतापसिहं विलोक्य) तानुन्मूलयितुमेवोद्युङ्क्ते ।

प्रतापसिंहः–सद्यो विनंक्ष्यन्त्यस्मद्रिपवः ।

कुमारः–(परितो विलोक्य) अम्ब, किमत्रालेखितं दृश्यते ।

महिषी–एष कुंभलगडदुर्गप्रासादः ।

कुमारः–रमणीयः खल्वयम् । तत्रैव गन्तुमिच्छामि ।

प्रतापसिंहः–(सनिर्वेदं स्वगतम्) अद्यापि नूनं व्यथयति मेऽन्तरात्मानं तद्दुर्गापसारः।

महिषी–अचिरेण वयं तत्र यास्यामः ।

कुमारः–(साक्रोशम्) मा मैवम् । अतः परं न रोचते मे शैलाधिवासः । अद्यैव तत्र साधयामः ।

महिषी–वत्स मा रोदीः ।

(इत्याश्लिष्य चुम्बति)

प्रतापसिंहः–(सनिर्वेदम्) सूर्यवंशप्रभवैरपि किमेवमवलोकनीया म्लाना मुखच्छविः कुमारस्य ।

(प्रविश्य)

धात्री–एहि वत्स, अद्य त्वां दुर्गप्रासादं नयामि ।

(इति कुमारेण सह निष्क्रान्ता)

प्रतापसिंहः–(सनिर्वेदम्) अहो दुर्दैवविचेष्टितम् ।

आज्ञामन्वीक्षमाणाः क्षणमपि न पुरा मां विहातुं समर्थाः
प्राणानुत्सृज्य वीरा रिपुदलदलिताः शेरते ते पुरस्तात् ।
आकर्ण्यार्तिं शिशूनां रुदितमविरतं राजभोगच्च्युतानां
मर्मच्छेदिप्रहाराहतमतिविभवः कं प्रतीकारमीहे ॥४॥

(सरोषम्) अथवाऽद्यैवावशिष्टै रणप्रवीरैः सह तरसाऽभिपत्य व्यापादयाम्यरातिनिवहान् ।

महिषी-प्रसीदत्वार्यपुत्रः । नात्र साहसप्रतिपत्तिरुचिता । तद्धैर्यमवलम्ब्य प्रतिपालयत्वार्यपुत्रोऽनुकूलमवसरम् । धैर्यमूला हि सर्वाः संपदः ।

(नेपथ्ये)

वैतालिकौ-विजयतां महाप्रतापो महाराजाधिराजः ।

श्रमापनोदार्थमिवास्तशैलं
समेत्य तत्संभृतनूत्नसारः ।
अनन्यसाधारणवीर्यदीप्तो
ज्वलत्ययं ध्वान्तहरः प्रतापः ॥५॥

प्रतापसिंहः-(आकर्ण्य) देवि, नूनं प्रतापस्य नयस्य चानुगुणमेव तव मन्त्रितम्। कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

कञ्चुकी-आज्ञापयतु देवः ।

प्रतापसिंहः-शैलारोहमार्गमादेशय ।

कञ्चुकी-इत इतो देव । एषोऽत्रोत्तुङ्गशिखरावस्थितो मन्त्रिवर्गः स्वामिनमेव प्रतिपालयति ।

(ततः प्रविशन्ति यथानिर्दिष्टा मन्त्रिणः)

मन्त्रिणः-(अभ्युत्थाय) स्वागतं देवस्य ।

प्रतापसिंहः-अप्युपलब्धा काचिदभिनवा प्रवृत्तिररातिसैन्यस्य ।

प्रधानमन्त्री-देव श्रुतं मया चारेभ्यो यत्संप्रति परावर्तनप्रवणानि वर्तन्ते

श्रमेति । *** अत्रोत्प्रेक्षा समासोक्तिश्च । उपजातिवृत्तम् ।

प्रावृट्परिबाधितानि प्रत्यर्थिसैन्यानि ।

(प्रविश्य)

निषादपतिः-वर्धतां महाराजोऽभिमतार्थसिद्धिसौभाग्येन। अन्यत्र युद्धप्रवृत्तेन तुरुष्काधिपेन प्रत्याहृतानि परिक्षीणान्यवरोधकबलानि । प्रतिस्थानमवस्थापिताश्च स्थानिकाधिष्ठिताः कतिचन सैनिकाः स्वशासनप्रवर्तनाय। तच्छैलोच्छ्रयात्तरसावतीर्य पुनरपि मेवाडमेदिनीमात्मसात्कर्तुमर्हति महाराजाधिराजः।

प्रतापसिंहः-(सहर्षं) दिष्ट्याद्य खलु चरितार्थतां गतोऽस्माकं नयप्रचारः ।

मन्त्री-एकलिङ्गेशानुग्रहशालिनो देवस्य सर्वदाऽप्रतिहतैव साध्यसिद्धिः । यतः

अर्थार्थिनामभिमतार्थफलप्रसिद्ध्यै
निष्ठालवोऽप्यलमनुग्रहविग्रहेशे।
येऽनन्तधाम्नि परमात्मनि लीनभावा-
स्तेषामभीष्टमधमैः प्रतिषिध्यते किम् ॥६॥

(प्रविश्य)

वनेचरः-(सविस्मयम्) आश्चर्यमाश्चर्यम् ।

यदृच्छोपगतो वन्यो वारणः शुण्डादण्डेन राष्ट्रध्वजोपरि संनिहितसरस उद्धृत्य विकिरति प्रफुल्लसरोरुहाणि ।

निषादपतिः-हन्त परं संनिहितं देवस्य विजयमङ्गलम् ।

मन्त्री-देव प्रत्यासन्नो हि युगपदभियोगानुकूलः शरदागमः । भविष्यन्ति तदानीं खलु-

संचारार्हास्तपनतपिताः कर्दमक्लिन्नमार्गा
अल्पाम्भोभिर्विपुलपुलिना निम्नगाः स्वच्छतोयाः।
स्फारज्योत्स्नाविभवललिता दीर्घयामास्त्रियामा
नानावृक्षच्छदतृणमया शस्यपूर्णा धरित्री ॥७॥

वर्धतां महाराज इति। अत्र निर्वहणसन्ध्यारम्भः। तदुक्तं दर्पणे- 'बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्। एकार्थमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत् ॥' इति।

यदृच्छोपगत इति। अत्र अद्भुतो रसः। तदुक्तं दर्पणे-'कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम्'। इति।

तत्सत्वरं बलोपचये एवाधीयतां यत्नः ।

प्रतापसिंहः-अथ किम् । कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

रक्षपालः-आज्ञापयतु देवः ।

प्रतापसिंहः-सेनापतिं द्रष्टुमिच्छामि ।

रक्षपालः-यदाज्ञापयति देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

कञ्चुकी-वर्धतां देवः पौत्रजन्ममहोत्सवेन ।

प्रतापसिंहः-(सप्रमोदं) महानेषोऽनुग्रहः एकलिङ्गेश्वरस्य ।

सर्वे-(सहर्षं) चिरं जीवतु अभिनवस्तपनान्वयाङ्कुरः ।

प्रतापसिंहः-भद्रमुख गृहाणेदं तव पारितोषिकम् ।

(इति मुक्ताहारमपर्यति)

कञ्चुकी-(सप्रश्रयमादाय) सहस्रांशुरिव शश्वत्तपतु तपनान्वयप्रतापः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

सेनापतिः-आज्ञापयतु देवः ।

प्रतापसिंहः-वीर, संनह्यन्तामस्मत्संनिहितानि पदातिदलानि ।

सेनापतिः-यदादिशति देवः ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

प्रतिहारः-विजयतां देवः । अमात्यो द्वारि तिष्ठति ।

प्रतापसिंहः-शीघ्रं प्रवेशय ।

प्रतिहारः-तथा ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

अमात्यः-वर्धतां देवो नयाभियोगसंपदा । चारेभ्यः शैलावरोधकगणानां व्यूहभङ्गं विज्ञाय प्रेषितं मया सादिदलं कुंभलगडदुर्गाक्रमणाय ।

प्रतापसिंहः-वीर परं प्रीणयति मां तव यथावसरं शीघ्रकारित्वम् ।

अमात्य-देव राजकार्येषु नास्ति समयच्युतिरिवान्यदनर्थकारणम् । एकलिंङ्गेशानुग्रहेण समुपनतोऽयमवसरो नास्माभिरुपेक्षणीयः ।

मन्त्री-सद्यस्तावत् समन्ततो युगपत्तुरुष्कानाक्रम्य पुनरपि स्वायत्तीकर्तव्यः समप्रदेशः ।

प्रतापसिंहः-प्रतिपद्येऽहं मन्त्रनिर्णयम् । अचलराजनिष्ठयोज्ज्वलितानां सामन्तमन्त्रिसचिवानां साहाय्येनैव साम्राज्यैश्वर्यमदोत्सिक्तस्य तुरुष्कस्य दर्पं शमयितुं प्रभवत्ययं प्रतापः ।

मन्त्री-देव स्वातन्त्र्यावतारं त्वादृशमीश्वरं प्राप्य धन्यतां यातेयं मेवाडमेदिनी।

अमात्यः-तथ्यमाह मन्त्रिप्रवरः । यतः

ईद्धः क्षात्रबलौजसा निजसुखे वीतस्पृहो योऽनिशं
धर्मस्थः परिपालयत्यभिनवस्नेहेन सर्वाः प्रजाः ।
लोकोपद्रवकारिणां प्रमथने जागर्ति यो दुष्कृतां
राज्ञस्तस्य विधीयते जनिशतैर्नैव क्वचिन्निष्कृतिः ।।८।।

प्रतापसिंहः-(शृङ्गस्वनमाकर्ण्य) अहो समाहूतानीव लक्ष्यन्ते पदातिदलानि।

(प्रविश्य)

प्रतिहारः-विजयतां देवः । पुरोवर्तिसमप्रदेशे व्यवस्थितान् पदातिनिवहान् प्रत्यक्षीकरोतु सपरिवारो देवः ।

प्रतापसिंहः-आदेशय तावदवरोहमार्गम् ।

प्रतिहारः-इत इतो देवः । (सर्वे परिक्रामन्ति) देव, एतेऽस्मत्सेनानिवहाः।

(इति निर्दिश्य निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति गणाध्यक्षैः सह सेनापतिः)

सेनापतिः-स्वागतं देवस्य आर्यमिश्राणां च ।

प्रतापसिंहः-सद्यः प्रयाणाभिमुखा भवन्तु मम रणप्रवीराः ।

सुतीक्ष्णभल्लासिधनुर्भृतांवरा
विशालतूणीपरिणद्धपार्श्वाः ।
शौर्यातिरेकारुणितोग्रनेत्राः
प्रयान्तु मे नद्धपदातिसंघाः ॥९॥

सेनापतिः-यदादिशति देवः ।

(इति शृङ्गस्वनेन प्रयाणमादिश्य गणाध्यक्षैः सह निष्क्रान्तः)

प्रतापसिंहः-सामन्तप्रवराः नायं कालक्षेपावसरः । तद्

वेगेनाभिपतन्त्वरातिनिवहे व्यूढाः प्रवीरा भटा
आवस्कन्दतु चाश्ववाहकदलं दुर्गान् पराधिष्ठितान् ।
वृक्षच्छन्नवनेचरास्त्ववहिता रुन्धन्तु सीमाधिपान्
सद्यो रोपयितुं प्रतापमुदितः कालो द्विषामन्तकः ॥१०॥

तत् सत्वरं स्वसैन्यगणैः सह प्रतिदिशं प्रतिष्ठन्तां मम सामन्तवीराः ।

सामन्ताः-यदादिशति देवः ।

(इति निष्क्रान्ताः)

प्रतापसिंहः-मन्त्रिवर्य, निर्वृत्तस्तावत्प्रयाणप्रबन्धः । यावद्वयमपि स्वयमुदयपुरमाक्रमामहे ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ समाप्तोऽयं **विजयप्रयाणो** नाम अष्टोमऽङ्कः ॥

इति श्रीप्रतापविजयटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां
विजयप्रयाणनामा अष्टमोऽङ्कः समाप्तः ।

नवमोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशतः सेनानायकौ)

प्रथमः-दिष्ट्या सुप्रभातमद्य स्वातन्त्र्यश्रिया समुल्लसितस्यैकलिङ्गेशाधिष्ठितस्य मेवाडजनपदस्य ।

द्वितीयः-अथ किम् । अहो वर्षाभ्यन्तरेणैव यवनयूथानि विद्राव्य शैलान्तः परिपालिताभिः प्रजाभिः पुनरप्यावासितेयं वीरजननी मेवाडमेदिनी मेवाडकेसरिणा महाप्रतापेन देवेन ।

प्रथमः-एवं पुनरपि स्वातन्त्र्यावतारेण देवेन समन्ततो विस्तारिता त्रिलोक्यां विश्रुता सूर्यवंशस्य यशःश्रीः ।

द्वितीयः-भद्र पश्यैतान् देवस्य विजयमहोत्सवमभिनन्दितुं समुत्सुकान् पौरजानपदान् । एतैरलङ्कृतेयं राजधानी परमां सुषमामावहति ।

ध्वजसरसिजमालामण्डिता राजमार्गा
मरकतमणिलेखारञ्जिताः कुट्टिमाश्च ।
नवविरचितरागालेख्यचित्रास्तराणि
दधति परमशोभां वासितान्यङ्गनानि ॥१॥

(इति परिक्रामतः)

प्रथमः-(परितो विलोक्य) अदृष्टपूर्वोऽयं खलु विजयमहोत्सवसमारम्भः । यतः

मुक्ताविद्रुमतोरणाञ्चितपुरोद्वाराणि तूर्यस्वनै-
श्शीत्कारैः करिणां मृदङ्गनिनदैरातन्वते मङ्गलम् ।
काञ्चीनूपुरकिङ्किणीक्वणितकै रम्यैर्यशोगीतिकां
गायन्ति प्रमदा महोत्सवमुदा मोदप्रफुल्लाननाः ॥२॥

एवं पुनरपीति । उदयसिंहेन कलङ्किता सूर्यवंशकीर्तिः प्रतापसिंहेन पुनरपि विस्तारितेत्यनुसन्धेयम्।

ध्वजेति । *** मालिनीवृत्तम् ।

मुक्तेति । *** शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

द्वितीयः-(दूरं विलोक्य) एष सूर्यकुलाधिदैवतमेकलिङ्गेश्वरमाराध्य प्रत्यागतो देवः सभामण्डपमभ्युपैति ।

चण्डांशुप्रखरातपारुणरुचिर्दूरात्परांस्तापय-
न्नासीद्यस्तपनद्युतिः परिपतन् शृङ्गान्तरं शृङ्गतः ।
ज्योत्स्नासंमतमानदानपरमः पीयूषरत्नाकरः
सोऽयं चान्द्रमसीं दधाति सुषमामाह्लादयन्स्वाः प्रजाः ॥३॥

यावद्वयं सभामण्डपं प्रविश्यासनपरिग्रहं कुर्मः ।

(इति निष्कान्तौ)

विष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः प्रतापसिंहः)

सभ्याः-(अभ्युत्थाय) विजयतां महाराजाधिराजः ।

(इति स्वर्णकुसुमानि विकिरन्ति)

प्रतापसिंहः-(छत्रचामरवरैरुपसेवितो रत्नसिंहासनमारुह्य) प्रियसामन्ताः दिष्ट्या एकलिङ्गेशानुग्रहेणानुभूयतेऽस्माभिरिदानीमयं मङ्गलावसरः ।

(ततः सामन्तमन्त्रिपौरजानपदमुख्या मणिमुक्तास्वर्णकुसुमस्रजः अर्पयन्ति)

(नेपथ्ये)

वैतालिकौ-विजयतां महाराजाधिराजः ।

अचलविपिनवासे नागराजोपजुष्टः
पुनरपि पतितन्त्रां प्रेयसीं राजलक्ष्मीम् ।
निषधपतिरिव त्वं भीमकन्यामवाप्य
प्रतिहतपरचक्रो राजसे राजसिंहः ॥४॥

(अष्टोत्तरशतशतघ्नीस्वनोपक्रमः)

चण्डेति । *** अत्र निदर्शनालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

अचलेति । *** नागराजेन निषादपतिना पक्षे कर्कोटकेन उपजुष्टः सेवितः, निषधपतिः नलः भीमकन्यां दमयन्तीं इव पुनरपि पतितन्त्रां प्रेयसीं राजलक्ष्मीं *** । अत्र उपमालङ्कारः । मालिनीवृत्तम् ।

वीणिनौ-(वीणावाद्येन गायतः)

(भैरवीरागेण त्रितालेन गीयते)

महाव्रत भारतराजपते
मुदा तव जनता वन्दते ॥ ॥ध्रुवपदम्॥
स्वातन्त्र्यसुधासकलसुधाकर-
रञ्जितराजमते । महाव्रत० ॥१॥
नयगुणविक्रमविदलितरिपुदल-
वञ्चितपरविजिते । महाव्रत० ॥२॥
पुरजनपदजनमनोऽनुरञ्जन-
सञ्चितलोकरते । महाव्रत० ॥३॥
दिव्ययशोध्वनिनन्दितसुरवर-
किन्नरगानानुते । महाव्रत० ॥४॥
जीव चिरं दिनकरकुलमण्डन
भारतधर्मपते । महाव्रत० ॥५॥

प्रधानमन्त्री-देवस्य प्रियवयस्यः पृथ्वीराजो दिल्लीनगरतः प्रेषयतीदं तुरुष्कमुद्राङ्कितं संधिपत्रम् ।

प्रतापसिंहः-तावदुद्घाट्य वाचय ।

प्रधानमन्त्री-तथा ।

(इति वाचयति)

श्रीमन्मोगलेशराजधानीतः स्वातन्त्र्यविक्रमोर्जितं सूर्यकुलावतंसं परमप्रेमभाजनममोघव्रतं महाराजं प्रतापसिंहं प्रणयाभिनन्दनपुरःसरं प्रणिपत्यावेदयति पृथ्वीराजः-यदुभयतोऽमितकोशबलक्षयं परिजिहीर्षुः सार्वभौमः

तुष्टस्तवाप्रतिहतामितविक्रमेण
सम्राट् स्वयं दिशति यन्नृपतिः प्रतापः ।
प्रौढप्रतापपरिवर्धितवंशकीर्तिः
कामं प्रशास्तु निरुपद्रवमात्मचक्रम् ॥५॥

इति ।

प्रतापसिंहः-दिष्ट्याद्य खलूद्धृतकणिका जाता मेवाडजननी ।

प्रधानमन्त्री-स्वातन्त्र्यावतारस्य देवस्यैष लोकोत्तरः प्रभावः ।

प्रतापसिंहः-यत्सत्यं प्रकृत्यनुरागायत्ता हि राष्ट्रसंपदः । तत्प्रियसामन्तवर्याणां पौरजानपदाटविकानां चाप्रतिमराजनिष्ठया प्रोत्साहितः तैरेव सानुरागं मेवाडराज्येऽभिषिक्तः प्रभवत्ययं प्रतापो मेवाडस्वातन्त्र्यं परिरक्षितुम् ।

प्रधानमन्त्री-दिष्ट्या महाप्रतापमीश्वरमुपाश्रित्याद्य कृतकृत्यतां प्राप्तेयं वीरजननी मेवाडभूः ।

प्रतापसिंहः-नूनमलोकसाधारणो हि मेवाडवीराणां राष्ट्रभक्तिविभवः । अतः

हुत्वा देहं निजं ये समरहुतवहे प्रस्थिताः पुण्यलोकां-
स्तेषां वीरोत्तमानां समुदितयशसामन्वये ये प्रसूताः ।
मत्युत्कर्षप्रतापप्रमथितरिपवो ये पुनर्नीतिदक्षाः
सर्वे ते राष्ट्रभक्ता नृपकुलविभवैर्माननीया यथार्हम् ॥६॥

प्रधानमन्त्री-तथा ।

(इति यथार्हं राजशासनानि वितरति)

प्रतापसिंहः-मन्त्रिन् सभाजय विदुषो विप्रवर्यान् कवीश्वरांश्च महार्हरत्नप्रदानेन नियतवार्षिकवृत्तिवितरणेन च । यतस्तदधीन एव राष्ट्रे सद्विद्याप्रचारो राष्ट्यशोविभवश्च।

प्रधानमन्त्री-तथा ।

(इति यथार्हं महार्हरत्नानि राजशासनानि च वितरति)

कवीश्वरः-चिरं जीवतु स्वातन्त्र्यमूर्तिस्तपनान्वयमुक्तामणिर्महाप्रतापो महाराजाधिराजः । एष महाराजाधिराजमभिनन्द्याशास्ते विद्वज्जनो यत्

प्रबलकुटिलविद्विषां विभेत्ता
प्रतिदिनमेष तवैधतां प्रतापः ।
त्रिदिववितकीर्तिरन्वयस्ते
प्रतपतु शश्वदमोघवीर्यदीप्तः ॥७॥

प्रतापसिंहः-(सप्रश्रयम् सस्मितम्) कविवर, प्रतिगृहीताशीः । अथ भूषणवसनान्नपानादिभिः सत्कृत्यानुरञ्जयतु मम पौरजानपदाटविकसंघान् सचिववर्गः।

सचिवाः-तथा ।

(इति निष्क्रान्ताः)

(प्रविश्य)

प्रतिहारः-विजयतां देवः । दिष्ट्याद्य देवस्य विजयमहोत्सवमभिनन्दितुं संप्राप्ता महर्षयः ।

प्रतापसिंहः-अविलम्बेन प्रवेशय ।

प्रतिहारः-तथा ।

(ततः प्रविशन्ति महर्षयः)

प्रतापसिंहः-(सर्वैः सहाभ्युत्थाय) भगवतो महानुभावानभिवादयत एष प्रतापः।

(इति प्रमप्रति)

महर्षयः-वत्स चिरं जीव । विष्णोरंशेनावतीर्णस्य तपनान्वयोद्वहस्य तव दर्शनार्थं वयमत्र समागताः ।

प्रतापसिंहः-महानेषोऽनुग्रहो भगवतां महानुभावानाम् ।

महर्षयः-वत्स, प्रसन्नाः स्मस्तव कुलाधिदेवनिष्ठया क्षात्रधर्मानुरागेण च । तत्किं ते भद्र करवाम ।

प्रतापसिंहः-भगवन्तः, एकलिङ्गेशानुग्रहेण संप्रति जातोऽस्म्यहं सकलश्रेयसां

भाजनम् । तथापीदमस्तु भरतवाक्यम् ।

आम्नायार्थप्रसितमतयो ब्राह्मणाः सिद्धमन्त्राः
संपद्यन्तां नरपतिगणाः क्षात्रतेजःसमिद्धाः ।
वैश्याः सर्वे नवनिधियुताः कारवः कारुदीप्ताः
स्वातन्त्र्यश्रीर्विलसतुतरां विश्वतो भारतेऽस्मिन् ॥८॥

॥ समाप्तोऽयं **विजयमहोत्सवो** नाम नवमोऽङ्कः ॥

॥ समाप्तमिदं प्रतापविजयं नाम नाटकम् ॥

आम्नायेति । -आम्नायस्य वेदस्य अर्थे प्रतिपाद्ये विषये प्रसिता आसक्ता मतिः येषां ते सिद्धाः इष्टसाधनसमर्थाः मन्त्राः वेदमन्त्राः नयागमप्रतिपाद्याश्च येषां ते तादृशाः ब्राह्मणाः संपद्यन्ताम् । नरपतिगणाः राजानः क्षत्रस्येदं क्षात्रं च तत् तेजः तेन समिद्धाः दीप्ताः संपद्यन्ताम् । सर्वे वैश्याः नवभिः महापद्मादिभिः युताः युक्ताः संपद्यन्ताम् । कारवः शिल्पिनः कारुभिः विविधशिल्पैः दीप्ताः समृद्धाः संपद्यन्ताम् । अस्मिन् भारतवर्षे विश्वतः सर्वतः स्वातन्त्र्यश्रीः स्वातन्त्र्यलक्ष्मीः विलसतुतरां अतिशयेन विलसतु ।

इति श्रीप्रतापविजयटीकायां सर्वाङ्गविद्योतन्यां
विजयमहोत्सवनामा नवमोऽङ्कः समाप्तः ।

पद्यसूची

पद्यसूची

पद्यानां छन्दःसूची

अनुष्टुप् -	५/१२, ६/४
उपजाति -	१/७, १/८, १/१०, १/१६, १/१७, १/१९, १/२१, १/२७, १/२८, २/२, २/५, २/६, २/७, २/८, २/१३, ३/२, ३/३, ३/५, ३/६, ३/७, ३/८, ४/२, ४/३, ४/४, ४/८, ४/१०, ४/१३, ४/१४, ४/१८, ४/१९, ५/१, ५/६, ५/७, ५/८, ५/११, ५/१३, ५/१४, ६/२, ६/३, ६/५, ६/९, ७/९, ७/१०, ७/११, ८/२, ८/५, ८/९,
औपच्छन्दसिक -	६/७, ६/८,
गीति -	१/२, ५/५
द्रुतविलम्बित -	१/१८, ४/१५, ५/२, ५/३, ५/४, ७/१२, ७/१३
पुष्पिताग्रा -	१/५, १/९, ३/१, ४/१६, ४/१७, ७/३, ७/४, ९/७
पृथ्वी -	१/३, २/११, ४/७, ६/६
मन्दाक्रान्ता -	२/४, ४/६, ८/७, ९/८
मालिनी -	१/२०, २/१, ४/९, ४/११, ९/१, ९/४
रथोद्धता -	२/१४
वसन्ततिलका -	१/४, १/६, १/१२, १/१३, १/१४, १/२४, १/२५, २/९, २/१०, २/१२, ३/४, ३/९, ४/१, ४/१२, ५/१५, ७/१, ७/७, ८/१, ८/६, ९/५
वियोगिनी -	७/५, ७/१४
शार्दूलविक्रीडित -	१/१, १/११, १/१५, १/२२, ३/१०, ५/१०, ६/१, ७/२, ७/६, ८/३, ८/८, ९/२, ९/३
शिखरिणी -	२/३
स्रग्धरा -	१/२३, १/२६, ४/५, ७/८, ८/४, ९/६
हरिणी -	५/९

गीतानां तालिका

क्रम	स्थान	ध्रुवपदम्	राग	ताल
१.	प्रस्तावना १/२ पश्चात्	सुखयति मधुररसा सरसी ॥	भीमपलास	त्रिताल
२.	१/८ पश्चात्	सुन्दरवनमाली मदयति हृदयमालि ॥	भूपकल्याण	मठ
३.	२/७ पश्चात्	भट्टा नदताट्टमेव - हर हर हर महादेव ।	भूपाली	दादरा
४.	३/३ पश्चात्	इह सखि विहरति ललितविहारः । सुमनोमोहननन्दकुमारः ।	जयवती	त्रिताल
५.	६/४ पश्चात्	ललितनवकदम्बमाल-विलसिततनुगोपबाल- लीलापतिरेष कोऽपि वादयते वेणुम् ॥	कर्णाट	अठ (ध्रुपद)
६.	७/१२ पूर्वम्	अयि सखि मा कुरु मयि परिहासम् । सपदि तमानय नयनविलासम् ॥	सोहिनी	त्रिताल
७.	९/४ पश्चात्	महाव्रत भारतराजपते । मुदा तव जनता वन्दते ।	भैरवी	त्रिताल

गीतानां स्वरसंयोगः ।

१. राग-भीमपलास ताल-त्रिताल. (पृ० १९४)

*स्थायी

२ ० ३ x
म प ग म । प नि धप । ग रे नि सा । म - - - ॥
सु ख य ति । म धु र र । सा ऽ स र । सी ऽ ऽ ऽ ॥

अंतरा

२ ० ३ x
प - प प । धप मप ग म । प नि प नि । सां - सां - ।
सा ऽ र स । हं ऽ स वि । हं ऽ ग म । मि थु नं ऽ ।

२ ० ३ x
सां - - - । प नि सां - । नि नि ध प । म प ग म ।
ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽऽ । वि ह र ति । मृ दु र ह ।

*** तदुक्तं संगीतरत्नाकरे-**

उद्ग्राहः प्रथमो भागस्ततो मेलापकः स्मृतः ।
ध्रुवत्वाच्च ध्रुवः पश्चादाभोगस्त्वन्तिमो मतः ॥
ध्रुवाभोगान्तरे जातो धातुरन्योन्तराभिधः ॥ इति ॥
अत्रोद्ग्राहो नाम स्थायिस्वरविशिष्टः स्वरसमूहो लोके
स्थायीति प्रसिद्धः ।

लक्ष्यसंगीते भीमपलासलक्षणम्-

काफीमेलसुसंजाता मता भीमपलासिका ।
आरोहे रिधहीनं स्यादवरोहे समग्रकम् ॥

२
प - गम गरेसा ॥
सि ऽ ऽ ऽ ॥

२. राग-भूपकल्याण (*भूपाली) ताल-मठ (सुलफाग) (पृ० १९७)

स्थायी

x २ २ ३ ०
प ध । सां ध । प ग । रे ग । - ग ।
म द । य ति । हृ द । य मा । ऽ लि ।

x ० २ ३ ०
ग ग । प ग । ध प । ग - । रे सा ।
सुं ऽ । द र । व न । मा ऽ । ली ऽ ।

अंतरा

x ० २ ३ ०
ग ग । प प । ध प । ध सां । - सां ।
प्र मु । दि त । न य । न सा । ऽ र ।

x ० २ ३ ०
ध सां । रें - । ध सां । ध प । - प ।
प्र ण । यि म । नो ऽ । वि हा । ऽ र ।

मध्यमांशग्रहन्यासा मुक्तमध्यममंडिता।
अपराण्हे समीचीनं गानमस्याः सुनिश्चित्तम् ॥
मध्यमस्यैव वादित्वाद्धनाश्रीर्नैव संभवेत्।
प्रतिलोमे यतः पूर्णा धानी शंका कुतो भवेत् ॥

वादीस्वरः **संवादी स्वरः**

म **सा**

आरोहावरोह

सा ग म प नि सां नि ध प म ग रे सा ।

* एतल्लक्षणमन्यत्रोक्तम्।

x ० २ ३ ०
गं रें । गं रें । सां सां । रें सां । ध प ।
वि लु । लि त । कु सु । म हा । ऽ र ।

x ० २ ३ ०
ध - । पध - । ध प । ग - । रे सा ॥
शा ऽ । ली ऽ । व न । मा ऽ । ली ऽ ॥

२. अथवा राग-हमीर ताल-मठ (सुलफाग) (पृ० १९७)

स्थायी

x ० २ ३ ०
ध नि । सां रे । सां नि । ध प । - प ।
म द । य ति । हृ द । य मा । ऽ लि ।

x ० २ ३ ०
ध - । मं प । मं प । ग म । ध - ॥
सुं ऽ । द र । व न । मा ऽ । ली ऽ ॥

लक्ष्मसंगीते हंमीरलक्षणीम्-

कल्याणीनामके मेले हंमीरः प्रोच्यते बुधैः ।
गग्रहः पांशकः कैश्चिद्धैवतांशोऽपि लक्ष्यते ॥
धैवतेऽवधारणं यन्नैतद्वादित्वकारणम् ।
लक्ष्यगतं समालोच्य बुधः कुर्यात्स्वनिर्णयम् ॥
स्यादारोहे निदौर्बल्यमवरोहेऽपि गस्य तत् ।
सायं गेयं तथा पूर्णं वक्रं रूपं सतां मतम् ॥
मध्यमावत्र द्वौ ग्राह्यौ रोहण एव तीव्रमः ।
सरलत्वे रोहणस्य यमनः स्यात्सुनिश्चितम् ॥

वादी-प, ध संवादी-सा, रे

आरोहावरोह

सा रे ग म ध नि सां नि ध प मं प ग म रे सा ।

x ° २ ३ °
प प । प - । प ध । प सां । - सां ।
प्र मु । दि त । न य । न सा । ऽ र ।

x ° २ ३ °
ध नि । सां रें । नि सां । नि ध । - प ।
प्र ण । यि म । नो ऽ । वि हा । ऽ र ।

x ° २ ३ °
गं मं । गं रें । नि सां । रें सां । - सां ।
वि लु । लि त । कु सु । म हा । ऽ र ।

x ° २ । ३ °
ध - । प - । म प । ग म । ध - ॥
शा ऽ । ली ऽ । व न । मा ऽ । ली ऽ ॥

३. राग-भूपाली, ताल-दादरा. (पृ. २०८)

स्थायी

x ° x °
ध - सां - । ध प । ग ग प । ग रे सा ।
भ ऽ ट्टा । ऽ न द । ता ऽ ट्ट । मे ऽ व ।

लक्ष्यसंगीते भूपालीलक्षणम्

कल्याणीमेलसंजाता भूपाली बुधसंमता ।
आरोहे चावरोहेऽपि मनिहीना भवेत्सदा ॥
गांधारः केवलं वादी धैवतोऽमात्य ईरितः ।
संगतिर्गपयोः प्रायस्तत्र रक्तिं समावहेत् ॥

वादी-ग **संवादी-ध**

आरोहावरोह

सा रे ग प ध सां ध प ग रे सा ।

x ° x °
ग रे ग । रे प प । ग ग रे । सा - सा ॥
ह र ह । र ह र । म हा ऽ । दे ऽ व ॥

अंतरा

x ° x °
ग ग ग । प प प । प ध प । सां - सां ।
धा ऽ व । त रि पु । क ट क । पा ऽ र ।

x ° x °
ध सां ध । सां रें रें । सां रें सां । ध - प ।
म ध म । कृ त म । हा ऽ प । चा ऽ र ।

x ° x °
गं - गं । गं रें रें । सां रें सां । ध - प ।
रु ऽ ष्टा । ऽ न द । ता ऽ ट्ट । मे ऽ व ।

x ° x °
ग रे ग । रे प प । ग ग रे । सा - सा ॥
ह र ह । र ह र । म हा ऽ । दे ऽ व ॥

४. राग-जयावंती, ताल-त्रिताल (पृ० २१८)

स्थायी

२ ° ३ x
रे ग म प । रे ग रे सा । रे सा नि सा । रे - नि सा ।
इ ह स खि । वि ह र ति । ल लि त वि । हा ऽ रः ऽ ।

लक्ष्यसंगीते जयावंतीलक्षणम्-

कांभोजीमेलके जाता जयावंती सुखप्रदा ।
ऋषभांशा सुसंपूर्णा सोरट्यंगेन मंडिता ॥
तीव्रगस्य प्रयोगोऽत्र सोरटीमपसारयेत् ।
अवरोहे रिसंलग्नं कोमलं गं बुधः स्पृशेत् ॥
मंद्रस्थस्य पंचमस्य रिस्वरेण सुसंगतिः ।
छायानट्टस्वरूपस्य क्वचित्संदेहकारिणी ॥

वादी-रे **संवादी-प**

आरोहावरोह

सा रे ग म प नि सां नि ध प म रे ग रे सा ।

२ ० ३ x
ग म प - । म - रेगरे - । सा - ध नि । रे - नि सा ॥
सु म नो ऽ । मो ऽ ह न । नं ऽ द कु । मा ऽ रः ऽ ॥

अंतरा

२ ० ३ x
म प नि नि । सां - सां सां । रें गं रें सां । नि - ध प ।
मु हु र नु । प त ति स । वि ग लि त । ल ऽ ज्जः ऽ ।

२ ० ३ x
म प ध - । म - रेगरे - । सा नि ध प । रे - नि सा ॥
त व मु ख । पं ऽ क ज । म लि रि च । स ऽ ज्जः ऽ ॥

५. राग-नायकीकानडा, ताल चौताल. (पृ० २४४)

स्थायी

x ० २ ० ३ ४
नि सा । रे - । प ग । म - । रे - । सा - ।
ल लि । त न । व क । दं ऽ । ब मा । ऽ ल ।

लक्ष्यसंगीते नायकीकानडालक्षणम्-

काफीमेलसमुत्पन्नो नायकीकानडो मतः ।
षाडवो धैवतत्यक्तो लक्ष्याध्वनि समीक्षितः ॥
पूर्वांगे स्यात्सुहायोगः सारंगस्योत्तरांगके ।
मध्यमो निश्चितो वादी षड्जोऽमात्यनिभः स्वयम् ॥

वादी-रे **संवादी-सा**

आरोहावरोह

सा रे ग म प नि सां नि प म ग रे सा ।

x ० २ ० ३ ४
नि सा । रे सा । सा सा । नि - । नि - । - प ।
वि ल । सि त । त नु । गो ऽ । प बा । ऽ ल ।

x ० २ ० ३ ४
सा - । रे - । रे प । ग - । म रे । - सा ।
ली ऽ । ला ऽ । प ति । रे ऽ । ष को । ऽ पि ।

x ० २ ० ३ ४
नि प । म प । ग - । म - । रे - । सा - ॥
वा ऽ । द य । ते ऽ । वे ऽ । ऽ ऽ । णुं ऽ ॥

अंतरा

x ० २ ० ३ ४
म म । म प । प प । म प । नि सां । - सां ।
मृ ग । म दां । ऽ क । ति ल । क भा । ऽ ल ।

x ० २ ० ३ ४
गं - । मं - । रें सां । नि सां । रें सां । नि प ।
मं ऽ । जु ऽ । स्व न । र चि । त जा । ऽ ल ।

x ० २ ० ३ ४
रें - । सां - । सां सां । नि नि । प नि । नि प ।
ली ऽ । ला ऽ । ग ति । रे ऽ । ष को । ऽ पि ।

x ० २ ० ३ ४
सां - । नि प । म प । ग म । रे - । सा - ॥
वा ऽ । द य । ते ऽ । वे ऽ । ऽ ऽ । णुं ऽ ॥

६. राग-सोहिनी, ताल-त्रिताल (पृ० २५५)

स्थायी

लक्ष्यसंगीते सोहनीलक्षणम्-

मारवामेलसंजाता सोहनी लक्ष्यसंमता ।
आरोहे चावरोहेऽपि परिक्ता कीर्त्यते सदा ॥

सां सां नि ध । म म ग ग । ग म ध नि । सां - सां - ।
अ यि स खि । मा ऽ कु रु । म यि प रि । हा ऽ सं ऽ ।

सां सां नि ध । म म ग ग । ग म ध नि । सां - सां - ॥
स प दि त । मा ऽ न य । न य न वि । ला ऽ सं ऽ ॥

अंतरा

ग - म ध । नि सां - सां । सां - सां - । सां रें सां - ।
त ऽ न्मु ख । पं ऽ क ज । लो ऽ क न । लो ऽ लं ऽ ।

सां - गं मं । गं - रें सां । सां - नि ध । धनिनि धनिनिं
कि म यि न । प ऽ श्य सि । लो ऽ च न । दो ऽ
धनि ध ॥
ऽ लं ।

७. राग-भैरवी, ताल-त्रिताल, (पृ.० २६८)

स्थायी

सा । निसागम प ध प । ग - ध प । गम गम ग रे । सा - -

म । हा ऽ व्र त । भा ऽ र त । रा ऽ ज प । ते ऽ ऽ

उत्तरांगप्रधानत्वे वादित्वं धैवते भवेत् ।
अमात्यसंनिभो गः स्याद्वायनं शेषयामके ॥

वादी-ध **संवादी-ग, रे**

आरोहावरोह

सा ग म ध नि सां रें सां नि ध म ग रे सा ।

२ ० ३ x
ध । प - ध नि । ध प गम पध । प धप ग - । रे सा -
मु । दा ऽ त व । ज न ता ऽ । ऽ ऽ वं ऽ । द ते ऽ

अंतरा

२ ० ३
प । - ध - नि । नि सां - - । धनिसां धनिसां रें सां - ।
स्वा । ऽ तं ऽ त्र्य । सु धा ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ

x २ ०
सां रें सां सां । ध नि ध प । पधनि - ध प ।
स क ल सु । धा ऽ क र । रं ऽ जि त

३ x
गम गम ग रे । सा - -
रा ऽ ज प । ते ऽ ऽ

संयोजक :- **दत्तात्रेय का. वेलणकर**

लक्ष्यसंगीते बैरवीलक्षणम्

लक्ष्ये भैरविमेलो यो ग्रंथानां तोडिसंज्ञकः ।
अस्मान्मेलात्समुत्पन्ना भैरवीलोकविश्रुता ॥
आरोहेऽप्यवरोहे सा संपूर्णैव सदा मता ।
उत्तरांगप्रधानत्वे प्रातःकालोचिता भवेत् ॥
केचिदत्र वर्णयन्ति समौ संवादिनौ स्वरौ ।
धगावन्ये जगुः केचिद्बुधः कुर्याद्यथोचितम् ॥

वादी-प, सा, रे, ध **संवादी-सा, म, प, ग**

आरोहावरोह

सा रे ग म प ध नि सां नि ध प म ग रे सा ।